सुमित्रानंदन पंत ग्रंथावली

खण्ड तीन

सुमित्रानंदन पंत ग्रंथावली

खण्ड तीन

उत्तरा रजत-शिखर शिल्पी सौवर्ण
युगपुरुष छाया प्रतिमा

राजकमल प्रकाशन
नयी दिल्ली पटना

अनुक्रम

उत्तरा

[प्रथम प्रकाशन वर्ष १९४९]

प्रस्तावना

'उत्तरा' के अचल मे भूमिका के रूप मे इन थोडे से शब्दो को बाध देना, आवश्यक हो गया है, क्योकि इधर 'स्वर्णकिरण' और 'स्वर्णधूलि' को लेकर मेरी काव्य-चेतना के सम्बन्ध मे अनेक प्रकार की भ्रान्तियो का प्रचार हुआ है। इस प्रस्तावना का उद्देश्य उन तर्कों या उच्छ्वासो का निराकरण करना नही, केवल पाठको के सामने, कम से कम शब्दो म, अपना दृष्टिकोण भर उपस्थित कर देना है। वैसे मेरा विचार अगले काव्य सकलन मे 'युगान्त' के बाद की अपनी रचनाओ के सम्बन्ध मे विस्तृत आलोचनात्मक निबन्ध लिखने का है, पर वह कल की बात है।

मेरी इधर की रचनाओ का मुख्य ध्येय केवल उस युग चेतना को, अपने यत्किंचित प्रयत्नो द्वारा, वाणी देने का रहा है जो हमारे सक्रांति काल की देन है और जिसने, एक युगजीवी की तरह, मुझे भी अपने क्षेत्र मे प्रभावित किया है। इस प्रकार के प्रयत्न मेरी कृतियो म 'ज्योत्स्ना' काल से प्रारम्भ हो गये थे, ज्योत्स्ना' की स्वप्न क्रान्त चादनी (चेतना) ही एक प्रकार से 'स्वर्णकिरण' मे युग प्रभात के आलोक मे स्वर्णिम हो गयी है।

> 'वह स्वर्ण भोर को ठहरी जग के ज्योतित आगन पर
> तापसी विश्व की बाला पाने नव जीवन का वर'—'

'चाँदनी' को सम्बोधित 'ज्योत्स्ना'-'गुजन' काल की इन पक्तियो मे पाठक को मेरे उपर्युक्त कथन की प्रतिध्वनि मिलेगी। मुझे विश्वास है कि 'ज्योत्स्ना' के बाद की मेरी रचनाओ को तुलनात्मक दृष्टि से पढने पर पाठक स्वय भी इसी परिणाम पर पहुँचेंगे। बाहरी दृष्टि से उन्ह 'युग-वाणी' तथा 'स्वर्णकिरण' काल की रचनाओ म शायद परस्पर विरोधी विचार धाराओ का समावेश मिले, पर वास्तव मे ऐसा नही है।

'ज्योत्स्ना' म मैंने जीवन की जिन बहिरन्तर मान्यताओ का समन्वय करने का प्रयत्न तथा नवीन सामाजिकता (मानवता) मे उनके रूपान्तरित होने की ओर इगित किया है, 'युगवाणी' तथा 'ग्राम्या' मे उन्हीं के बहि-र्मुखी (समतल) सचरण को (जो मार्क्सवाद का क्षेत्र है) तथा 'स्वर्णकिरण' मे अतर्मुखी (ऊर्ध्व) सचरण को (जो अध्यात्म का क्षेत्र है) अधिक प्रधानता दी है, किन्तु समन्वय तथा सश्लेषण का दृष्टिकोण एव रूपान्तरित मान्यताएँ दोनो मे समान रूप से वर्तमान हैं और [illegible] की रचनाओ से, इस प्रकार के अनेक उद्धरण दिये जा सकते हैं। 'युगवाणी' तथा 'ग्राम्या' मे यदि ऊर्ध्व मानो का सम धरातल पर समन्वय हुआ है तो 'स्वर्णकिरण', 'स्वर्ण धूलि' म समतल मानो का ऊर्ध्व धरातल पर, जो तत्वत एक ही लक्ष्य की ओर निर्देश करते हैं। किन्तु जिन्हे [illegible]

की कृतियो मे विचार साम्य के बदले उसके मानसिक विकास की दिशा को ही अधिक महत्त्व देना चाहिए, क्योंकि लेखक एक सजीव अस्तित्व या चेतना है और वह भिन्न भिन्न समय पर अपने युग के स्पर्शों तथा संवेदनो से किस प्रकार आन्दोलित होता है, उन्हें किस रूप मे ग्रहण तथा प्रदान करता है, इसका निर्णय ही उसके व्यक्तित्व पर प्रकाश डालने मे अधिक उपयोगी सिद्ध होना चाहिए।

हमारे कतिपय प्रगतिशील विचारक प्रगतिवाद को वर्गयुद्ध की भावनाओ से सम्बद्ध साहित्य तक ही सीमित रखना चाहते हैं, उन्हें इस युग की अन्य सभी प्रकार की प्रगति की धाराएँ प्रतिक्रियात्मक, पलायनवादी, सुधार जागरणवादी तथा युगचेतना से पीड़ित दिखायी देती है। ये आलोचक अपने सांस्कृतिक विश्वासो मे मार्क्सवादी ही नही, अपने राजनीतिक विचारो मे कम्यूनिस्ट भी हैं। मैं मार्क्सवाद की उपयोगिता एक व्यापक समतल सिद्धान्त की तरह स्वीकार कर चुका हूँ। किन्तु सांस्कृतिक दृष्टिकोण से उसके रक्त क्रान्ति और वर्गयुद्ध के पक्ष को मार्क्स के युग की सीमाएँ मानता हूँ, जिसकी ओर मैं 'आधुनिक कवि' की भूमिका मे इंगित कर चुका हूँ। अपने प्रगतिशील सहयोगियो की इधर की आलोचनाओ को पढ़ने से प्रतीत होता है कि वे मेरी रचनाओ से अधिक मेरे समर्थकों की विवेचनाओ तथा व्याख्याओ से क्षुब्ध हैं और उनके लिखने के ढंग से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि वे अभी व्यक्तिगत आक्षेप, तुलनात्मक स्पर्धा तथा साहित्यिक विद्वेष से मुक्त नही हो सके हैं, जो अवश्य ही चिन्त्य तथा अवांछनीय है।

अपने युग को मैं राजनीतिक दृष्टि से जनतन्त्र का युग और सांस्कृतिक दृष्टि से विश्व मानवता अथवा लोक मानवता का युग मानता हूँ, और वर्ग युद्ध को इस युग के विराट संघर्ष का एक राजनीतिक चरण मात्र। राजनीति के क्षेत्र के किसी भी प्रगतिकामी वाद या सिद्धान्त से मुझे विरोध नही है, एक तो राजनीति के नक्कारखाने मे साहित्य की तूती की आवाज कोई मूल्य नही रखती दूसरे इन सभी वादो को मैं युग-जीवन के विकास के लिए किसी हद तक आवश्यक मानता हूँ, ये परस्पर संघर्ष निरत तथा शक्ति-लोलुप होने पर भी इस युग के अभावो को किसी-न किसी रूप मे अभिव्यक्त करते हैं, अपनी सीमाओ के भीतर उनका उपचार भी खोजते हैं, और बहिरन्तर के दैन्य से पीड़ित, पिछले युगो की अस्थि कंकाल रूप धरोहर, जनता के हित को सामने रखकर सुखभोग कामी मध्योच्चवर्गीय चेतना का ध्यान उस ओर आकृष्ट करते हैं। सांस्कृतिक दृष्टि से इसकी सीमाओ से अवगत तथा साधना से असन्तुष्ट होने पर दुर्बोध भी मैं अपने युग की दुर्निवार तथा मानव मन की दयनीय सीमाओ से परिचित एवं पीड़ित हूँ।

मेरा दृढ़ विश्वास है कि केवल राजनीतिक आर्थिक हलचलो की बाह्य सफलताओ द्वारा ही मानव जाति के भाग्य (भावी) का निर्माण नहीं किया जा सकता। इस प्रकार के सभी आन्दोलनो को परिपूर्णता प्रदान करने के लिए, संसार मे, एक व्यापक सांस्कृतिक आन्दोलन को जन्म लेना होगा जो मानव चेतना के राजनीतिक, आर्थिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक—सम्पूर्ण धरातलो मे मानवीय सन्तुलन तथा साम-

जस्य स्थापित कर आज के जनवाद को विकसित मानववाद का स्वरूप दे सकेगा, भविष्य में मनुष्य के आध्यात्मिक (इस युग की दृष्टि से बौद्धिक, नैतिक) तथा राजनीतिक सचरण—प्रचलित शब्दो मे धर्म, अर्थ, काम—अधिक समन्वित हो जायेंगे और उनके बीच का व्यवधान मिट जायेगा—अथवा राजनीतिक आन्दोलन सास्कृतिक आन्दोलनो मे बदल जायेंगे जिसका पूर्वाभास हमे, इस युग की सीमाओ के भीतर, महात्माजी के व्यक्तित्व में मिलता है।

इस दृष्टि से मैं युग की प्रगति की धाराओ का क्षेत्र, वर्ग-युद्ध मे भी मानते हुए (यद्यपि अपने देश के लिए उसे अनावश्यक तथा हानिकारक समझता हूँ), उससे कही अधिक विस्तृत तथा ऊर्ध्व मानता हूँ और सुधार-जागरण के प्रयत्नो को भी अपने-अपने स्थान पर आवश्यक समझता हूँ, क्योकि जिस सचरण का बाहरी रूप क्रान्ति है उसी का भीतरी रूप विकास। अतएव युगपुरुष को पूर्णत सचेष्ट करने के लिए यदि लोक सगठन के साथ गाधीवाद की पीठिका बनाकर मन सगठन (सस्कार) का भी अनुष्ठान उठाया जाये और मनुष्य की सामाजिक चेतना (सस्कृति) का विकसित विश्व-परिस्थितियो (वाष्प विद्युत्) आदि के अनुरूप नवीन रूप से सक्रिय समन्वय किया जाये तो वर्तमान के विक्षोभ के आर्त्तनाद तथा क्रान्ति की क्रुद्ध ललकार को लोक-जीवन के सगीत तथा मनुष्यता की पुकार म बदला जा सकता है, एव क्रान्ति के भीतरी पक्ष को भी सचेष्ट कर उसे परिपूर्ण बनाया जा सकता है। इस युग के क्रान्ति विकास, सुधार जागरण के आन्दोलनो की परिणति एक नवीन सास्कृतिक चेतना के रूप मे होना अवश्यम्भावी है, जो मनुष्य के पदार्थ, जीवन, मन के सम्पूर्ण स्तरो का रूपान्तर कर देगी तथा विश्व जीवन के प्रति उसकी धारणा को बदलकर सामाजिक सम्बन्धो को नवीन अर्थ-गौरव प्रदान कर देगी। इसी सास्कृतिक चेतना को मैं अन्तश्चेतना या नवीन सगुण कहता हूँ। मैं जनवाद को राजनीतिक सस्था या तन्त्र के बाह्य रूप मे ही न देखकर भीतरी, प्रज्ञात्मक मानव चेतना के रूप में भी देखता हूँ, और जनतन्त्रवाद की आन्तरिक (आध्यात्मिक) परिणति को ही 'अन्तश्चेतनावाद' अथवा 'नव मानववाद' कहता हूँ,—जिस अर्थ मे मैंने अपनी इधर की रचनाओ मे इनका प्रयोग किया है। दूसरे शब्दो मे, जिस विकासकामी चेतना को हम सघर्ष के समतल धरातल पर प्रजातन्त्रवाद के नाम से पुकारते हैं उसी को ऊर्ध्व सास्कृतिक धरातल पर मैं अन्तश्चेतना एव अन्तर्जीवन कहता हूँ। इस युग के जड (परिस्थितियाँ, यन्त्र तथा तत्सम्बन्धी राजनीतिक आर्थिक आन्दोलन) तथा चेतन (नवीन आदर्श नैतिक दृष्टिकोण तथा तत्सम्बन्धी मान्यताएँ आदि) का सघर्ष इसी अन्तश्चेतना या भावी मनुष्यत्व के पदार्थ के रूप मे सामजस्य ग्रहण कर उन्नयन को प्राप्त हो सकेगा। अत मैं वर्गहीन सामाजिक विधान के साथ ही मानव अहता के विधान की भी नवीन चेतना के रूप मे परिणति सम्भव समझता हू और युग-सघर्ष मे जन-सघर्ष के अतिरिक्त अन्तर्मानव का सघर्ष भी देखता हूँ।

इस प्रकार मैं युग सघर्ष का एक सास्कृतिक पक्ष भी मानता हूँ जो जन युग की धरती से ऊपर उठकर उसकी उच्च मानवता की चोटी को

भी अपने फटकते हुए पग म स्पश करता है, क्योंकि जो युग विप्लव मानव-जीवन के भौतिक-राजनीतिक धरातलो म महान् क्रान्तिकारी परिवतन ला रहा है, वह उसकी मानसिक, आध्यात्मिक आस्थाओ म भी आन्तरिक विकास तथा रूपान्तर उपस्थित करता जा रहा है, और जैसाकि मैं 'युगवाणी' की भूमिका मे लिख चुका हूँ, "भविष्य में जब मानव जीवन विद्युत तथा अणु शक्ति की प्रबल टाँगो पर प्रलय-वेग से आगे बढ़ने लगेगा तब आज की मनुष्य की टिमटिमाती हुई चेतना उसका सचालन करने मे समर्थ नही हो सकेगी बाह्य जीवन के साथ ही उसकी अन्तश्चेतना मे भी युगान्तर होना अवश्यम्भावी है।"—इसी नवीन चेतना की मन क्रीडा उसके आनन्द और सौन्दय, उसकी आशा विश्वासप्रद प्रेरणाओ के उद्बोधन गान मेरी इधर की रचनाओ में विषम हैं, जो जन-युग के सघष म मानव युग के उद्भव की स्वप्न सूचनाएँ भर हैं। ऐसा कहकर मैं किसी प्रकार की आत्मश्लाघा को प्रश्रय नही दे रहा हूँ। 'उत्तरा' के किसी गीत मे मैंने—

"मैं रे केवल उन्मन मधुकर भरता शोभा स्वप्निल गुजन,
आगे आयेंगे तरुण भृग स्वर्णिम मधुकण करने वितरण।"—

आदि पक्तियाँ किसी विनम्रतावश नहो, अपनी तथा अपने युग की सीमाओ के कटु अनुभव तथा नवीन चेतना की लोकोत्तरता पर विश्वास के कारण ही लिखी हैं।

मेरा मन यह नही स्वीकार करता कि मैंने अपनी रचनाओ मे जिस सास्कृतिक चेतना को वाणी दी है एव जिस मन सगठन की ओर ध्यान-आकृष्ट किया है उसे किसी भी दृष्टि स प्रतिगामी कहा जा सकता है। मैंने सदैव ही उन आदर्शों, नीतियो तथा दृष्टिकोणो का विरोध किया है, जो पिछले युगो की सकीण परिस्थितियो म प्रतीक हैं, जिनमे मनुष्य विभिन्न जातियो, सम्प्रदायों तथा वर्गों मे विकीण हो गया है। उन सभी विश्लिष्ट सास्कृतिक मान्यताओ के विरुद्ध मैंने युग की कोकिल स पावक कण बरसाने को कहा है जिनकी ऐतिहासिक पष्ठभूमि अब खिसक गयी है और जो मानव चेतना को अपनी खोखली भित्तियो म विभक्त किये हुए हैं। मेरा विनम्र विश्वास है कि लोक सगठन तथा मन सगठन एव दूसरे के पूरक हैं क्योंकि वे एक ही युग (लोक) चेतना के बाहरी और भीतरी रूप हैं।

मुझे ज्ञात है कि सभी प्रकार के सुधार जागरण के प्रयत्न क्रान्ति के प्रतिरोधी माने जाते है पर ये इस युग के वादो तथा तर्कों की सीमाएँ हैं, जिनका दाशनिक विवेचन अथवा विश्लेषण करना इस छोटी-सी भूमिका के क्षेत्र से बाहर ही का विषय नही वह व्यथ का प्रयास भी होगा। जिनका मस्तिष्क वादो स आक्रान्त नहीं हो गया है वे सहज ही अनुभव कर सकेंगे कि जन-सघष (राजनीतिक धरातल) मे जो युग-जीवन का सत्य द्वन्द्वो के उत्थान पतन म अभिव्यक्ति पाकर आगे बढता रहा है वह मनुष्य की चेतना (मानसिक-सास्कृतिक धरातलो) म एक विकसित मनुष्यत्व के रूप मे सन्तुलन ग्रहण करने की भी प्रतीक्षा तथा चेष्टा कर रहा है। जो विवेचक सभी प्रकार के मन सगठन तथा सास्कृतिक प्रयत्नो को प्रतिक्रियात्मक तथा पलायनवादी कहकर उनका विरोध करते हैं,

उनकी भावना युग प्रबुद्ध होने पर भी उनकी विचारधारा वादो से पीडित तथा बुद्धि भ्रम से ग्रस्त है।

अपने लोकप्रेमी मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी युवको को ध्यान मे रखते हुए, जो उच्च आदर्शो से अनुप्राणित तथा महान त्याग करने मे समथ ह, मैं इसे केवल अपने युग-मन की कमी अथवा सीमा कहूगा। हमारा युग-मन परिस्थितियो के प्रति जाग्रत् तथा पर्याप्त लब्ध-बोध होने पर भी अनुभूति की दृष्टि से अभी अपरिपक्व है, और इसके अनेक कारण हैं। हम अभी य त्र का मानवीकरण नही कर सके हैं, उसे मानवीय अथवा मानव का वाहन नही बना सके हैं, बल्कि वही अभी हम पर आधिपत्य किये हुए है। य त्र युग ने हमे जो शक्ति तथा वैभव प्रदान किया है, वह हमारे लोभ तथा स्पर्धा की वस्तु बनकर रह गया है, उसने जहाँ मानव श्रम के मूल्य को अतिरिक्त लाभ मे परिणत कर शोषक शोषितो के बीच बढती हुई खाई को रक्त पकिल विक्षोभ तथा असतोष से भर दिया है, वहा हमारे भोग-विलास तथा अधिकार-लालसा के स्तरो को उकसाकर हमे अविनीत भी बना दिया है, कि तु वह हमारे ऊपरी धरातल तथा सास्कृतिक चेतना को छूकर मानवीय गौरव स मण्डित नही हो सका है,—दूसरे शब्दो मे, य त्र युग का, मनुष्य की चेतना मे अभी साम्कृतिक परिपाक नही हुआ है।

जिस प्रकार हमारे मध्ययुगीन विचारको ने आत्मवाद से प्रकाश-अध होकर मानव चेतना के भौतिक (वास्तविक) धरातल को माया, मिथ्या कहकर भुला देना चाहा (जिसका कारण मैं 'युगवाणी' की भूमिका मे दे चुका हूँ) उसी प्रकार आधुनिक विज्ञान दशनवादी—यद्यपि आधुनिकतम भूतविज्ञान पदाथ के स्तर को अतिक्रमण कर चुका है तथा आधुनिकतम मनोविज्ञान, जिसे विद्वान अभी शैशवावस्था ही मे मानते हैं, चेतन मन तथा हेतुवाद (रेशनलिज्म) से अधिक प्रधानता उपचेतन-अवचेतन के सिद्धा तो को देने लगा है—और विशेषकर माक्सवादी भौतिकता के अ धकार मे और कुछ भी न सूझने के कारण मन (गुण) तथा सस्कृति (सामूहिक अ तश्चेतना) आदि को पदार्थ का बिम्ब रूप, गौण स्तर या ऊपरी अति विधान कहकर उडा देना चाहते है, जो मायताओ की दष्टि से, ऊर्ध्व तथा समतल दृष्टिकोणो मे सामजस्य स्थापित न कर सकने के कारण उत्प न भ्रान्ति है, कि तु मान अधिदशन (मेटाफिजिक्स) के सिद्धा ता द्वारा जड चेतन (मैटर स्पिरिट) की गुत्थी को सुलझाना इतना दुरूह है कि युग मन के अनुभव के अतिरिक्त इसका समाधान सामा य बुद्धिजीवी के लिए सम्भव नही। अतएव साहित्य के क्षेत्र मे मा यताओ की दृष्टि से हम माक्सवाद या अध्यात्मवाद की दुहाई देकर आज जिन हास्यप्रद तर्कों मे उलझ रहे है उससे अच्छा यह होगा कि हम एक दूसरे के दृष्टिकोणो का आदर करते हुए दोनो की सच्चाई स्वीकार कर लें। वास्तव म चाहे चेतना को पदाथ (अ न) का सर्वोच्च या भीतरी स्तर माना जाय, चाहे पदाथ को चेतना का निम्नतम या बाहरी धरातल, दोनो ही मानव-जीवन मे अविच्छिन्न रूप से, वागथाविव जुडे हुए हैं। जिस प्रकार पदाथ का सचरण परिस्थितियो के सत्य या गुणो म अभिव्यक्त होता है उसी प्रकार चेतना का सचरण मन के गुणो मे, लोक-जीवन के विकास के लिए दोनो ही मे सामजस्य स्थापित करना नितान्त

ही मानव जीवन का नवीन दशन बन सकती है और आध्यात्मिकता का मोह केवल हमारा अतीत का गौरव गान है। किन्तु इसमे तथ्य इतना ही है कि पदार्थ विज्ञान द्वारा हमने केवल चेतना के निम्नतम भौतिक धरातल पर ही प्रकाश डाला है और उसके फलस्वरूप अपनी भौतिक परिस्थितियों को वाष्प विद्युत् आदि का सजीवन पिलाकर अधिक सक्रिय बना दिया है, जिनमे नवीन रूप से सामजस्य स्थापित करने के लिए इस युग के राजनीतिक आर्थिक आन्दोलनो का प्रादुर्भाव हुआ है, किन्तु परिस्थितियो की सक्रियता के अनुपात मे हमारे मन तथा चेतना के सापेक्ष स्तर प्रबुद्ध तथा अन्त सगठित न हो सकने के कारण युग के राजनीतिक-आर्थिक सघर्ष मानव सभ्यता को अभ्युदय की ओर ले जाने के बदले, विश्व युद्धो का रूप धारण कर, भूव्यापी रक्तपात तथा विनाश ही की ओर अग्रसर करने मे सफल हो सके हैं, और सहार के बाद निर्माण के आशाप्रद सिद्धान्त को भी अब एटम बम के भयानक आविर्भाव ने जैसे एक बार ही धराशायी कर दिया है।

आधुनिक मनोविज्ञान मनुष्य के विचारो के मन को नही छू सका है। उसने केवल हमारे भावनाओ के मन मे हलचल भर पैदा की है। पिछली दुनिया की नतिकता अभी मनुष्य के मोहग्रस्त चरणो मे उसी प्रकार चाँदी के भारी भद्दे सकीण कडे की तरह पडी हुई है, जिससे मानव चेतना का सौन्दयबोध तथा उसकी राग भावना की गति पग-पग पर कुण्ठित होकर, स्त्रियो के अधिकार आन्दोलनो के रूप मे, आगे बढने का निष्फल प्रयत्न कर रही है। किन्तु मानव चेतना की नैतिक लँगडाहट को दूर करना शायद कल का काम है, उससे पहिले मानव जाति के दृष्टिकोण का व्यापक आध्यात्मिक रूपान्तर हो जाना अत्यन्त आवश्यक है। अत अध्यात्मवाद का स्थान मानव के अन्तरतम शुभ्र शिखरो पर सदैव के लिए वैसा ही अक्षुण्ण बना हुआ है और रहेगा जैसा कि वह शायद पहले भी नही था।

भारतीय दशन भी आधुनिकतम भौतिक दशन (मार्क्सवाद) की तरह सत्य के प्रति एक उपनयन (एप्रोच) मात्र है, किन्तु अधिक परिपूर्ण, क्योकि वह पदार्थ (जड), प्राण (जीवन), मन तथा चेतना (स्पिरिट) रूपी मानव-सत्य के समस्त धरातलो का विश्लेषण तथा सश्लेषण कर सकने के कारण उपनिषद् (पूर्ण एप्रोच) बन गया है। दुर्भाग्यवश हमारे तरुण बुद्धिजीवी अध्यात्मवाद को बादलो के ऊपर का कोई सत्याभास मानते हैं और उसे हमारे प्रतिदिन के जीवन के एक सूक्ष्म किन्तु सक्रिय सत्य के रूप मे नही देखते। जिस प्रकार पदार्थ का एक भौतिक तथा मानसिक स्तर है उसी प्रकार उसका एक आध्यात्मिक स्तर भी।

पदार्थ तथा चेतना के धरातलो पर व्यथन बिलम (रख) कर हमारे युग को—और ऐसे युग सभ्यता के इतिहास मे सहस्रो वर्षों बाद आते है—वैयक्तिक सामूहिक आवश्यकताओ के अनुरूप इन दोनो मौलिक सचरणो मे नवीन सामजस्य स्थापित कर, एव जीवन के शतदल को मानस-जल के ऊपर नवीन सौन्दयबोध मे प्रतिष्ठित कर, उसमे पदार्थ की पखडियो का सतुलित प्रसार तथा चेतना की किरणो का सतरग

ऐश्वय (विकास) भरना ही होगा। जीवन निर्माण के आवेश मे बह जाने के कारण तथा भौतिक दर्शन के अपर्याप्त दृष्टिकोण के कारण, इस युग के साहित्य मे और भी अनेक प्रकार की भ्रांतिया का प्रचार हो रहा है। यदि पुरानी दुनिया (मध्य युग) अति-वैयक्तिकता के पक्षपात से पीडित थी तो नयी दुनिया अति सामाजिकता के दलदल मे फँसने जा रही है, जिसका दुष्परिणाम यह होगा कि कालान्तर मे मनुष्य की सुख शान्ति एक विमाकार यान्त्रिक तन्त्र के दुसह बहिर्मुत भार से दब जायगी और वैयक्तिक अन्त सचरण का दम घुटने लगेगा। हमे व्यावहारिक दृष्टि से भी व्यक्ति तथा समाज को दो स्वतन्त्र अन्योन्याश्रित सिद्धान्तो की तरह स्वीकार करना ही होगा तथा मनुष्य की बहिरन्तमुखी प्रवृत्तियो के विकास और सामजस्य के आधार पर ही विश्वतन्त्र को प्रतिष्ठित करना होगा। दोनो सचरणो की मान्यताओ को स्वीकार न करना अशान्ति को जन्म देना होगा। इसमे सन्देह नही कि सभ्यता के विकास क्रम मे जब हमारा मनुष्यत्व निखर उठेगा एव जठर का सघष उत्पादन वितरण के सन्तुलन मे नि शेष या समाप्तप्राय हो जायेगा मनुष्य का बहिर्जीवन उसके अन्तर्जीवन के अधीन हो जायेगा, क्योकि मनुष्य के अन्तर्जीवन तथा बहिर्जीवन के सौन्दय म इतना प्रकारान्तर है जितना सुन्दर मास की देह तथा मिट्टी की निर्जीव प्रतिमा मे!—किन्तु यह कल का स्वप्न है।

तथोक्त गहन मनोविज्ञान-सम्बन्धी निरुद्ध भावना, काम ग्रन्थि आदि के परिज्ञान ने हमारी उदात्त भावना आत्म-निग्रह आदि की धारणाओ के अर्थ का अनर्थ कर दिया है। उन्नयन का अर्थ दमन या स्तम्भन सयम का आत्मपीडन या निषेध तथा आदश का अर्थ पलायन हो गया है। उपचेतन अवचेतन के निम्न स्तरो को इतनी प्रधानता मिल गयी है कि अव्यक्त या प्रच्छन्न (सबलिमिनल) मन के उच्च स्तरो के ज्ञान मे हमारा तरुण बुद्धिजीवी अपरिचित ही रह गया है भारतीय मनोविश्लेपक इड, लिबिडो तथा प्राण चेतना सत्ता (फॉयडियन साइकी) के चित्र-आवरण को चीरकर गहन शुभ्र जिज्ञासा करता है—केनेषित पतति प्रेषित मन केन प्राण प्रथम प्रैति युक्त ?' किन्तु हमारे निष्प्राण, प्रेरणाशून्य साहित्य मे उपचेतन की मध्यवर्गीय रुग्ण प्रवृत्तियो का चित्रण ही आज सृजन-कौशल की कसौटी बन गया है और वे परस्पर के अहकार प्रदर्शन लाछन तथा घात प्रतिघात का क्षेत्र बन गयी हैं, जिससे हम कुण्ठित बुद्धि के साथ सकीर्ण हृदय भी होते जा रहे हैं।

इस प्रकार की अनेक भ्रान्तियो तथा मिथ्या धारणाओ से आज हमारी सृजन चेतना पीडित है और प्रगतिशील साहित्य का स्तर सकुचित होकर प्रतिदिन नीचे गिरता जा रहा है। हम पश्चिम की विचारधारा से इतने अधिक प्रभावित हैं कि अपनी ओर मुडकर अपने देश का प्रशान्त गम्भीर प्रसन्न मुख देखना ही नही चाहते। हममे अपनी भूमि के विशिष्ट मानवीय पदार्थ को समझने की क्षमता ही नही रह गयी है। हम इन मन्दिरो के खँडहर का बाहरी दयनीय रूप देखकर क्षुब्ध तथा विरक्त हो जाते हैं और दूसरो का बाहर से सँवारा हुआ मुख देखकर उनका अनुकरण करने लगते हैं। मैं जानता हूँ कि यह हमारी दोष

पराधीनता का दुष्परिणाम है, किन्तु एक बार सयुक्त प्रयत्न कर हमे इससे ऊपर उठना होगा और अपने देश की युग-युग के अनुभव से गम्भीर परिपक्व आत्मा को, उसके अन्त सौन्दर्य से तपोज्वल शान्त-सुन्दर मुख को पहचानकर अपने अन्त करण को उसकी गरिमा का उपयुक्त दर्पण बनाना होगा। तभी हम अन्य देशो से भी आदान-प्रदान करने योग्य हो सकेंगे उनके प्रभावो तथा जीवन-अनुभूतियो को यथोचित रूप से ग्रहण करने एव अपने सचय को उन्हे देने के अधिकारी बन सकेंगे, और इस प्रकार विश्व निर्माण मे जाग्रत सक्रिय भाग ले सकेंगे।

मुझे ज्ञात है कि मध्य युगो से हमारे देश के मन मे अनेक प्रकार की विकृतिया, सकीर्णताएँ तथा दुर्बलताएँ घर कर गयी हैं, जिनके कुछ तो राजनीतिक कारण है कुछ हमारी सामन्ती सस्कृति के बाहरी ढाचे की अवश्यम्भावी सीमाएँ और कुछ उत्थान के बाद पतनवाला, जीवन की विकासशील परिस्थितियो पर प्रयुक्त सिद्धान्त। प्राय उन सभी मर्म-व्याधिया एव स्थलो पर इस युग के हमारे बडे-बडे विचारक, साहित्यिक तथा सर्वाधिक महात्माजी, अपने महान् व्यक्तित्व का प्रकाश डाल चुके हैं। किन्तु बाहर की इस काई को हटा लेने के बाद भारत के अन्तश्चेतन मानस मे जो कुछ शेष रहता है, उसके जोड का आज के ससार मे कुछ भी देखने को नही मिलता, और यह मेरा अतीत का गौरव-गान नही, भारत के अपराजित व्यक्तित्व के प्रति विनम्र श्रद्धाजलि मात्र है।

हम आज विश्व-तन्त्र, विश्व जीवन, विश्व मन के रूप में सोचते हैं। पर इसका यह अभिप्राय नही कि विश्व योजना मे विभिन्न देशो का अपना मौलिक व्यक्तित्व नही रहेगा। एकता का सिद्धान्त अन्तर्मन का सिद्धान्त है, विविधता का सिद्धान्त बहिर्मन तथा जीवन के स्तर का, दूसरे शब्दो मे एकता का दृष्टिकोण ऊर्ध्व दृष्टिकोण है और विभिन्नता का समदिक्। विविध तथा अविभक्त होना जीवन-सत्य का सहज अन्त-र्जात गुण है, इस दृष्टि से भी ऐसे किसी विश्व जीवन की कल्पना नही की जा सकती जिसमे ऐक्य और वैचित्र्य सयोजित न हो। इसलिए देश प्रेम अन्तर्राष्ट्रीयता या विश्व प्रेम का विरोधी न होकर उसका पूरक ही है। इन्ही बातो को ध्यान में रखते हुए मैं सोचता हूँ कि भारत पर भावी विश्व निर्माण का कितना बडा उत्तरदायित्व है। और आज की विनाश की ओर अग्रसर विश्व-सभ्यता को अन्त स्पर्शी मनुष्यत्व का अमरत्व प्रदान करने के लिए हमारे मनीषियो, बुद्धिजीवियो तथा लोकनायको को कितना अधिक प्रबुद्ध, उदार चेता तथा आत्म सयुक्त बनने की आवश्यकता है।

हमारी गौतम और गाधी की ऐतिहासिक भूमि है। भारत का दान विश्व को राजनीतिक तन्त्र या वैज्ञानिक यन्त्र का दान नही हो सकता, वह सस्कृति तथा विकसित मनोयन्त्र की ही भेंट होगी। इस युग के महापुरुष गाधीजी भी अहिंसा को एक व्यापक सास्कृतिक प्रतीक के ही रूप मे दे गये हैं जिसे हम मानव चेतना का नवनीत अथवा विश्व-मानवता का एकमात्र सार कह सकते हैं। महात्माजी अपने व्यक्तित्व से राज-नीति के सपप-कटक-पुलकित कलेवर को सस्कृति का लिबास पहनाकर भारतीय बना गये हैं। उनका दान हम भुला भी दें, किन्तु ससार नही

भुला सकेगा, क्योंकि अणु मृत मानव जाति के पास अहिंसा ही एकमात्र जीवन अवलम्ब तथा संजीवन है।

सत्य-अहिंसा के सिद्धान्तों को मैं अन्तःसगठन (संस्कृति) के दो अनिवार्य उपादान मानता हूँ। अहिंसा मानवीय सत्य का ही सक्रिय गुण है। अहिंसात्मक होना व्यापक अर्थ में संस्कृत होना, मानव बनना है। सत्य का दृष्टिकोण मान्यताओं का दृष्टिकोण है, और ये मान्यताएँ दो प्रकार की हैं एक ऊर्ध्व अथवा आध्यात्मिक और दूसरी समदिक्, जो हमारे नैतिक, सामाजिक आदर्शों के रूप में विकास क्रम में उपलब्ध होती हैं। ऊर्ध्व मान्यताएँ उस अन्तस्थ सूत्र की तरह हैं जो हमारे बहिर्गत आदर्शों को सामंजस्य के हार में पिरोकर हृदय में धारण करने योग्य बना देती हैं।

मैं जानता हूँ कि स्वाधीनता मिलने के बाद हम बुद्धिजीवियों को जिन सृजनात्मक तथा सांस्कृतिक शक्तियों के प्रादुर्भाव होने तथा उनके विकास के लिए प्रशस्त क्षेत्र मिलने की आशा थी वैसा नहीं हो सका है। गांधीवाद का सांस्कृतिक चरण अभी पंगु तथा निष्क्रिय ही पड़ा हुआ है। किन्तु हम सदियों की अव्यवस्था, दुरवस्था तथा परवशता से अभी-अभी मुक्त हुए हैं। हमें अपने को नवीन रूप में पहचानने, नवीन परिस्थितियों में अपना उत्तरदायित्व समझने, और विश्व शान्ति की गम्भीरता को ठीक ठीक आँकने में अभी समय लगेगा। मैं चाहता हूँ कि पश्चिम के देश अपने राष्ट्रीय स्वार्थों तथा आर्थिक स्पर्धाओं के कारण, जिस प्रकार अभी तक विश्व-संहार के यन्त्रालय बने हुए हैं, भारत एक नवीन मनुष्यत्व के आदर्श में बँधकर, तथा अपने बहिरन्तर जीवन को नवीन चेतना के सौन्दर्य में संगठित कर, महासृजन एवं विश्व निर्माण का एक विराट कार्यालय बन जाय, और हमारे साहित्यिक तथा बुद्धि-जीवी, अभिजातवर्ग की संकीर्ण नैतिकता तथा निम्न वर्ग की दैन्य-पीड़ा की गाथा गाने में एवं मध्यवर्ग के पाठकों के लिए उसका कृत्रिम चित्रण करने में ही अपनी कला की इतिश्री न समझ लें, प्रत्युत युग संघर्ष के भीतर से जन्म ले रही नवीन मानवता तथा सांस्कृतिक चेतना के संस्पर्शों एवं सौन्दर्य बोध को भी अपनी कृतियों में अभिव्यक्ति देकर नव युग के ज्योति-वाहक बन सकें।

मैं जनता के राग-द्वेष, क्रोध तथा असंतोष को भी आदर की दृष्टि से देखता हूँ क्योंकि उसके पीछे मनुष्य का हृदय है, किन्तु युग संचरण को वर्ग-संचरण में सीमित कर देना उचित नहीं समझता। इस धरती के जीवन को मैं सत्य का क्षेत्र मानता हूँ, जो हमारे लिए मानवीय सत्य है। गम्भीर दृष्टि से देखने पर ऐसा नहीं जान पड़ता कि यह जीवन अविद्या का ही क्षेत्र है जहाँ मन तथा आत्मा के संचरण गौण तथा अज्ञान के अधीन हैं। यह केवल तुलनात्मक तथा बाह्य दृष्टिकोण है जो हमारे ह्रास युग का सूचक तथा विश्व असंगठन का द्योतक है। सामाजिक दृष्टि से मैं असंगठन को माया तथा संगठन (जिसमें बहिरन्तर दोनों सम्मिलित हैं) को प्रकाश या सत्य कहता हूँ।

अतएव इस राजनीति तथा अर्थशास्त्र के युग में मुझे एक स्वस्थ सांस्कृतिक जागरण की आवश्यकता और भी अधिक दिखाई देती है।

को मात्र वगवाद की दृष्टि से देखना एव बाह्य परिस्थितियो पर अव-
लम्बित प्रतिविधान मानना केवल वाद ग्रस्त बुद्धि का दुराग्रह है। क्यो
कि उसके मूल मन से कही गहरे, बाहरी परिस्थितियो के अतिरिक्त,
भीतरी सूक्ष्म परिस्थितियो मे भी है। इस सम्बन्ध मे अपने 'कला तथा
सस्कृति' नामक अभिभाषण का एक अश यहा उद्धत करता हूँ —
'हम कला का मूल्याकन सत्य, शिव, सुदर के माना स करते हैं। सत्य,
शिव, सुदर से तत्त्वत हमारा वही अभिप्राय है, जो आज के वस्तुवादी
का क्षुधा-काम से अथवा अर्थवादी का परिस्थिति, सुविधा, वितरण आदि
से है क्योकि हम सत्य, शिव, सुदर को क्षुधा, काम (जीवन आका-
क्षाओ) ही के भीतर खोजते हैं जिनसे हम बाह्य परिस्थितियो के जगत्
से सम्बद्ध है, और इस दृष्टि से क्षुधा काम हमारी भीतरी स्थूल परि-
स्थितिया हुई। सत्य, शिव, सुदर के रूप मे हम अपनी इन्ही बहिरतर
की परिस्थितियो म सतुलन स्थापित करते है। आदर्श और वस्तुवादी
दृष्टिकोणो मे केवल धरातल का भेद है, और ये धरातल आपस मे
अविच्छिन्न रूप से जुडे हुए हैं। सत्य, शिव, सुदर सस्कृति तथा कला
का धरातल है क्षुधा-काम प्राकृतिक आवश्यकताओ का। जिस सत्य को
हम स्थल धरातल पर क्षुधा-काम कहते हैं, उसी को सूक्ष्म धरातल पर
सत्य, शिव, सुदर। एक हमारी सत्ता की बाहरी भूख प्यास है दूसरी
भीतरी। यदि सस्कृति और कला हमारी आवश्यकताओ के सत्य से बिल-
कुल ही भिन्न तथा विच्छिन्न होती, तो उनकी हमारे लिए उपयोगिता
ही क्या होती ? वे केवल स्वप्न तथा अतिकल्पना-मात्र होती। साथ ही
यदि हमारी क्षुधा-काम की वृत्तियाँ सस्कृत होकर सत्य, शिव, सुदर के
धरातल पर न उठ पाती, तो वे मानवीय नही बन सकती। हमारी सामा-
जिक मान्यताएँ इसी मानवीकरण अथवा ऊर्ध्व विकास के सिद्धात पर
अवलम्बित हैं और मानव सभ्यता का लक्ष्य अध प्रवृत्तियो के पशु जीवन
मे मानवीय सतुलन स्थापित करना ही रहा है। अतएव हम इसे अच्छी
तरह समझ लें कि ये दोनो धरातल बाहर से भिन्न होने पर भी तत्त्वत
अभिन्न तथा एक दूसरे के पूरक हैं। इसीलिए भविष्य मे हम जिस
मानवता अथवा लोक सस्कृति का निर्माण करना चाहते हैं उसके लिए हमे
बाहर भीतर दोनों ओर से प्रयत्न करना चाहिए, सूक्ष्म और स्थूल दोनो
ही शक्तियो से काम लेना चाहिए। ऐसा नही समझना चाहिए कि स्थूल
के सगठन से सूक्ष्म अपने आप सगठित हो जायेगा जैसा कि आज का
भौतिक दर्शन या मार्क्सवादी कहता है, अथवा सूक्ष्म मे सामजस्य स्था
पित कर लेने मे स्थूल म अपने आप सतुलन आ जायेगा, जैसा कि मध्य
युगीन विचारक कहता आया है। ये दोना दृष्टिकोण प्रतिवैयक्तिकता तथा
अतिसामाजिकता के दुराग्रह मात्र हैं।

'आज के बुद्धिजीवी और साहित्यिक के मन मे बहुत बडा सघर्ष
तथा विरोध देखने को मिलता है। इसका कारण शायद यह है कि वह
व्यक्ति और विश्व —अथवा समाज—के ही रूप मे सोचता है और
व्यक्तिगत तथा सामूहिक क्रिया प्रतिक्रियाओ के भीतर ही युग समस्याओ
(राजनीतिक अर्थ मे) तथा मानव जीवन की समस्याओ (सास्कृतिक
अर्थ म) का समाधान खोजता है, और कभी व्यक्ति से असतुष्ट होकर

समाज की ओर झुकता है, कभी समाज से खिन्न होकर व्यक्ति की ओर। मेरी समझ मे इन दोनो किनारा पर उसे अपनी समस्याओ का समाधान नही मिलेगा। जिस जीवन मन-चेतना का तथा सूक्ष्म-स्थूल सत्य का प्रवाह व्यक्ति और समाज के तटो से टकराता है, उसे आप समग्र रूप मे इस प्रकार नही समझ सकेंगे। आपको व्यक्ति और विश्व के साथ ही ईश्वर को भी मानना चाहिए तब आप उसके व्यक्ति और विश्व रूपी सचरणा को ठीक ठीक ग्रहण कर सकेगे, और जीवन-सौन्दय के स्रष्टा की तरह उन्हे प्रभावित कर सकेंगे। जिस अतल, अकूल सत्य के प्रवाह की चर्चा मैंने अभी की है, उसे आप कलाकार तथा सूक्ष्म-जीवी की दृष्टि से सस्कृति के रूप मे देखिए। एक राजनीति के क्षेत्र का सिपाही भले ही उसे द्वन्द्व तर्क से सचालित, आर्थिक प्रणाली से प्रभावित उत्पादन वितरण के सघर्ष के रूप मे देखे आप उसे मानव-जीवन के प्रवाह के रूप मे देखिए उसमे मानव हृदय का स्पन्दन सुनिए और उससे मनुष्य की सास्कृतिक प्रसव-वेदना का अनुमान लगाइए। आप क्षणभगुर के अवगुण्ठन को हटाकर मानव चेतना के शाश्वत मुख के भी दर्शन कीजिए। तब आप वास्तविक अर्थ मे जीवन द्रष्टा तथा सौन्दय-स्रष्टा बन सकेंगे। अन्यथा आप व्यक्ति-समाज के बीच भिन्न-भिन्न वर्गों गिरोहो के बीच भिन्न भिन्न सम्प्रदायो, शक्ति-लोलुप सगठनो तथा नैतिक दृष्टिकोणो के बीच चलनेवाले सघर्ष के प्रचारक मात्र बन जायेंगे, और अपने स्वभाव, रुचि तथा परिस्थितियो के अनुरूप एक या दूसरे पक्ष का समर्थन कर अपने स्रष्टा के कर्त्तव्य से च्युत हो जायेंगे।''

मैं यह विद्या विनम्र होकर नही लिख रहा हूँ कि मुझे अपनी किसी भी कृति से सन्तोष नही है। इसका कारण शायद मेरी बाहरी-भीतरी परिस्थितियो के बीच का असामजस्य है। मैंने परिस्थितियो की चेतना के सत्य को कभी अस्वीकार नही किया है, जैसाकि मेरी रचनाओ से प्रकट है। 'स्वर्ण किरण', 'स्वर्णधूलि' मेरी अस्वस्थता के बाद की रचनाएँ हैं, जिनमे मेरी ज्योत्स्ना-काल की चेतना सम्भवत अधिक प्रस्फुटित रूप मे निखर आयी है। 'ग्राम्या' सन '४० मे प्रकाशित हुई थी। उसके बाद का काल विशेषकर सन् '४२ के आन्दोलन का समय, जबकि द्वितीय विश्व युद्ध का चक्र चल रहा था, मेरी मन स्थिति के लिए अत्यन्त ऊहापोह का युग था।

मेरी कई पिछली मान्यताएँ भीतर ही भीतर ध्वस्त हो चुकी थी और नवीन प्रेरणाएँ उदय हो रही थी, 'ग्राम्या' की 'सास्कृतिक मन' आदि कुछ रचनाओ तथा सन '४२ के उत्तरार्ध मे प्रकाशित मेरी 'लोकायतन' की योजना मे उन मानसिक हलचलो का थोडा-बहुत आभास मिलता है। मेरी अस्वस्थता का कारण एक प्रकार से मेरी मन क्लान्ति भी थी। अपनी नवीन अनुभूतियो के लिए, जिन्हे मैं अपनी सर्जन चेतना का स्वप्न-सचरण या काल्पनिक आरोहण समझता था मुझे किसी प्रकार के बौद्धिक तथा आध्यात्मिक अवलम्ब की आवश्यकता थी। इन्ही दिनो मेरा परिचय श्री अरविन्द के 'भागवत जीवन' (द लाइफ डिवाइन) से हो गया। उसके प्रथम खण्ड को पढते समय मुझे ऐसा लगा, जैसे मेरे अस्पष्ट स्वप्न चिन्तन को अत्यन्त सुस्पष्ट सुगठित एव पूर्ण दर्शन के रूप मे रख

दिया गया है। अपनी अस्वस्थता के बाद मुझे 'कल्पना' चित्रपट के सम्बन्ध म मद्रास जाना पडा और मुझे पाण्डिचेरी मे श्री अरविन्द के दशन करने तथा श्री अरविन्द आश्रम के निकट सम्पक मे आने का सौभाग्य भी प्राप्त हो सका। इसमे सन्देह नही कि श्री अरविन्द के दिव्य जीवन दशन से मैं स्वभावत प्रभावित हुआ हूँ। श्री अरविन्द आश्रम के योग युक्त (अन्त सगठन) वातावरण के प्रभाव से, ऊध्व मान्यताओं सम्बन्धी, मेरी अनेक शकाएँ दूर हुई हैं। 'स्वणकिरण' और उसके बाद की रचनाओं मे यह प्रभाव, मेरी सीमाओं के भीतर, किसी-न किसी रूप मे प्रत्यक्ष ही दृष्टिगोचर होता है।

जैसा कि मैं 'आधुनिक कवि' की भूमिका में निवेदन कर चुका हूँ, मैं अपने युग, विशेषत देश की, प्राय सभी महान विभूतियो से किसी-न-किसी रूप मे प्रभावित हुआ हूँ। वीणा-पल्लव' काल मे मुझ पर कवीन्द्र रवीन्द्र तथा स्वामी विवेकानन्द का प्रभाव रहा है, 'युगान्त' और बाद की रचनाओ मे महात्माजी के व्यक्तित्व तथा मार्क्स के दर्शन का, महात्मा जी के देह निधन के बाद की रचनाएँ, जो 'युगपथ' मे सगृहीत हैं, उनके प्रति मेरे हृदय की श्रद्धा की परिचायक हैं। कवीन्द्र रवीन्द्र के प्रति भी मेरी दो रचनाएँ 'युगपथ' मे प्रकाशित हो रही है। किन्तु इन सब म जो एक परिपूर्ण एव सन्तुलित अन्तदष्टि का अभाव खटकता था, उसकी पूर्ति मुझे श्री अरविन्द के जीवन दशन म मिली, और इस अन्तदष्टि को मैं इस विश्व सक्रान्ति-काल के लिए अत्यन्त महत्वपूण तथा अमूल्य समझता हूँ। मैंने अपने समकालीन लेखको तथा विशिष्ट व्यक्तियो पर समय समय पर स्तुति-गान लिखने मे सुख अनुभव किया है। श्री अरविन्द के प्रति मेरी कुछ विनम्र रचनाएँ, भेंट रूप मे 'स्वणकिरण', 'स्वर्णधूलि' तथा 'युगपथ' मे पाठको को मिलेंगी।

श्री अरविन्द को मैं इस युग की अत्यन्त महान तथा अतुलनीय विभूति मानता हूँ। उनके जीवन दशन से मुझे पूण सन्तोष प्राप्त हुआ। उनसे अधिक व्यापक ऊध्व तथा अतलस्पर्शी व्यक्तित्व, जिनके जीवन-दशन म अध्यात्म का सूक्ष्म, बुद्धि अग्राह्य-सत्य नवीन ऐश्वय तथा महिमा से मण्डित हो उठा है मुझे दूसरा कही देखने को नही मिला। विश्व-कल्याण के लिए मैं श्री अरविन्द की देन को इतिहास की सबसे बडी देन मानता हूँ। उसके सामने इस युग के वैज्ञानिकों की अणु शक्ति की देन भी अत्यन्त तुच्छ है। उनके दान के बिना शायद मूत विज्ञान का बडे स बडा दान भी जीवन मृत मानव जाति के भविष्य के लिए आत्म पराजय तथा अशान्ति ही का वाहक बन जाता। मैं नही कह सकता कि ससार के मनीषी तथा लोक नायक श्री अरविन्द की इस विशाल आध्यात्मिक जीवन दृष्टि का उपयोग किस प्रकार करेंगे अथवा भगवान् उनके लिए क्या क्षेत्र बनायेंगे।

यह मेरे कवि हृदय की विनीत अपर्याप्त श्रद्धाजलि मात्र है। ये थोडे से शब्द मैं इसलिए लिख रहा हूँ कि हमारे तरुण बुद्धिजीवी श्री अरविन्द के जीवन-दशन से भारत की आत्मा का परिचय तथा मानव और विश्व के अन्तर विधान का अधिक परिपूण ज्ञान प्राप्त कर, लाभान्वित हो सकें। आज हम छोटी-छोटी बातो के लिए पश्चिम के विचारकों का

मुह जोहते हैं, उनके वाक्य हमारे लिए ब्रह्म वाक्य बन जाते है और हम अपनी इतनी महान् विभूति को पहचान भी नही सके हैं, जिनके हिमालय तुल्य मन शिखर के सामने इस युग के अन्य विचारक विन्ध्य की चोटियो के बराबर भी नही ठहरते। इसका कारण यही हो सकता है कि हमारी राजनीतिक पराधीनता की बेडियाँ तो किसी प्रकार कट गयी, किन्तु मानसिक दासता की शृखलाएँ अभी नही टूटी हैं।

सहस्रा वर्षों से अध्यात्म-दर्शन की सूक्ष्म-सूक्ष्मतम झकारो से रहस-मौन निनादित भारत के एकान्त मनोगगन मे मार्क्स तथा ऐंगिल्स के विचार-दर्शन की गूजें बौद्धिकता के शुभ्र अधकार के भीतर से रेंगने वाले झींगुरो की रुँधी हुई झनकारो से अधिक स्पदन नही पैदा करती। ऐंगिल्स के शाश्वत सत्य की व्याख्या जिसके उदाहरणस्वरूप, 'नेपोलियन ५ मई को मरा है', तथा हीगल का 'विचार का निरपेक्ष', जो कण-कण जोडकर विकसित होता है, अथवा ऐसे इतर सिद्धातो की दुहाई देकर द्वन्द्वतर्क तथा भौतिकवाद का महत्व दिखाना भारतीय दर्शन के विद्यार्थियो के लिए हास्यास्पद दार्शनिक तुतलाहट से अधिक अर्थ-गौरव नही रखता। जिस मार्क्स तथा ऐंगिल्स के उद्धरणो को दुहराते हुए हमारा तरुण बुद्धिजीवी नही थकता, उसे अन्य दर्शनो के साथ अपने देश के दर्शन का भी सागोपाग तुलनात्मक अध्ययन अवश्य करना चाहिए और देखना चाहिए कि ऊँट तथा हिमालय के शिखर मे कितना अन्तर और क्या भेद है।

मार्क्सवाद का आकर्षण उसके खोखले दर्शन पक्ष म नही उसके वैज्ञानिक (लोकतन्त्र के रूप म मूर्त्त) आदर्शवाद मे है, जो जन हित का अथवा सर्वहारा का पक्ष है, किन्तु उसे वर्ग-क्रान्ति का रूप देना अनिवार्य नही है। वर्गयुद्ध का पहलू फासिज्म की तरह ही निकट भविष्य मे पूजीवादी तथा साम्राज्यवादी युग की दूसरी प्रतिक्रिया के रूप मे विकृत एव विकीर्ण हो जायेगा।

हीगल के द्वन्द्व-तर्क मे विम्बित पश्चिम के मनोजगत् का अन्तर्द्वन्द्व मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद मे वहिर्द्वन्द्व का रूप धारण कर लेता है। इस दृष्टि से इन युगप्रवर्तको का मानस चिन्तन, ऐंगिल्स के अनुसार 'अपनी युग सीमाओ से बाहर' अवश्य नही जा सका है। मार्क्स ने, समस्त पश्चिम के ज्ञान को आत्मसात् कर, सिर के बल खडे हीगल को पैरो के बल खडा नही किया, यूरोप का मनोद्वन्द्व ही तब अपने आर्थिक-राजनीतिक चरणो पर खडा होकर 'युद्ध देहि' कहने को सन्नद्ध हो उठा था, जिसका पूर्वाभास पाकर युग प्रबुद्ध मार्क्स न उस पर अपने वर्गयुद्ध के सिद्धान्त की रक्त छाप लगा दी। डारविन ने जहाँ पूजीवाद के अभ्युदय-काल मे, अपने 'सरवाइवल ऑफ द फिटेस्ट' के सिद्धान्त को (जिसकी तुलना मे ईसा की सास्कृतिक चेतना की द्योतक 'ब्लसेड आर द मीक फॉर दे शैल इनहेरिट द अर्थ' आदि सूक्तियाँ रखी जा सकती हैं) जीव विकास क्रम पर प्रतिपादित एव प्रतिष्ठित किया वहा मार्क्स ने, यन्त्रयुग के आर्थिक चक्रो से जर्जर, सर्वहारा का पक्ष लेकर वर्गयुद्ध के सिद्धान्त को द्वन्द्व-तर्क से परिचालित ऐतिहासिक विकास-क्रम म, (युग सकट के समाधान के रूप मे)। हीगल और मार्क्स दोनो ही अपने

युग के बहुत बडे मनस्वी हुए हैं, किन्तु इनकी मन शक्ति ही इनकी सीमाएँ भी बन गयी ।

मैं मार्क्सवादी (आर्थिक दृष्टि से वर्ग-सन्तुलित) जनतन्त्र तथा भारतीय जीवन दर्शन को विश्व शान्ति तथा लोक-कल्याण के लिए आदर्श संयोग मानता हूँ, जैसा कि मैं अपनी रचनाओं में भी संकेत कर चुका हूँ,—

'अन्तमुख अद्वैत पडा था युग-युग से निस्पृह निष्प्राण
उसे प्रतिष्ठित करने जग मे दिया साम्य ने वस्तु विधान।'
—'युगवाणी'

पश्चिम का जीवन-सौष्ठव हो विकसित विश्व तन्त्र मे वितरित,
प्राची के नव आत्मोदय से स्वर्ण द्रवित भू-तमस तिरोहित।'
इत्यादि ।
—'स्वर्णकिरण'

ऐसा कहकर मैं स्वामी विवेकानन्द के सार गर्भित कथन, "मैं यूरोप का जीवन सौष्ठव तथा भारत का जीवन दर्शन चाहता हूँ" ही को अपने युग के अनुरूप पुनरावृत्ति कर रहा हूँ। मेरी दृष्टि मे पृथ्वी पर ऐसी कोई भी सामाजिकता या सभ्यता स्थापित नही की जा सकती, जो मात्र समदिक रहकर वर्गहीन हो सके। क्योकि ऊर्ध्व संचरण ही केवल वर्ग-हीन संचरण हो सकता है, और वर्गहीनता का अर्थ केवल अन्तरैक्य पर प्रतिष्ठित समानता ही हो सकता है। अत मानवता को, वर्गहीन बनने के लिए समतल प्रसारगामी के साथ ऊर्ध्व विकासकामी बनना ही पडेगा, जो हमारे युग की एकान्त आवश्यकता है।

हमारे युग का सबसे बडा दुर्भाग्य है अन्त सश्लेषण तथा बहि-संनिधान की कमी। हमारा युग मानव अभी अपने आध्यात्मिक, मान-सिक तथा भौतिक संचय को परस्पर संयोजित नही कर पाया है। उसका मन बाह्य विश्लेषण से आक्रान्त तथा अन्त सश्लेषण से रिक्त है। इसमें सन्देह नही कि धीरे धीरे मानव-चेतना विश्व क्रान्ति की बहुमुखी गुरुता से परिचित होकर विश्व सांस्कृतिक संगठन अथवा विश्व सांस्कृतिक द्वार की ओर अग्रसर हो सकेगी, जिसमे इस युग का समस्त भौतिक मानसिक वैभव संगृहीत एवं समन्वित हो सकेगा। किन्तु किप-लिंग के कुछ आधुनिक भारतीय संस्करण (यद्यपि किपलिंग के दृष्टिकोण के बारे मे यह केवल लोकमत मात्र है) भौतिकता (पश्चिम का राज नीतिक आर्थिक जीवन सम्बन्धी संघर्ष तथा वर्गहीन लोकतन्त्र) तथा आध्यात्मिकता (पूर्व की अन्तर्जीवन संघर्ष सम्बन्धी अनुभूतियाँ तथा अन्तमुख मनोयन्त्र) का समन्वय असम्भव मानते हैं, जबकि आध्यात्मिकता प्रारम्भ से ही 'पद्भ्यां पृथिवी' घोषित करती आयी है।

पूर्व - पश्चिम की सभ्यताओं की जीवन - अनुभूतियों को, जिन्हें ऐतिहासिक विकास के लिए मानव अदृष्ट (भावी) का भौगोलिक वितरण कहना अनुचित न होगा, निकट भविष्य मे विश्व सन्तुलन तथा बहिरन्तर संगठित भू चेतना एवं भू मन के रूप मे संयोजित होना ही

होगा। पश्चिम को पूव, विशेषकर भारत, जो अन्तर्मन तथा अ तजगत् का सिद्ध वज्ञानिक है,—मानव तथा विश्व के अ तविधान मे (काल मे) अन्तदृ ष्टि देगा और पूव को पश्चिम जीवन के दिक प्रसरित वहिविधान का वैभव सौष्ठव प्रदान करेगा। आनेवाली सास्कृतिक चेतना का स्वर्गोन्नत सेतु पूव तथा पश्चिम के सयुक्त छोरो पर झूलकर धरती के जीवन एव विश्व-मन को एक तथा अखण्ड बना देगा। तब दोनो के, आज की दृष्टि से, विरोधी अस्तित्व नवीन मानव-चेतना के ज्वार मे डूब जायेंगे और विश्व मानवता एक ही सिधु की अगणित लहरो की तरह भू-जीवन की आरपार-व्यापी सौदय गरिमा वहन कर सकेगी।

आज के सक्राति-काल मे मैं साहित्य स्रष्टा एव कवि का यही कतव्य समझता हूँ कि वह युग-सघप के भीतर जो नवीन लोक मानवता ज म ले रही है वतमान के कोलाहल के बधिर पट स आच्छादित मानव हृदय के मच पर जिन विश्व निर्माण, विश्व-एकीकरण की नवीन सास्कृतिक शक्तियो का प्रादुर्भाव तथा अ त क्रीडा हो रही है उ हे अपनी वाणी द्वारा अभिव्यक्ति देकर जीवन सगीत म झकृत कर सके और थोथी बौद्धिकता तथा सैद्धान्तिकता के मृगजल मरु मे भटकी हुई अ त शू य मनुष्यता का ध्यान उसके चिर उपेक्षित अ तजगत तथा अ तर्जीवन की ओर आकर्षित कर सके, एव इस युग के वादा की सकीण भित्तिया म ब दी युग युग से निश्चेष्ट निष्क्रिय मानव-हृदय म जिसकी प्रत्येक श्वास मे घणा द्वेप के विप का सचार हो रहा है, स्वाभाविक प्रेम का स्प दन तथा देवत्व का सगीत जाग्रत कर सके,—विशेप कर जब इस युग मे मानव हृदय इतना क्षुधित, चेतना शू य तथा विकसित न हो सकने के कारण निमम हो गया है कि दो विश्व-युद्धो के हाहाकार के बाद भी आज मनुष्य तीसरे विश्व-व्यापी अणु-सहार के लिए उद्यत प्रतीत होता है। कवि की विश्वप्रीति एव मानव प्रेम की वशी को आत्मकुण्ठा के प्रतिकार के लिए व्यक्तिगत घृणा द्वेप तथा जनोद्धार के आवरण मे अनीति के प्रचार के लिए लोक-हितैपिता के छद्मवेश मे शक्ति लालसा तथा पद अधिकार के लिए वाद पीडित बौद्धिक दुराग्रह से उत्तेजित विश्वव्यापी लोक सहार के लिए तोपो के अनुवर कृत्रिम गजन म बदलने का दु प्रयास करना मुझे सजन प्राण साहित्यजीवी का कतव्य नही जान पडता। सौ दयस्रष्टा एव जीवनद्रष्टा चाहे वाल्मीकि हो या गोर्की, वह सेना-नायक या सै य वाहक नही होता वह स देश या युग सकेत वाहक ही होता है। वह भावात्मक चेतना का ही सजन गम्भीर शख घोप करता है।

मैं केवल इस युग के मा यताओ सम्ब धी सघप एव युगक्राति के भीतरी पक्ष पर प्रकाश डालने का प्रयत्न कर रहा हूँ जो मानव चेतना के नवीन सास्कृतिक आरोहण का सूचक है। इस दृष्टि से इस युग के समस्त वाद विवाद नवीन लोकचेतना के स्फुलिंग एव अश सत्य मात्र हैं। मानव के इस विकासोन्मुख व्यक्तित्व को निकट भविष्य मे जीवन, जो सबसे वडा स्रष्टा तथा कलाकार है, अपने रहस्य स्पर्शों से सँवारकर नवीन मानवता की सजीव शोभा मे मूर्तिमान कर देगा। बुद्ध, मसीहा, तथा मोहम्मद जिस स्वग के राज्य को पृथ्वी पर प्रतिष्ठित करना चाहते थे उस स्वप्न को हमारा विद्युत तथा अणु का युग वास्तविकता प्रदान

कर सकेगा और धीरे धीरे हम आज के युग संघर्ष के व्यापक स्वरूप को समझ सकेंगे। आज के वर्गयुद्ध में हमें जिस युग-संघर्षण का पूर्वाभास मिलता है, उसके भीतर निहित मनुष्य की अन्तश्चेतना का प्रयोजन हमारे युग-मन में अधिक स्पष्ट हो जायगा और इसमें सन्देह नहीं कि यह मात्र बाहर की रोटी का युद्ध शीघ्र ही मानव के रणक्षेत्र में भीतर भावनाओं के देवासुर-संघर्ष का रूप धारण कर, एवं मानव चेतना तथा अस्मिता के अन्तरतम स्तरों को आन्दोलित कर, मानव हृदय को स्वर्ग शान्ति से स्नानपूत तथा नवीन चेतना के सौन्दर्य और मानवता की गरिमा से मण्डित कर देगा। अस्तु—

स्वर्णकिरण में मैंने अन्तर्जीवन अन्तश्चेतना आदि को इतना अधिक महत्व इसलिए भी दिया है कि इस युग में भौतिक ज्ञान के प्रभाव से हम उन्हें बिलकुल ही भूल गये हैं। वैसे सामान्यतः उसमें बहिरन्तर जीवन के समन्वय को ही अधिक प्रधानता दी गयी है। जैसा कि— 'भौतिक वैभव औ आत्मिक ऐश्वर्य नहीं संयोजित!' 'बहिरन्तर के सत्यों का जगजीवन में कर परिणय', 'बहिर्नयन विज्ञान हो महत् अन्तर्दृष्टि ज्ञान से योजित'—आदि अनेक पंक्तियों में अनेक रूप से मिलेगा। युग चेतना सम्बन्धी मान्यताओं पर भी मैंने 'स्वर्णकिरण' के अन्तर्गत 'स्वर्णोदय' के अन्तिम भाग में तथा 'स्वर्णधूलि' की 'मानसी' में विशेष रूप से प्रकाश डाला है जिससे पाठकों पर मेरा दृष्टिकोण स्पष्ट हो जायेगा।

स्वर्णकिरण, 'स्वर्णधूलि' में मैंने यत्र-तत्र छन्दों की सम विषम गति की एकस्वरता को बदलने की दिशा में भी कुछ प्रयोग किये हैं। जिससे ह्रस्व दीर्घ मात्रिक छन्दों की गति में अधिक वैचित्र्य तथा शक्ति आ जाती है। यथा—

'सुवर्ण किरणों का झरता निर्झर' में 'सुवर्ण' के स्थान पर 'स्वर्णिम' कर देने से गति में तो संगति आ जाती है, पर सुवर्ण किरणों का प्रवाह मन्द पड़ जाता है। इसी प्रकार 'जल से भी कठोर धरती' में 'कठोर' के स्थान पर 'निष्ठुर' हो सकता था, 'मेरे ही असंख्य लोचन' के बदले 'अगणित लोचन', 'मानव भविष्य हो शासित' के बदले 'भावी हो शासित', 'दैन्यों से विदीर्ण मानव' के स्थान पर 'विक्षत' अथवा 'खण्डित मानव' हो सकता था—और ऐसे ही अनेक उदाहरण दुहराये जा सकते हैं, किन्तु मैंने सम विषम गति से शब्द शक्ति को ही अधिक महत्त्व देना उचित समझा है। इस युग में जब हम ह्रस्व दीर्घ मात्रिक के पाश से मुक्त होकर अक्षरमात्रिक तथा गद्यवत् मुक्त छन्द लिखने में अधिक सौकर्य अनुभव करते हैं, मेरी दृष्टि में, ह्रस्व दीर्घ मात्रिक में यति को मानते हुए सम विषम की गति में इधर उधर परिवर्तन कर देना कविता पर किसी प्रकार का अत्याचार नहीं होगा, बल्कि उससे ह्रस्व दीर्घ मात्रिक में स्वर पात का सौन्दर्य आ जाता है। इन रचनाओं में मैंने ह्रस्व अन्त्यानुप्रासों का अधिक प्रयोग किया है—यथा कोमल, लोचन, सुरभित इत्यादि। ह्रस्व मात्रिक तुक अधिक सूक्ष्म होने से एक प्रकार से छन्द प्रवाह में घुल मिलकर खो जाते हैं। गीतों को छोड़कर निबन्ध एवं इतर काव्य में मैंने इस प्रकार के सूक्ष्म या नम्र अन्त्यानुप्रास से ही अधिक काम लिया है,—गीतों में ह्रस्व दीर्घ दोनों प्रकार के तुकों से।

'उत्तरा' मे मेरी इधर की कुछ प्रतीकात्मक, कुछ धरती तथा युग जीवन-सम्बन्धी, कुछ प्रकृति तथा वियोग-शृंगार विषयक कविताएँ और कुछ प्रार्थना गीत संगृहीत हैं। 'उत्तरा' की भाषा 'स्वर्णकिरण' की भाषा से अधिक सरल है, उसके छन्दो मे मैंने उपर्युक्त विचारो तथा प्रेरणाओ को वाणी देने का प्रयत्न किया है, जो मेरी भावना के भी अंग है। 'धनिक श्रमिक मृत'—आदि प्रयोग मैने व्यक्तियो या संगठनो के लिए नही, युग-प्रतीको अथवा परिस्थितियो के विभाजन के लिए ही किये हैं, जो सांस्कृतिक, सामाजिक तथा राजनीतिक सभी दृष्टियो से वाछनीय है।

अन्त मे मैं अपने स्नेही पाठको से निवेदन करूँगा कि वे मेरी रचनाओ को इसी सांस्कृतिक चेतना की अस्पष्ट मर्मर के रूप मे ग्रहण करें और 'युग विषाद का भार वहन कर तुम्हें पुकारूँ प्रतिक्षण' जैसी भावनाओ को 'आओ प्रभु के द्वार!' की तरह, जन-विरोधी न समझें। ऐसी पुकार मे व्यक्ति के निजत्व का समावेश अवश्य रहता है, पर ऐसी किसी भी सामाजिकता की कल्पना मै नही कर सकता, जिसमें व्यक्ति के हृदय का स्पन्दन रुक जाये और न शायद दूसरे ही करते होंगे।

मैं बाहर के साथ भीतर (हृदय) की क्रान्ति का भी पक्षपाती हूँ, जैसा कि मैं ऊपर संकेत कर चुका हूँ। आज हम वाल्मीकि तथा व्यास की तरह एक ऐसे युग शिखर पर खड़े है, जिसके निचले स्तरो मे धरती के उद्वेलित मन का गर्जन टकरा रहा है और ऊपर स्वर्ग का प्रकाश, अमरो का संगीत तथा भावी का सौन्दर्य बरस रहा है। ऐसे विश्व-संघर्ष के युग मे सांस्कृतिक सन्तुलन स्थापित करने के प्रयत्न को मैं जाग्रत चैतन्य मानव का कर्त्तव्य समझता हूँ। और यदि वह सम्भव न हो सका तो क्रान्ति का परिस्थितियो द्वारा संगठित सत्य तो भूकम्प, बाढ तथा महामारी की तरह है ही, उसके अदम्य वेग को कौन रोक सकता है?

'कौन रोक सकता उद्वेग भयंकर,
मर्त्यों की परवशता, मिटते कट मर!'

अतएव मेरी इन रचनाओ मे पाठको को 'धराशिखर' के इसी संगीत की अथवा नवीन चेतना के आविर्भाव सम्बन्धी अनुभव की क्षीण प्रतिध्वनियाँ मिलेंगी। अपनी श्लक्ष्ण कल्पना-वाणी द्वारा जन युग के इस हा हा रव मे मैंने मनीषियो तथा साहित्य प्रेमियो का ध्यान मानव-चेतना के भीतर सृजन शक्तियो की इन सूक्ष्म क्रीडाओ की ओर आकृष्ट करने की चेष्टा की है जिससे हम आज की जाति-पाँति वर्गों मे विकीर्ण तथा आर्थिक राजनीतिक आन्दोलनों से कम्पित धरती को उन्नत मनुष्यत्व में बाँधकर विश्व मन्दिर या भू स्वर्ग के प्रांगण मे समवेत कर सकें। मेरे गीतो का इसके अतिरिक्त और कोई अर्थ नही है। वे मनुष्य के अन्तर्जगत तथा भविष्य की अस्पष्ट झाँकियाँ भर हैं और नवीन मानव चेतना के सिन्धु मे मेरी वाणी के स्वप्न अवगाहन अथवा स्वप्न निमज्जन मात्र।

इस भूमिका के रूप में मैंने अपने विचारों को उनके महत्व के प्रति किसी प्रकार के मोह के कारण नहीं दिया है,—केवल पाठकों की सुविधा के लिए अपनी इधर की रचनाओं की पृष्ठभूमि का एक रेखा-चित्र भर खींच दिया है। अपनी त्रुटियों के लिए मैं उनसे विनम्रता-पूर्वक क्षमा याचना करता हूँ। इति।

सुमित्रानंदन पंत

६ बेली रोड, प्रयाग
१५ जनवरी, '४६

उत्तरा

विचरो प्रिय, उत्तरा गीत पथ।
बढते अगणित ध्वनित चरण,
विचरण करते नीरव युग शत शत।
चुभते शूल, मर्त्य पग लोहित,
झरते फूल, मनोदग मोहित,
यह बहिरन्तर क्रान्ति, श्रान्त श्लथ
चलता जन जीवन, भू लथपथ।
बदल रहा अब स्थूल धरातल,
परिणत होता सूक्ष्म मनस्तल,
विस्तत होता बहिर्जगत अब
विकसित अतर्जीवन अभिमत।
जड चेतन के चक्र निरन्तर
घूम रहे चिर प्रलय सजन कर,
जयध्वनि हा हा रव मे बढता
युगपथ पर मानवता का रथ।
चिर विकास प्रिय जन - भू का मग,
भावी धरती स्वप्ना के पग,
गत भू जीवन, युग मन ही रे,
सत्य नही, मानव के इति अथ।
विचरो प्रिय, उत्तरा काव्य पथ।

युग विषाद

गरज रहा उर व्यथा भार स
गीत बन रहा रोदन,
आज तुम्हारी करुणा के हित
कातर धरती का मन।
मौन प्रार्थना करता अन्तर
मम कामना भरती ममर,
युग स ध्या जीवन विपाद से
आहत प्राण समीरण।

जलता मन मेघों का-सा घर
स्वप्नों की ज्वाला लिपटा कर,
दूर, क्षितिज के पार दीखती
रंग क्षितिज की नूतन।

बढ़ते अगणित चरण निरन्तर
दुर्दम आकांक्षा के पग पर,
खुलता बाहर तम कपाट
भीतर प्रकाश का तोरण।

श्रान्त, स्वप्न से लथपथ जग मन,
नव प्रभात का यह स्वर्णिम क्षण,
युग युग का खँडहर यह जग
करता नव शोभा धारण।

युग छाया

दारुण मेघ घटा घहराई,
युग सन्ध्या गहराई।
आज धरा प्रांगण पर भीषण
झूल रही परछाईं।
तुम विनाश के रथ पर आओ,
गत युग का हत शव ले जाओ,
गीध टूटते, श्वान भूँकते
रोते शिवा विदाई।

मनुज रक्त से पंकिल युग पथ,
पूर्ण हुए सब दैत्य मनोरथ,
स्वर्ग रुधिर से अभिषेचित अब
नव युग की अरुणाई।
नाचेगा जब शोणित चेतन,
बदलेगा तब युग निरुद्ध मन,
कट मर जायेंगे युग दानव,
सुर नर होंगे भाई।

ज्ञात सत्य की मुझे विवशता,
जन्म ले रही नव मानवता
स्वप्न द्वार फिर खोल उषा ने
स्वर्ण विभा बरसाई।

युग संघर्ष

गीत क्रान्त रे इस युग के कवि का मन,
नृत्य मत्त उसके छन्दों का यौवन।
वह हँस हँस कर चीर रहा तम के घन
मुरली का मधु रव कर भरता गर्जन।

नवल चेतना में उसका उर ज्योतित,
मानव में अन्तर वैभव से विस्मित।
युग विग्रह में उसे दीखती विम्बित
विगत युगों की रुद्ध चेतना सीमित।
उसका जाग्रत मन करता दिग् घोषण
अन्तर्मानव का यह युग संघर्षण।
शोषक हैं इस ओर, उधर है शोषित,
बाह्य चेतना के प्रतीक जो निश्चित।

धनिक श्रमिकों का स्वरूप धर बाहर
ह्रास शक्तियाँ आत्म नाश हित तत्पर,
क्षोभ भरे युग शिखर उभड़ते दुर्धर
टकराता भू ज्वार क्षुब्ध भव सागर।
नृत्य कर रही भ्रांति रक्त लहरों पर,
घृणा द्वेष की उठी आँधियाँ दुस्तर।
कौन रोक सकता उद्वेग प्रलयंकर
मर्त्यों की परवशता मिटते कट मर।

महा सृजन की तड़ित टूटती दुःसह
अंधकार भू का विदीर्ण कर दुर्वह।
युग युग की जड़ता कँप उठती थर थर
आज स्वप्न प्रज्वलित चकित रे अंतर।
नव्य चेतना का विरोध करते जन
यह जड़त्व भू मन का अंध पुरातन।
आज मनोजग में जन के भय संशय
द्वेष प्रेम का देता पहिला परिचय।

सम्भव है, नभ में छायें करुणा घन
अंतर मन में भर जाय युग क्रन्दन,
बरसायें उर भू पर आभा के कण
द्रोही मानव के प्रति विद्रोही बन।
ध्यान मौन आराधक, साधक, गायक,
सोच मग्न रे मनोजगत के नायक,
आंदोलित मानवता के अभिभावक,
विश्व क्रांति यह आपद काल भयानक।

रक्त पूत अब धरा शान्त संघर्षण,
धनिक श्रमिक मृत तर्कवाद निश्चेतन।
सौम्य शिष्ट मानवता अंतर्लोचन
सृजन मौन करती धरती पर विचरण।
उज्ज्वल मस्तक पर मुक्ता से श्रम कण,
शांत धीर मन से करती वह चिंतन,
नव जीवन निर्माण निरत, नव चेतन
साधारण रे वास वसन, मित भोजन।

विद्युत् प्रणु उगये गग्गुण प्रव गत घन,
वसुधा पर नव स्वग सृजन के साधन,
आज चेतना का गत युग समापन
नूतन का अभियान्न करता कवि मन !

नव मानव

ओ अग्नि चक्षु, अभिनव मानव !
सपक्ज रे तेरा पावक
चेतना शिखा में उठा धधक,
इसको मन नहीं सकेगा ढँक !

यह ज्वाला जग जीवन दायक,—
स्वप्नो की शोभा से अपलक
मानस भू सुलग रही धक धक !
ओ नवल युगागम के अनुभव !
नव उषा-सा स्वर्णाभ वरण
वह शक्ति उतरती ज्योति चरण
उर का प्रकाश नव कर वितरण !

नव शोणित स उवर भू मन,
शोभा से विस्मित कवि लोचन,
अब धरा चेतना नव चेतन !
ओ अन्तर्ज्ञान नयन वैभव !
भू तम का सागर रहा सिहर
जन मन पुलिनो पर बिखर बिखर
उठ रश्मि शिखर नाचती लहर !

तिरते स्वप्नो के पोत अमर
देवो का स्वर्णिम वैभव हर
नव मानवीय द्रव्यो से भर !
लो, गूंज रहा अम्बर में रव,—
मैं लोक पुरुष, मैं युग म नव
मैं ही सोया भू पर नीरव
मेरे ही भू रज के अवयव !

अपने प्रकाश से कर उदभव
मैं ही धारण करता हूँ भव,
नव स्वप्नो का रच मनोविभव !
जय त्रिनयन, युग सम्भव मानव !

गीत विहग

मैं नव मानवता का सन्देश सुनाता,
स्वाधीन लोक की गौरव गाथा गाता,

मैं मन क्षितिज के पार मौन शाश्वत की
प्रज्वलित भूमि का ज्योतिवाह बन ग्राता !
युग के खँडहर पर डाल सुनहली छाया
मैं नव प्रभात के नभ म उठ, मुसकाता,
जीवन पतझर म जन मन की डालो पर
मैं नव मधु के ज्वाला पल्लव सुलगाता !
ग्रावेशा मे उद्वेलित जन सागर मे
नव स्वप्नो के शिखरा का ज्वार उठाता,
जब शिशिर क्रात वन-रोदन करता भू मन,
युग पिक बन प्राणो का पावक बरसाता !
मिट्टी के पैरा से भव-क्लात जना को
स्वप्ना के चरणो पर चलना सिखलाता,
तापा की छाया से कलुषित ग्रतर को
उन्मुक्त प्रकृति का शोभा वक्ष दिखाता !
जीवन मन के भेदा म सोयी मति को
मैं ग्रात्म एकता म ग्रनिमेष जगाता
तम पगु, बहिर्मुख जग म बिखरे मन को
मैं ग्रतर सोपाना पर ऊर्ध्व चढाता !
ग्रादर्शो के मरु जल स दग्ध मृगो को
मैं स्वर्गंगा स्मित ग्रतपथ बतलाता,
जन जन का नव मानवता म जाग्रत कर
मैं मुक्त कण्ठ जीवन रण शख बजाता !
मैं गीत विहग, निज मर्त्य नीड से उड कर
चेतना गगन म मन के पर फैलाता,
मैं ग्रपने ग्रन्तर का प्रकाश बरसा कर
जीवन के तम को स्वर्णिम कर नहलाता !
मैं स्वदू ता का वाध मनोभावो म
जन जीवन का नित उनको ग्रग बनाता
मैं मानव प्रेमी, नव भू स्वग बसा कर
जन धरणी पर देवो का विभव लुटाता !
मैं जन्म-मरण के द्वारो से बाहर कर
मानव को उसका ग्रमरासन दे जाता,
मैं दिव्य चेतना का सदेश सुनाता,
स्वाधीन भूमि का नव्य जागरण गाता !

जागरण गान

ग्रहण करो फिर ग्रसि धारा व्रत,
भारत के नव यौवन,
धरा चेतना म ग्रब फिर स
छिडा तुमुल ग्रान्दोलन !

नवल विश्व हो वह आभा-रत,
सकल मानवा का घर।

जाति पाँति देशो मे खण्डित भू जन,
धर्म नीति के भेदो मे बिखरे मन,
नव मनुष्यता मे हो मज्जित
जीण युगो के अन्तर,
विचरें मुक्त हृदय, अन्त स्मित,
प्रीति युक्त नारी नर।

लोक चेतना ज्वार बढ रहा प्रतिक्षण
स्वप्नो के शिखरो पर कर युग नतन,
तडक रही हथकडिया झनझन
मन के पाश भयकर,
अग्नि गर्भ युग-शिखर विकट
फटने को है, छोडो डर।

आज समापन युग का वृत्त पुरातन,
भू पर सस्कृति चरण धर रही नूतन,
रँग रँग की आभा पखडियाँ
बरसाता झुक अम्बर,
खोलो उर के रुद्ध द्वार, जन,
हँसता स्वण युगान्तर।

विश्व मन सगठन हो रहा विकसित,
जन जीवन सचरण ऊध्व, भ विस्तृत,
नव्य चेतना केतु फहरता,
सत रँग द्रवित दिगन्तर,
आदर्शो के पोत बढ रहे,
पार अतल भव सागर।

स्वग भूमि हो भू पर भारत,
जन मन धरणी सुदर,
अन्तर ऐश्वर्यो से मण्डित
मानव हो देवोत्तर।

स्वप्न क्रान्त

स्वप्न भार से मेरे कधे
झुक झुक पडते भू पर,
क्लान्त भावना के पग डगमग
कँपते उर मे नि स्वर।

ज्वाला गर्भित शोणित बादल
लिपटा धरा शिखर पर उज्ज्वल,
नीचे छाया की घाटी मे
जगता क्रदन ममर।

अन्तर्व्यथा

ज्योति द्रवित हो, हे घन !
छाया संशय का तम,
तृष्णा भरती गर्जन,
ममता विद्युत नर्तन
करती उर में प्रतिक्षण !
करुणा धारा में झर
स्नेह अश्रु बरसाकर,
व्यथा भार उर का हर
शांत करो आकुल मन !
तुम अंतर के क्रंदन,
अकथनीय चिर गोपन,
मंद्र स्तनित भर चेतन
करो अनिष्ट निवारण !
घट घट वासी जलधर,
तुमको ज्ञात निरंतर
अंतर का दुख निःस्वर
करता जो नव सर्जन !
मन से ऊपर उठकर
विचर ऊर्ध्व शिखरों पर
स्वर्गिक आभा से भर
उतरो बन नव जीवन !
खोलो उर वातायन
आयें स्वर्ग किरण - छन,
भू स्वप्नों का नूतन
रचें इंद्र धनु मोहन !

उन्मेष

उमड़ रही लहरों पर लहरें
घिरते घन पर घिर घन,
स्वर्ण रजत वालुका पुलिन - से
टूट रहे मन के प्रण !
टकराते शत स्वप्न निरंतर,
रहस ध्वनित कर आकुल अंतर,
संशय भय के कूलों पर भर
नव प्रतीति का प्लावन !
यह प्राणों की वेला दुर्धर
स्वप्न शिखर लहरों में उठकर
करती मानस गीत तरंगित
भर निःस्वर जय गर्जन !

अभय तुम्हारी जग में पग-पग,
निरत तुम्हारी विजय मग्न लिए रँग
अनुगत विनय पूजा में नत पग
करती प्रिय अभिवादन!
सहज हुए से पुलकित मेरे मन,
विद्ध रूप से विस्मित लोचन,
श्रद्धानत हो जाग्रत अन्तर
पा भव छाया दान!

आगमन

मौन गुंजरण जगता मन में
अमर धूपछाँह के वन में!

आज भर गया प्राण समीरण
स्वर्ग मधुरिमा से रे नूतन,
दिखलाता जीवन प्रभात मुख
सोन क्षितिज उर का वातायन,—
लीन जागरण के इस क्षण में!

मन के भीतर का मन गाता,
स्वर्ग धरा में नहीं समाता,
स्वप्नों का आदेश ज्वार उठ
विश्व सत्य के पुलिन डुबाता,—
लहराता शाश्वत के जीवन में!

आज आ रही लहर पर लहर
डूब रहे युग-युग के अन्तर,
यह अन्तर्मन का आंदोलन,
असुर जूझते, जीतते अमर,—
धरा चेतना के प्रांगण में!

कहाँ बढ़ाते भीत जन चरण?
हुआ समापन बाहर का रण!
स्वर्ग चेतना के शोणित से
लथपथ आज मर्त्य भू का मन,—
मरते जड़ जग नव चेतन में!

मौन सृजन

मौन आज क्यों वीणा के स्वर?
इस नीरवता में तुम गोपन
कौन रच रहे नूतन गायन?
स्तब्ध हृदय कम्पन में जगते
आशा भय, संशय जय थर थर!

स्वप्नों से मुँद जाते लोचन,
आकुल रहस प्रभावों से मन,
प्राणों में कैसा आकर्षण
बहता जाने सुख से मन्थर!
तुम शाश्वत शोभा के मधुवन
शिशिर वसन्त जहाँ रहते क्षण,
आज हृदय के चिर यौवन वन
भरते प्रिय, अन्तर्मुख मर्मर!
रंगों में गाता कुसुमाकर,
सौरभ में मलयानिल निःस्वर,
नील मौन में गाता अम्बर
ध्यान लीन सुख स्पर्श पा अमर!
शोभा में गाते लोचन लय,
प्राण प्रीति के मधु में तन्मय,
रस के बस, उल्लास में अभय
गाता उर भीतर ही भीतर!
मौन आज क्या वीणा के स्वर?

युग विराग

भू की ममता मिटती जाती मेघों की छाया - सी चंचल,
सुख सपने सौरभ से उड़ते, झरते उर के रंगों के दल!
पुछती स्मृति पट की रेखाएँ धुलते जाते सुख दुख के क्षण,
चेतना समीरण - सी बहती निखरा ओसों के सस्मित व्रण!
वह रही राग में नहीं जलन कुछ बदल गया उर के भीतर,
खो गया कामना का घनत्व, रीते घट सा अब जग बाहर!
यह रे विराग की विजन भूमि मन प्राणों के साधन के स्तर,
तुम खोल स्वप्न का रहस द्वार जो आते भीतर आज उतर,—
हँस उठता उर का अन्धकार नव जीवन शोभा में दीपित,
भू पुलिन डुबाता स्वर्ग ज्वार, रहता कुछ भी न अचिर सीमित!
फिर प्रीति विचरती धरती पर झरती पग पग पर सुन्दरता,
बन्धन बन जाते प्रेम मुक्ति देव प्रिय होती नश्वरता!

मेघों के पर्वत

यह मेघों की चल भूमि घोर
बह रहे जहाँ उनचास पवन,
तुम बसा सकोगे यहाँ कभी
क्या मानव का गृह मनोभवन?
जन-जन का मन करता गर्जन
बरसाती चिनगी विद्युत् घन,

टकराते दुर्दम फेन शिखर
सागर-सा उफनाता भू मन!

यह विश्व शक्तियों की क्रीड़ा
गत छायाएँ बनतीं चेतन,
जन-मन विमूढ़ जिनका वाहक,
बढ़ता जाता युग संघर्षण!

पर्वत पर पर्वत खड़े भीम,
अड़ते तृष्णा, अभिमान, मद,
उन्मथित धरा-चेतना सिंधु
आंदोलित अवचेतन का तम!

मन स्वर्ग-शिखर पर मँडराता
उर में गहराता नव जीवन,
वह अंतर आभा से स्वर्णिम
झरता भू पर, स्वप्नों का घन!

प्रगति

तुम बाधा बंधन में
बढ़ते प्रतिक्षण हो,
काँटों में फूल
खिलाते ज्वाल सुमन हो!

जब हृदय दाह से
कँपती धरती थर-थर
जब प्रलय ज्वार में
पुलिन डुबाता सागर,
लहरों के शिखरों पर
करते नर्तन हो!

जग जीवन आज बना
स्वार्थों का प्रांगण,
जीवन की साधें
कर उठतीं वन-रोदन,
अन्तर कराहता,—
अब युग परिवर्तन हो!

है ज्ञात, गढ़ रहे हो
तुम मानव नूतन,
सौंदर्य प्रेम आनंद
क्षेम कर वपन,
पतझर में सुलगाते
नव मधु यौवन हो!

वह ज्योति मेघ अब
उतरा हृदय शिखर पर

तुम मुसकाओ हे,
दीपित कर
जीवन रण को !

भू वीणा

आज करो फिर भू जीवन की
वीणा को नव झंकृत,
उसकी गोपन आकाक्षाएँ
नाच उठें स्वर मुखरित !

मम कथा मूर्छित जो निःस्वर
भाव गीत विस्मृत जो सुंदर,
स्वप्न ध्वनित कर अमर स्पर्श से
उन्हें करो नव जागृत !

युग - युग के स्मृति तार साधकर
हृदय - हृदय के मिला मौन स्वर
शोभा शक्ति मधुरिमा में नव
करो विश्व उर स्पंदित !

जन - जन की आशा अभिलाषा
जिसे नही कह पाती भाषा,
जग जीवन के मून राग मे
हो समवेत प्रवाहित !

बरसें नव भू स्वप्नो की झर,
प्रीति तरंगित हो उर अम्बर,
एक गीत हो जन भू जीवन
तुम जिसमे हो वंदित !

परिणय

फिर स्वग बजाये
धरती की वीणा निश्चय,
जो कम - भग्न उर
तुम पर नही करे सशय !

नभ के स्वप्ना से
जगत जलधि हो रहस ज्वलित
जो अमर प्रीति से
हृदय रहे नित आदोलित !

ऊपा पावक से
भू के कण हो नव चेतन,
तम का कपाट जो
खोल सके तद्रित भू मन !

फिर ऊर्ध्व तरंगित
हो जन धरणी का जीवन,
शाश्वत के मुख का
मानव मन जो हो दर्पण!

मर्त्यों पर सुरगण
करें अमरता न्योछावर,
जो व्यक्ति विश्व में
मूर्त बने मानव ईश्वर!

फिर स्वर्ग बजाये
भू की हृत्तन्त्री निश्चय,
जो ज्ञान भावना,
बुद्धि हृदय का हो परिणय!

भू प्रांगण

आज वरो धरणी का प्रांगण!
नव प्रभात के स्वर्ण हास्य से
रश्मि गर्भ हो धरा रेणु कण!

छोडो निज स्वर्णिम रहस्य द्वार
धरा वक्ष इच्छा विदीर्ण कर,
स्वर्ग रुधिर मृण्मांस से बहे
उर में हो चेतना गहन व्रण!

शोभा से सिंचित हो भू तन,
मनुज प्रीति सव्यथित लोक मन,
स्वप्नों के वैभव से व्याकुल
हँसे अश्रुओं में वसुधानन!

लिपटे भू के जघनों से घन
प्राणों की ज्वाला जन मादन,
नाभि गर्त में घूम भँवर-सी
करे मर्म आकांक्षा नर्तन!

अग्नि गर्भ उर के शिखरों पर
उतरे सुर-आनंद रस निखर,
अन्तर्जीवन के वभव से
मुकुलित हो जगती के दिशि क्षण!

जीवन उत्सव

अरुणोदय नव, लोकोदय नव!
मंगल ध्वनि हर्षित जन मन्दिर
गूंज रहा अम्बर में मधुरव!

स्वर्णोदय नव, सर्वोदय नव!
रजत झाँझ से बजते तरुदल
स्वर्णिम निर्झर झरते कल-कल,

भू यौवन

फूलो की चोली मे कस दो
आज धरा उर यौवन !
उमडें सौरभ उच्छ्वासो के
अम्बर मे सतरँग घन !
प्राणो मे जागे मधु गुजन,
अन्तनभ म पचम कूजन,
स्वप्न मजरित हो शोभा से
युग स्वर्णिम जन प्रागण !
ज्वाल प्ररोह दिशा हा पुलकित
रँग रँग की इच्छाएँ कुसुमित,
झुके सफल जग जीवन डालें
रश्मि ज्वलित पा चुम्बन !
मनुज स्पश से हो भू चेतन,
दव हप से अन्तर्लोचन,
सीमाग्रा म, भगुरता मे
बने असीम चिरन्तन !
बाँहा म हो प्रीति पल्लवित,
अन्तर मे रस जलधि तरगित,
स्मित उरोज शिखरो पर बरस
स्वग विभा सुर मोहन !

भू जीवन

ना, तुमको भी क्या ढँक लेगी धरती की वेणी अँधियाली ?
तुम भू के जीवन के तम म दो गूथ उपा मुख की लाली !
वह हरी मखमली चोली म बाँधे मुकुला के स्वप्न शिखर,
तुम उन पर निज चतना रश्मि बरसाओ, वे नव उठें निखर !
फूलो की शय्या पर लेटा मधु स गुजित उसका यौवन,
तुम उसके कम्पित अधरा पर धर दो प्रकाश का चिर चुम्बन !
कामना लता उसकी बाँह कँपती पल्लव पुलकित थर-थर,
तुम भू रज के परिरम्भण म दो निखिल स्वग का वैभव भर !
उसकी पथु श्रोणी म सोय शत ज्वाल गभ निश्चल भूधर,
जीवन का छायातप ओढे लटे जिन पर भू-जन सिर धर !
मधुरर कानिल म यल भद्गत मजरित स्वण काँची कटि पर
जन-मन के गुजन कूजन स रसती रज के तम को उवर !
उसक जघना के पुलिना म सोयी शत झरना की ममर,
उनम प्राणा की वला का लहरा दो चन्द्र ज्वलित सागर !
वह चलती, ज्यो उडती नभ पर, जीवन के धर शत चरण मुखर,
लहरी-सी, ग ध समीरण-सी, पग-पग पर शोभा पडती झर !

चेतना चाँदनी-सी उसकी, तम श्री' प्रकाश जिसमे गुम्फित,
तुम उसका निजन शयन कक्ष नव स्वप्नो से कर दो दीपित !
वह कहती, तुम उसके प्रकाश वह जिसकी जीवन-प्रिय छाया,
श्री सुषमा, प्रीति मधुरिमामय हो, देव, तुम्हारी रज काया !
वह प्रणत - यौवना चरणो पर बैठी, उर मे प्रिय स्मृति दशन,
तुम आओ, उसके सँग बैठो, सगीत बने भू का क्रदन !

मौन गुजन

आओ हे, इस मास विभा म
स्वप्न चरण धर नूतन,
अब न रहस्य रहे अतर का
बहिर्जगत से गोपन !
आज मिल गया आभा से तम
चेतन ज्योत्स्ना मे हँस निरुपम,
आओ, निज शशि मुख स सतरँग
उठा मोह अवगुण्ठन !
स्वप्नो की कलिया - सा कोमल
खोल वक्ष शोभा का उज्ज्वल,
मेरे उर कम्पन म अपना
अमर मिलाओ स्पदन !
मौन हुआ प्राणो का गुजन,
डूब गय मधु विस्मृति मे क्षण,
मन मे ममस्पर्श सौरभ का
खुला रहस्य वातायन !
यह उर की नीरवता का क्षण,
निष्क्रिय शून्य न जीवन वजन,
नव जीवन का स्वप्न हृदय म
करता जो अब धारण !
कर दो नव स्वर-लय म परिणत
प्राणो का क्रन्दन मर्माहत,
आओ हे, मन की द्वाभा मे
स्वप्न चरण धर नूतन !

काव्य चेतना

तुम रजत वाष्प के अम्बर से
बरसाती शुभ्र सुनहली भर,
शोभा की लपटो मे लिपटा
मेघा का माया कल्पित घर !
सुर प्रेरित ज्वालाएँ कँपती
फहरा आभाए आभा पर,

शत रोहितप्रभ छायाओ से
भर जाता तडित चकित अन्तर !

सुषमा की पखडिया खुलती
फैला रहस्य स्पर्शो के दल,
भावो के मोहित पुलिनो पर
छाया प्रकाश बहता प्रतिपल !

सतरगे शिखरो पर उठ गिर
उडता शशि सूरज सा उज्ज्वल,
चेतना ज्वाल सी चन्द्र विभा
चू पडती प्राणो मे शीतल !

जलते तारा-सी टूट रही
अव अमर प्रेरणाएँ भास्वर,
स्वप्नो की गुजित कलिकाएँ
खिल पडती मानस मे नि स्वर !

तुम रहस द्वार से मुझे कहा
गीते ले जाती हो गोपन,
शोभा मे जाता डूब हृदय
पा स्पश तुम्हारा सुर चेतन !

सम्मोहन

स्वप्नो की शोभा बरस रही
रिमझिमझिम अम्बर से गोपन,
शत धूपछाह सुरधनु के रँग
जमते अन्तर-पट पर प्रतिक्षण !

तुम स्वग चादनी-सी नीरव
चेतनामयी आती भू पर,
प्राणो का सागर चन्द्र ज्वाल
लहराता इच्छा म नूतन !

जीवन की हरियाली हँसती,
कँपती छाया पर छायाएँ,
रँग रँग की आभाएँ बखेर
सजती आशा नव सम्मोहन !

सुख दुख म भर नव स्वर सगति
कल्पना सष्टि रचती अभिनव,
कवि - उर स्वप्नो के वैभव से
करता जन भू का अभिवादन !

हृदय चेतना

तुम चन्द्र ज्वाल-सी सुलग रही
जीवन की लहरो म चचल

स्वर्गिक स्पर्शों से ग्रन्त स्मित
कँप-कँप उठता चल मानस जल।
तुम स्वप्न द्वार पट हटा रहस
लिपटाती शोभा म दिगि पल
निज स्वण मास का वक्ष खोल
सुषमा के मुकुला का कोमल।
तुम मौन शिखर स बरसाती
लावण्य प्रीति उल्लास नवल
मिट्टी के तद्विल रोग्रा मे
प्राणा का पावक भर विह्वल।
ग्रब मथित विश्व विरोधो म
जन जीवन वारिधि क्षुब्ध विकल,
तुम चूम घणा - ग्रधरो का विप
तम का मुख करती स्वर्णोज्ज्वल।

निर्माण काल

लो, ग्राज झरोखा से उडकर फिर देवदूत ग्रात भीतर,
सुरधनुग्रा के स्मित पख खोल नव स्वप्न उतरत जन भ पर।
रँग - रग के छाया जलदा-सी ग्राभा पखडिया पडती झर
फिर मनोलहरियो पर तिरती बिम्बित सुर ग्रप्सरिया नि स्वर।
यह रे भू का निर्माण काल हँसता नव जीवन ग्ररुणोदय,
ले रही जन्म नव मानवता ग्रब खव मनुजता होती क्षय।
धू-धू कर जलता जीण जगत लिपटा ज्वाला म जन ग्र तर,
तम के पवत पर टूट रही विद्युत्-प्रपात सी ज्योति प्रखर।
सघपण पर कटु सघपण यह दैविक भौतिक भू कम्पन,
उद्वेलित जन मन का समुद्र, युग रक्त - जिह्व करता नतन।
ढह रहे ग्र ध विश्वास श्रुग युग बदल रहा, यह ब्रह्म ग्रहन्।
फिर शिखर चिरतन रहे निखर यह विश्व - सचरण रे नूतन।
बज रहे घटियो-से तरुदल छवि - ज्वाल - पल्लवित जग जीवन,
नव ज्योति-चरण धर रहा सृजन फिर पुष्प वष्टि करते सुरगण।
ग्रव स्वण द्रवित रे ग्र तनभ झरत नीरव शोभा निझर,
ग्रवतरित हो रही सूक्ष्म शक्ति फिर मौन गुजरित उर ग्रम्बर।
बँधता प्रकाश तम-बाहा म सुर मानव - तन करत धारण,
फिर लोक चेतना रग भूमि, भू-स्वग कर रह परिरम्भण।

ग्रनुभूति

तुम ग्राती हो,
नव ग्रगो का
शाश्वत मधु विभव लुटाती हो।

बजते निःस्वर नूपुर छम-छम,
साँसो म थमता स्पन्दन क्रम,
तुम आती हो,
अंतस्तल म
शोभा ज्वाला लिपटाती हो।

अपलक रह जाते मनोनयन,
कह पाते मम कथा न वयन,
तुम आती हो,
तंद्रिल मन म
स्वप्नो के मुकुल खिलाती हो।

अभिमान अश्रु बनता भर-भर,
अवसाद मुखर रस का निर्भर,
तुम आती हो,
आनन्द शिखर
प्राणो म ज्वार उठाती हो।

स्वर्णिम प्रकाश म गलता तम,
स्वर्गिक प्रतीति म ढलता भ्रम,
तुम आती हो,
जीवन पथ पर
सौन्दर्य रहस बरसाती हो।

जगता छाया वन म ममर,
कँप उठती रुद्ध स्पृहा थर-थर,
तुम आती हो,
उर तन्त्री म
स्वर मधुर व्यथा भर जाती हो।

आवाहन

तुम स्वण चेतना पावक से फिर गढो आज जग का जीवन
मधु के फूलो की ज्वाला से रँग धरणी के उर का यौवन।
आदर्शों का जलता प्रकाश तुम दो उडेल भू अचल म
स्वप्नो की लपटा मे लिपटा मन के अँधियाल को पल म।
जलता तरु के तम म पलाश जीवन की इच्छा से लोहित,
जग की डाली कर दो शाश्वत शोभा क शोणित से मुकुलित।
कामना वह्नि स दमक रहा भूधर-सा भू का वक्ष स्थल,
तुम प्रमत प्रीति निर्भर-स फिर उतरो हो ताप अखिल शीतल।
ममता विद्युत्-सी मचल रही, छाया-वाष्पो का अंतस्तल,
तुम शुभ्र किरण स फूट, उस रग दो स्वर्गिक स्मित स सतजल।
युग-युग के जितने तकवाद मानव ममत्व स वे पीडित,
तुम आओ, सीमा हो विलीन, फिर मनुज ग्रह हो प्रीति द्रवित।

स्वर्ग विभा

कैसी दी स्वर्ग विभा उँडेल तुमने भू मानस में मोहन,
मैं देख रहा, मिट्टी का तम ज्वाला बन धधक रहा प्रतिक्षण !
नव स्वप्नों की लपटें उठतीं शोभा की आभाएँ बखेर,
शत रँग की छायाएँ कँपती उपचेतन मन का गहन घेर !
ज्यों उषा प्रज्वलित सागर में डूबता अस्तमित शशि मण्डल
चेतना क्षितिज पर आभा स्मित भूगोल उठ रहा स्वर्णोज्वल !
लिपटी फूलों से रंग ज्वाल, गूँजते मधुप, गाती कोयल,
हरिताभ हर्ष से भरी धरा, लहरों के रश्मि ज्वलित अंचल !
भौतिक द्रव्यों की घनता से चेतना भार लगता दुवह,
भू जीवन का आलोक ज्वार युग मन के पुलिनों को दुसह !
चेतना पिण्ड रे भू गोलक युग-युग के मानव से आवृत,
फिर तप्त स्वर्ग-सा निखर रहा वह मानवीय बन, सुर दीपित !

नव पावक

अब नव ऊषा के पावक का पल्लवित हो रहा भू जीवन
शोभा की कलियों का वैभव विस्मित करता मन के लोचन !
मैं रे केवल उन्मन मधुकर भरता शोभा स्वप्निल गुंजन,
कल आयेंगे उर तरुण भृंग स्वर्णिम मधुकण करने वितरण !
यह स्वर्ण चेतना की ज्वाला मानव अंतपुर की गोपन
जो कूद-कूद नव संतति में बढ़ती जायेगी नव चेतन !
वह पूर्ण मानवों का मानव जो जग में धरता क्रमिक चरण,
वह मर्त्य भूमि को स्वर्ग बना जन भू को कर लेगा धारण !
अब धरा हृदय-शोणित से रँग नव युग प्रभात श्री में मज्जित,
अब देव नरों की छाया में भू पर विचरेंगे अंतस्मित !

गीत विभव

मैं गाता हूँ,
मैं प्राणों को
स्वर्णिम पावक बरसाता हूँ !
कब टूटेंगे मन के बंधन
रज की तन्द्रा होगी चेतन,
बंध, प्रेम ! कामना की बाँहें
खुल, तुम्हें करेंगी आलिंगन !
मैं गाता हूँ,
मैं जन-मन को
ज्वाला का पथ बतलाता हूँ !
कब दीपित होगा जीवन तम
कब विस्तृत होगा मनुज अह,

अंतर के स्वप्न रहस्य शिखर
भू पर विचरेंगे ऊर्ध्व चरण ?
मैं गाता हूँ,
मैं स्वप्नों की
स्मित पखड़ियाँ बिखराता हूँ।
कब डूबेंगे सुख-दुख के क्षण
लय होंगे तुममें विरह मिलन,
कब तप्त लालसा के मुख पर
चापोगे तुम शीतल चुम्बन ?
मैं गाता हूँ,
मैं मर्त्यों को
अमरों के पास बुलाता हूँ।
शोभा के रहस उरोजों पर
कब प्रीति धरेगी उपकृत कर,
कब मानव के आनन्द कम
उर वैभव से होंगे शोभन ?
मैं गाता हूँ,
जन धरणी पर
जीवन का स्वर्ग बसाता हूँ।
पल्लवित प्रणय की तरुण डाल,
सुलगी प्राणों में विरह ज्वाल
कब मिट्टी की मांसल ममता
प्रिय तुम्हें करेगी आत्मार्पण ?
मैं गाता हूँ,
मैं अंतर की
आभा में उर नहलाता हूँ।

भू स्वर्ग

तुम किन आकाशों में मन को
ले जाती हो नीलिमा तरल।
तह-तह मुझको नीहार रजत
ढँक लेता खुल उर सा कोमल।
अन्तर आभाओं के पथ से
उठता नीरव मन ध्यान चरण
स्वप्नों की कलियाँ रोओं में
हँसती, भर सौरभ सुर मादन।
कँपता उर, लगते तड़ित स्पर्श
चेतना जलधि के हय चपल
बरसाती शत ऊषा लाली
स्वर्गिक वातायन से उज्ज्वल।

टूटते शिखर पर मानस के
रँग-रँग के छाया रव निर्झर,
नव सुषमा, प्रीति मधुरिमा से
भर जाता ज्योति द्रवित अन्तर।
मैं उतर, देखता चकित नयन
रवि आभा मे डूबी धरती,
हरियाली के चल अचल मे
किरणें स्वप्नो के रँग भरती।
भू की अतप्त अतर ज्वाला
फूलो मे विहँस रही सुन्दर,
आकाक्षा का आकुल क्रन्दन
मधुकर मे गूज रहा मनहर।
वह मिट्टी की शय्या मे जग
भरती प्रकाश मे अँगडाई,
मुकुलित अगो से फूट रही
उन्मत्त स्वग की तरुणाई।
वह देवो के उपभोग हेतु
मिथ खोल रही निज वक्ष स्थल,
उसके प्राणो का हरित तिमिर
जीवन मे निखर रहा उज्ज्वल।
वह मानवीय वन उभर रही
पा स्पश निजरा का चेतन
वह बनी शिला से मातृ मूर्त्ति
उर म करुणा का सवेदन।
आकाश झुक रहा धरती पर
बरसा प्रकाश के उवर कण,
धरती उसके उर मे बुनती
छाया का सतरँग सम्मोहन।
हो रहा स्वग स धरणी का
जड से चेतन का रहस मिलन
भू स्वग एक हो रहे शनै
सुरगण नर तन करते धारण।

शोभा क्षण

फूलो से लद गये दिशा क्षण
भरता भ्रम्बर गुजन
पुलको मे हँस उठा सहज-मन
निजर करते गायन।
अवचेतन मे लीन पुरातन,
स्वप्न वृष्टि अब करता नूतन,

तन्मय हुआ अह युग - युग का
वाहों में बँध चेतन।
यह क्या भावी का संवेदन,
या देवों का मौन निमन्त्रण?
देह प्राण के पुलिन डुबाकर
बहता अन्तर यौवन।
धरा शिखर का रे यह मधुवन,
भू मन अहरह करता क्रन्दन—
मृण्मय पलकों पर फिर उतरे
यह शाश्वत शोभा क्षण।
आओ हे यह निभृत प्रीति मग,
धरो ध्वनित पग चिह्नों पर पग,
अश्रुत पद चापों से गुंजित
आज धरणि का प्रांगण।
रजत घण्टियाँ बजतीं छन - छन,
स्वर्णिम पायल झंकृत झन - झन,
स्वप्न मांस के इन चरणों पर
करो प्राण मन अर्पण।
पद गति से शोभा पड़ती झर,
पग छबि उठती भावों से भर,
सृजन नृत्य रत रे कवि अन्तर,
सुन नूपुर ध्वनि गोपन।

युग दान

जीवन-बाँहों में बाँध सकूँ सौन्दर्य तुम्हारा नित नूतन,
जन - मन में मैं भर सकूँ अमर संगीत तुम्हारा सुर मादन।
आनन्द तुम्हारा बरस सके भव व्यथा क्लान्त उर के भीतर,
जग जीवन का वन सके अंग देवत्व तुम्हारा लोकोत्तर।
करुणा धारा से मानव का भू निर्मम अंतर हो उर्वर,
संयुक्त कर्म जग जीवन के तुमको अर्पित हो उठ ऊपर।
अब मनुष्यत्व से मनोमुक्त देवत्व रहा रे शनैः निखर,
भू मन की गोपन स्पृहा स्वर्ग फिर विचरण करने को भू पर।
यह अंधकार का घोर प्रहर हो रहा हृदय चेतना द्रवित,
फिर मानवीय बन जाग रहीं जड़ भूत शक्तियाँ अभिशापित।
तरुओं के सिर पर पुष्प मुकुट ज्यों गंध पवन उर में मादन,
जीवन से मन से फूट रहे तुम नव श्री शोभा में चेतन।

जीवन कोंपल

क्या एक रात ही में सहसा ये हरित शुभ्र कोंपल फूटे?
क्या एक प्रात में स्वप्न निद्र जीवन तरु के बन्धन टूटे?

पत्रों की ममर में भंकृत अब सुर वीणाओं के प्रिय स्वर,
शोभा की अरुण शिराओं से प्रज्वलित धरा दिक् प्रान्तर !
यह विश्व क्रान्ति ! मानव उर में सौंदर्य ज्वार उठता नूतन,
मन प्राण देह की इच्छाएँ करतीं शिखरों पर आरोहण !
तुम क्या रटते थे, जाति, धर्म, रौ वर्ग युद्ध, जन आंदोलन ?
क्या जपते थे, आदर्श, नीति, वे तर्क वाद अब किसे स्मरण !
गोपन-सा कुछ हो रहा आज जन मन के भीतर परिवर्तन,
अन्तश्चेतन तारुण्य फूट गढ़ता अब नव जग का जीवन !
यह मानवीय रे सत्य अखिल, आधार चेतना, कला कुशल,
यह सृजन प्राण होगी विकसित जड़ से जीवन मन में अविकल !
यह विस्मृत कड़ी जगत क्रम की जिससे समृद्धि परिणति सम्भव,
फिर प्राणों को ऐश्वर्य ज्वार अब लोक चेतना में अभिनव !

जीवन दान

मैं मुट्ठी भर भर बाँट सकूँ जीवन के स्वर्णिम पावक कण,
वह जीवन जिसमें ज्वाला हो मांसल आकांक्षा हो मादन
वह जीवन जिसमें शोभा हो, शोभा सजीव, चंचल, दीपित,
वह जीवन जिसको मर्म प्रीति सुख-दुख से रखती हो मुखरित !
जिसमें अन्तर का हो प्रकाश, जिसमें समवेत हृदय स्पन्दन,
मैं उस जीवन को वाणी दूँ जो नव आदर्शों का दर्पण !
जीवन रहस्यमय, भर देता जो स्वप्नों से तारापथ मन,
जीवन रसोज्ज्वल, करता जो नित रुधिर शिराओं में गायन !
इसमें न तनिक संशय मुझको यह जन भू जीवन का प्रांगण,
जिसमें प्रकाश की छायाएँ विचरण करती क्षण ध्वनित चरण !
मैं स्वर्गिक शिखरों का वैभव हूँ लुटा रहा जन धरणी पर,
जिसमें जग जीवन के प्ररोह नव मानवता में उठें निखर !
देवों को पहना रहा पुन मैं स्वप्न मांस के मर्त्य वसन,
मानव आनन से उठा रहा अमर के ढँके जो अवगुण्ठन !

स्वप्न वैभव

मैं ही केवल इस धरती पर धर रहा नहीं स्वप्नों के पग,
मैं देख रहा, छायाओं के पद चिह्नों से कम्पित भू मग !
ये मर्त्यों के पद कभी रहे देवों के चरण, नहीं संशय,
नव स्वप्नों के ज्वाला-पग धर जन कभी चलेंगे हो निर्भय !
मन के वाष्पों का सूक्ष्म जगत बन रहा स्थूल जीवन का घन,
उसमें घनत्व आ रहा सजल वह तड़ित गर्भ भरता गर्जन !
लो, अब स्वप्नों का रजत व्योम हो रहा द्रवित, जीवन झर बन,
वह किरणों का रोहित प्रकाश वितरण करता उर में चेतन !
मानव के अंतर्नभ में घिर उड़ते नव आभा पंख जलद,
हो रही मन सगठित आज फिर विश्व चेतना लोक वरद !

सत्य

तुम वस्तु तमस से ढँक दोगे
आदर्शों का अक्षय प्रकाश?
यान्त्रिक पशु बल से रोकोगे
मानव का देवोत्तर विकास!
तुम क्या घनत्व म बाँधोगे
द्रव की गति प्रियता, चचलता,
निमम जडत्व म आँकोगे
जीवन की चेतन कोमलता!
तुम हो तुषार की शिला स्वय,
पल म जल म जाओगे गल,
शीतल प्रकाश ही नहा सत्य
वह बन सकता है ताप प्रबल!
तुम बँध नियमो के कूला म
बहते जाओ, इसम मगल,
तर्कों के रोडो से टकरा
बढ़ते जाओ, क्षण फन उगल!
सीमा के पुलिना से उठकर
जो उडते अम्बर म उदार,
वे सूक्ष्म वाष्प क्या पकडोगे
जो करते शिखरो पर विहार?
उनके अन्तनभ म सुलगी
शत रत्ना की ऐश्वय ज्वाल
लिपटे उनसे स्मित ज्वलित पिण्ड,
रवि शशि करणा के इद्रजाल!
वर मिला चेतना का उनको,
जड सीमाओ से हो बाहर
वे अव देवा के प्रिय सहचर,
भू मन के मानो से ऊपर!
उनके उर स्पदन म बजता
स्थिर मद्र सत्य का गुरु गजन,
उनके भीतर से छन झरते
स्वर्गिक प्रकाश के विद्युत कण!
तुम भाप उह कहते हँसकर,
वे तुमको मिट्टी का ढेला!
वे उड सकते, तुम अड सकते,
जीवन तुम दोनो का मेला!
फिर भी यदि जडता तुमको प्रिय,
उनको चेतनता,—दुख नितान्त,
है सत्य एक—जो जड चेतन,
क्षर अक्षर, परम, अनन्त, सान्त!

युग मन

अब मेघ मुक्त होता युग मन!
अटपट पड़ते कवि छंद चरण,
वहता भावा मे शब्द चयन!

जिन आदर्शों मे उर सीमित,
जिन अभ्यासो से जन पीडित,
जिन स्थितिया से इच्छा कुण्ठित
उनमे वढ, निखर रहा नूतन!

जगते मन मे नव सवेदन
नव रूप कर रहे प्राण वहन,
अज्ञात नव्य का आकर्षण
मज्जित करता जन-मन प्रतिक्षण!

अब स्वप्न सत्य बनते निश्चय,
अब तथ्य स्वप्न-सा होता लय,
जन हृदय-कान्ति का रे यह क्षण
प्रतिविम्व वहिर्जग सपर्पण!

भू होगी उर शोणित रजित
अरुणोदय होने को निश्चित,
रजनी का क्रन्दन डूब रहा
वन युग प्रभात मे जय कीर्तन!

यह रे तमिस्र का शेप छोर,
देखो, वह हँसता स्वर्ण भोर,
अन्तर्नभ नव चेतना द्रवित,
मानव युग धरता मूर्ति चरण!

छाया सरिता

क्या आकुल अतर?
गाती रहती जो प्रतिक्षण!
क्या दारुण सुन्दर?
वनती रहती जो मोहन!
छाया सरिता-सी
बहती रहती हो नि स्वर,
नीरव लहरा मे जगा
अतल के सवेदन!
सोया निचले तल मे
प्रकाश,—जो केवल तम,
भू श्रोणि देश
प्राणा के जीवन का मादन!

प्रिय स्वर्ण मांग मे स्पदित
ऊपर शुभ्र शिखर
जिन पर स्वप्नो के मुकुलो का
अपलक मधुवन ।
सौरभ स उन्मन हो उठता
उर का मधुकर,
आनन्द प्रीति शोभा रज पी
भरता गुजन ।
क्रन्दन मर्मर होता जान
किस नभ म लय,
तुम प्राण, भेजती मौन
जहाँ स आमन्त्रण ।

सवेदन

छाया सीता सी आ चुपके जान, तुम क्या कहता नि स्वर,
सुन पडती परिचित चरण चाप कँप उठता स्वप्न ध्वनित अन्तर ।
खिल पडते उर म ज्योति चिह्न नीरव शोभा लाली स भर,
आनन्द मधुरिमा से गुजित आभा पखडिया-स झर-झर ।
अन्तर पा प्रीति परस अदृश्य खोजता तुम्हे बाहर विस्मित,
युग युग का उर का व्यथा भार गा उठता शाश्वत क्षण पुलकित ।
स्मृतियो के स्वर्गिक सवेदन लहराते मानस म गोपन
मैं सुन-सुनकर मोहित पग ध्वनि बढता जाता निर्दिष्ट चरण ।
तुम सूक्ष्म स्वप्न देही बनकर आती अन्तर पथ स प्रतिक्षण
मैं रहस निमन्त्रण पा तुमसे अभिनव जग म करता विचरण ।
है मात मुझे तुम भू घट स फिर फूट रही करुणा धारा,
तुम मात मूर्ति चिर मगलमयि, शोभा चेतन हो जग सारा ।

वैदेही

स्वप्नो के मासल शिखरो म मैंने निज छिपा लिया आनन,
यह शोभा का प्रिय वक्षस्थल जिसका सगीत हृदय स्पन्दन ।
चेतना स्वय ज्यो स्वर्ण गौर कोमल उर-कलियो म पुजित,
उल्लास भ्रमर सांसो मे वह रखता इनको आभा दोलित ।
इनम अतरतम सुषमा के खिलते नित रत्न प्रभा पल्लव,
नव ऊषा का स्वर्गिक पावक जलता इच्छाओ मे अभिनव ।
यह रुद्ध बद्ध लालसा नही जो नारी प्रतिमा म मूर्तित,
यह देवो के उर म बसती श्रद्धा प्रतीति स अभिषेकित ।

जन इसे कला मन्दिर में नित करते अन्तमन के स्थापित,
शिव सुन्दर सत्य चयन कर चिर प्रिय चरणों पर करते अर्पित !
शत इंगित बनते मुखर नृत्य, पलकें रुक, छवि करती अंकित,
जीवन के सुख-दुख इसे देख स्वर गीतों में होते झंकृत !

प्रीति

मेघों के उड़ते स्तम्भ खड़े
लिपटी जिनसे विद्युत् ज्वाला,
बाहर को अंध खुला विराट्
जीवन कपाट तम का काला !

भीतर वाष्पों के कोश मसृण
नव इन्द्र जलद लटके कम्पित,
जिन पर प्राणों की रंग छटा
करती मन के लोचन विस्मित !

चल जलदों के पट के भीतर
दिखते उड़ते तारक अगणित,
निज ज्वलित द्रवों के पंख खोल
क्षण प्रभ उर भृंगों से गुंजित !

आगे अकूल चेतना तीर्थ
नव शरद चाँदनी-सा प्रहसित,
नीरव रहस्य सुख से सुरभित
स्वप्नों की कलियों का मोहित !

जाज्वल्यमान रवि लोक वहाँ
वह दिव्य रश्मियों में मण्डित,
अंतर तुषार के शिखरों पर
नीहार ज्ञान का चिर पूजित !

आनन्द धाम शोभित भीतर
झरते अनन्त रस के निर्झर,
शोभा के स्वर्णिम फेनों पर
कँपते सुर वीणाओं के स्वर !

उर कम्पों, पुलकों से कल्पित
शशि रेख प्रीति प्रसाद सुघर,
झाँकते झरोखों से बाहर
अनिमेष सत्य शिव औ' सुन्दर !

रहती अंत पुर में शाश्वत
तुम अवचनीय सुषमा में लय,
होते कृतार्थ, छू चरण परम
जीवन के सुख दुख, भय संशय !

शरदागम

आज प्राण चिर चचल !
नवल शरद ऋतु, ओस धुला मुख,
धूप हँसी-सी निश्छल !

गौर वक्ष शोभा-सी उज्ज्वल
दिन की कोमल आभा मासल
स्वप्नो की स्मृतियाँ उकसाती
पुलकित कर अतस्तल !

खिले अधखिले फूलो के अँग,
मम स्पृहा स खुले मुक्त रँग,
प्राणो को निज स्पश ज्वाल से
दीपित करते प्रतिपल !

खोल निसग रहा निज अतर
मधुर सतुलन म खिल सुदर,
फैलाती कामना प्रकृति की
रँग-रँग के चचल दल !

कँपता तरुओ का तम ममर,
कँपता मारुत लालस मथर,
कँपती स्रस्त वस्त्र-सी छाया,
कँपता नव दूर्वादिल !

जी करता शोभातप म मिल
विचरूँ छाया वन म झिलमिल,
जाने किस पथ से निसग म
खो, हो जाऊँ ओझल !

कौन भेजता मौन निमन्त्रण
मुझे निभत दने हृदयासन
स्वप्नो के पट म लपेट उर,
तन-मन करता शीतल !

आज मिलन को उर अति विह्वल
मानस म स्वप्ना का बादल
झर झर पडता किन स्मृतियो मे
सुलगा चिर विरहानल !

तुम आओगी, कहता है मन,
खिलता ही क्यो ऋतु का आँगन ?
निखर मघ से शरद रेख-सी
बरसाओगी मगल !

शरद चेतना

तुम फिर स्वप्नो का पट बुनती
ले जीवन से छाया प्रकाश,
फिर गीत स्वरो का जाल गूथ
उलझाती सुख-दुख अश्रु हास!

अब बिखर गया पावस का घन,
ठण्ढा निदाघ का खर श्रृंगार,
अब हँसती उज्ज्वल धुली धूप
उजियाली मे आया निखार!

ऋतु आर्द्र जलद के वस्त्र फेंक
अलसायी अगो मे कोमल,
फिर गूढ प्रकृति का मौन स्पर्श
अन्तर को छू करता शीतल!

फूलो के रगो की ज्वाला,
तरु वन की छायातप कम्पित,
तुममे भू का कलरव कूजन
सौरभ गुजन ममर गुम्फित!

तुम स्वप्नो का नीरव पावक
सुलगाती प्राणो मे पुलकित,
तुमम रहस्यमय मौन भरा
तुम स्निग्ध शान्ति-सी विरह द्रवित!

ज्यो बादल के अचल से छन
आभा रह जाती क्षण छाया,
तुम मन के गुण्ठन मे जगती
लिपटा इच्छा, ममता, माया!

तुम मुझे डुबा लो अपने म
या मुझमे जाओ स्वय डूब,
तुम फूटो मेरा मोह चीर
ज्यो कढती भू को चीर दूब!

जगता लो, तरुण प्ररोह एक
अब फाड धरित्री का अचल,
कँपता अगो मे हरित रुधिर,—
उडने को पख खोल विह्वल!

तुम खोल देह मन के बन्धन
चेतना बन गयी फिर उज्ज्वल,
उमगा प्राणो का मेघ, लिपट,
निखरी तुम,—अब बादल ओझल!

चन्द्रमुखी

उठा इन्द्र प्रभ घन अवगुण्ठन
चन्द्रमुखी ऋतु, वारिज लोचनि
सरित पुलिन पर करती विचरण।
शीतल शोभा-पावक का तन,
स्वप्न प्रज्वलित तारापथ मन,
स्वर्ग ज्वार चेतना चन्द्रिका,
डूब रे मोहित जड़ चेतन!
सद्य स्नात, दृश शुभ्र पीत अंग
कुन्द मुकुल स्मिति, गुंजित पट रंग,
सौम्य सजल, चिर प्रकृति अंक में
पली मोहती मुग्धा जन-मन।
चन्द्रातप सा मृदु सूर्यातप
तारा-से हिम बिन्दु रहे कँप,
स्वप्न चरण धरती वह भू पर
दिवस निशा छवि करता धारण!
उर में छाया मर्मर कम्पन,
साँसों में भू गन्ध समीरण
अविकच रंग चपल अंगों से
नव श्री शोभा करती वर्पण।
कहता नभ कुछ नीरव निस्तल
कँपता भू का श्यामल अंचल,
लहराता निर्मल सरसी जल,
पुलकित रे तन, शफाली वन
बदल गया कुछ अब उर भीतर
मज्जित ज्योत्स्ना में युग अन्तर
सुलभ हो गया, दुर्लभ-सा कुछ
मेघ मुक्त नभ विरह मुक्त मन।

शरद श्री

सौम्य शरद श्री का यह आँगन,
जीवन आतप लगता कोमल,
हरियाली के अंचल में बँध
धरती का तम जलता शीतल।
निखर उठा प्राणों का यौवन
फूल मास के खिले चपल अंग
नीले पीले लाल पाटली
हँसते आकांक्षाओं के रंग।
मिट्टी की सौंधी सुगन्ध से
मिली सूक्ष्म सुमनों की सौरभ,

रूप स्पर्श रस शब्द गन्ध की
हरित धरा पर झुका नील नभ!
क्या समीर ने लिपट, विटप को
किया पल्लवों में रोमांचित?
अँगड़ाई ले बाँह खोलना
सिखलाया डालों को कम्पित!
क्या किरणों ने चूम, खिलाये
रंग भरे फूलों के आनन?
सृजन प्राण रे स्पर्श प्रेम का
सच है, जीवन करता धारण!
मूल भूत-कामना एक ज्यों
पत्रों में कँप उठती मर्मर,
प्रिय निसर्ग ने अपने जग में
खोल दिया फिर मेरा अन्तर!
एक शान्ति-सी, पावनता-सी
विचर रही धरती पर निःस्वर,
छायातप में, तृण अंचल में,
ज्वाल-वसन कुसुमों के तन पर!
रंग प्राण रे प्रकृति लोक यह
यहाँ नहीं दुख दैन्य अमंगल,
यहाँ खुला श्री शोभा का उर,
यहाँ कामना का मुख उज्ज्वल!

ममता

अब शरद मेघ-सा मेरा मन
हो गया अश्रु भर से निर्मल,
तुम कँपती दामिनि-सी भीतर,
शोभातप में लुक-छिप प्रतिपल!
विद्युत दीपित करती घन को
वह नहीं ज्वाल में उठता जल,
वह उसके अन्तर की आभा
तुम मेरी हृदय शिखा उज्ज्वल!
यह प्रीति द्रवित हलका बादल
मेरे ममत्व की छाया भर,
तुम तड़िल्लता-सी खिल पड़ती
जिसमें जीवन की सत्य अमर!
इस विरल जलद पट से छनकर
तुम बरसाती ऐश्वर्य ज्वार,
छाया प्रकाश के पटल खोल
भावों की गहराई निखार!

तुम विद्युत् प्रभ कर पलक पात
करतो मिथ नीरव सम्भापण
वाष्पो के आवत मानस म
अकित कर भेद रहस गोपन !
यह मौन मन्द गजन भरता
युग-युग की प्रिय स्मृतियाँ जगती,
शोभा की, स्वप्नो की, रति की,—
आशा अभिलाषाएँ कँपती।
चाँदनी चार दिन रहती है,
तुम क्षण भर मे होती ओझल,
तुम मुझे चाँदनी से प्रिय हो
चपले, मैं ममता का बादल !

फूल ज्वाल

फूलो की ज्वालाएँ भरती मेरे अन्तर म उद्दीपन,
जीवन के शोभा-तम के प्रति मेरे मन म चिर आकर्षण।
इस धरती के उर स लिपटे कितने प्रकार के रग चपल,
मेरी इच्छाओ से उपमित किरणा म, प्राणो म ओझल।
मिट्टी के तद्रिल मानस म जगते उज्ज्वल फूला के पल,
मैं शोभा स्रष्टा, ज्ञात मुझे ज्वाला का उसका अन्तस्तल।
ये नि स्वर, सहज मधुरिमा स अन्तरतम भर देते भकृत,
मैं वाणी का सुत, विदित मुझे रमणीय अर्थ व्यजित अकथित।
इनमे न भले ही आये फल जग का मग सतत करें कुसुमित,
सौरभ से भर न सके नभ को, दग अपलक कर दें, उर पुलकित।
मैं स्वप्नो का प्रेमी, मुझको करता न सत्य जग का मोहित,
मैं बढ़ू ज्वार सा डुबा पुलिन, फूलो म बन्दी बहे सरित।
मैं फूला के कुल मे जनमा, फल का हो मूल्य जगत के हित,
उर शोभा का दे अमर दान मैं भर, चरणो पर हूँ अर्पित।

स्मृति

परित्यक्ता वदेही - सी ही
अब हृदय कामना उठी निखर
प्राणो की ममता अश्रु स्नात,
कृश, शरद शुभ्र लगती सुदर !
प्रेयसि की मुख छवि मेघ मुक्त
शशि रेखा - सी उगती मन म,
नीरव नभ म विद्युत् घन-सी
एकाकी स्मृति जगती क्षण म !

ज्योत्स्ना म झझा से कम्पित
हलकी फुहार-सी पडती झर
वह भीगी स्मृति, मानस तट पर
छाया लहरी-सी बिखर बिखर !
सुख-दुख की लपटो मे लिपटी,
भू के अगारो पर पग धर,
वह बढ़ती स्वप्ना के पथ पर
शत अग्नि परीक्षाएँ देकर !
अब प्रेमी मन वह नही रहा
ध्रुव प्रेम रह गया है केवल
प्रेयसि स्मृति भी वह नही रही
भावना रह गयी विरहोज्वल !
बाहर जो कुछ भी हो बदला
मन का पट बदल गया भीतर,
विकसित होती चेतना, उधर
परिणत जग जीवन का सगर !

नमन

नमन तुम्हे करता मन !
हे जग के जीवन के जीवन,
प्रीति-मौन प्रति उर स्पन्दन मे
स्मरण तुम्हे करता मन !
अश्रु सजल अब मेरा आनन
तुहिन तरल वारिज के लोचन,
यह मानस स्थिति, स्मृति से पावन
करता तुम्हे समपण !
तुम अन्तर के पथ से आओ,
चिर श्रद्धा के रथ से आओ,
जीवन अरुणोदय सग लाओ
नव प्रभात, युग नूतन !
बहे रुधिर मे स्वर्गिक पावक,
स्वप्न पख लोचन हो अपलक,
रँग दे श्री शोभा का जावक
जीवन के पग प्रतिक्षण !
आज व्यक्ति के उतरो भीतर,
निखिल विश्व मे विचरो बाहर,
कम वचन मन जन के उठकर
बनें युक्त आराधन !
असफल हो जब श्रान्त मनोबल,
आवेशो से अन्तर विह्वल,

तुम करुणा कर से छू उज्ज्वल
जड़ता कर दो चेतन ।

वन्दना

खोलो, अन्तरमयि, खोलो
अपना स्वर्गिक वातायन,
निज स्वर्णिम आभा से भर दो
मेरा स्वप्नों का मन ।
नींद घनेरी भरी दृगों में
पलकें झँप - झँप जातीं
सुख दुख की स्मृतियाँ मानस में
माँ, - कँप कँप लहरातीं ।
घोर अँधेरी निशा घिरी अब
आओ शुभ्र उषा बन,
खोलो मानसि खोलो अपना
श्रद्धा का वातायन ।
दिव्य चेतना का प्रभात नव
बन उर में तेरा मुख,
मौन मधुरिमा से अन्तर को
भर दे डूबें सुख - दुख ।
नयनों में स्मित नयन भरो सखि,
उठा किरण अवगुण्ठन,
मेरे अपलक उर में खोलो
शोभा का वातायन ।
मेरे मानस जल में फूटें
उषा ज्योति रक्तोज्वल
फूल मास के तेरे सुंदर
चरण कमल बन कोमल ।
भर जावे सूने अन्तर में
नव भावों का गुंजन,
खोलो, आभामयि, खोलो,
निज करुणा का वातायन ।

मानव ईश्वर

नव जीवन शोभा के ईश्वर
स्वर्गिक करुणा के वर,
स्वर्ण शुभ्र चेतना मुकुल तुम
खिलते उर में सुंदर ।
शांत अभय हो जाता अंतर
ध्यान तुम्हारा स्नेह मौन धर,

श्रद्धा पावन हो उठता मन
हृष्ट प्रणत चरणों पर।
सो जाता ममता का ममर
खुलता श्रतरतम का श्रम्बर,
दिव्य दूत - से पख खोल स्मित
स्वप्न उतरत नि स्वर।
श्रवचनीय श्राकाक्षा के स्वर
तन्मय करत मुझे निरतर,
ज्योति शक्ति के नीरव निझर
मानस म पडत झर।
जगती मानव म दवोत्तर
मिट्टी की प्रतिमाएँ नश्वर
युग प्रभात छवि स्नात निखरत
भू जनपद पुर प्रातर।

स्तवन

तुहिन शिखर पर स्वण रश्मि प्रभ
ज्योति मुकुट जाज्वल्य शीश पर,
शात सूर्योज्वल कुवलय कोमल
स्फुरित् किरण मण्डित मुख सुदर।
नयन श्रकूल क्षमा गरिमामय
ज्योति प्रीति के श्रतल सरोवर,
श्रधर प्रवालो पर चिर गुजित
मौन मधुर स्मिति के मुरली स्वर।
सहृदय वक्ष विशाल सिधुवत्
विश्व भार मत श्रस धुरधर,
करुणालम्बित बाहु, वरद कर,
मृत्यु कलुप हर चारु धनुप् शर।
बढत युग - युग चरण, छोड निज
श्रक्षय चिह्न समय के पथ पर,
विश्व हृदय शतदल पर स्थित तुम
हृदयश्वर, जगदीश परात्पर।
सृजन नृत्य उल्लास निरत नित
चिर त्रिभगमय, रहस रतीश्वर,
श्रभय इगितो से जीवन की
शाश्वत शोभा पडती झर झर।
जय पुरुषोत्तम, प्रणत प्राण मन
नयनो मे भर रूप मनोहर,
चिर श्रद्धा विश्वास भक्ति का
मगलमय, निज जन को दो वर।

अभिलाषा

एक कली यह मेरे पास !
तुम चाहो, इसको अपना लो,
कर दो इसका पूर्ण विकास !
तुम इसमें स्वर्गिक रंग भर दो
निज सौरभ में मज्जित कर दो,
उर को अक्षय मधु का वर दो,
अधरों पर धर शाश्वत हास !
तुम्हीं मूल इसके बन जाओ,
मधुकर बन इसके ढिग गाओ,
प्राण वृन्त पर इसे झुलाओ,
स्वर्ग किरण बन, करो विलास !
देखे एक तुम्हारा यह मुख,
अपलक ऊपर को हो अभिमुख,
दुख में भी मानें असीम सुख,
काँटों में बिखरा उल्लास !
मलयानिल दे भले निमंत्रण,
पंख खोल उड़ना चाहे मन,
तोड़े यह न प्रणय का बंधन,
करे हृदय डाली पर वास !
नयन रहें स्वप्नों से रंजित,
पलकें विरह अश्रु हिम से स्मित,
उर असीम शोभा से विस्मित,
छोड़े जब यह अंतिम श्वास !
यह हँसते - हँसते झर जावे,
जग में निज सौरभ भर जावे,
भू रज को उर्वर कर जावे,
नव बीजों से, हो न विनाश !
एक कली जो मेरे पास,
वह अभिलाष !

विनय

मुझे प्रणति दो
प्रीति समर्पित प्राण कर सकूँ
निज पद रति दो !
विनय मुक्त, जन में मिल जाऊँ
श्रद्धानत, ऊपर उठ पाऊँ,
ध्यान मौन, मर्मस्पृह गाऊँ,
अन्तर्गति दो !

मैं मर्त्य वेणु का शून्य बाँस
तुम दिव्य सास,
मैं छिद्र भरा निःस्वर निराश
तुम गीति लास !
मैं शुष्क, सरस कर दो विकास,
मैं रिक्त, पूर्ण कर भर दो
नव आशाऽभिलाष,
स्वर संगति दो !

जब मुँदें कुमुद अन्तर्लोचन,
जब जगे पद्म वन स्वप्न-नयन,
तब गीत मुक्त मधुकर-सा मन
गा-गा जीवन मधु करे चयन,
चिर परिणति दो !
मुझे प्रणति दो !

आह्वान

तुम आओ हे,
मैं धरूँ ध्यान
बन निरभिमान
तुम बसो प्राण में, गाऊँ मैं !
तुम आओ हे !
अरुणोदय-से हृदय शिखर पर
उतरो नव स्वप्नों के जलधर,
बरसाओ चेतना मौन स्वर
जीवन पुलिन डुबाऊँ मैं !
तुम आओ हे !

स्वर्ण द्रवित अब जीवन का तम,
चमक रहा मन का घन थम-थम,
मिटता जाता धरा स्वर्ग भ्रम
यह छवि कहाँ छिपाऊँ मैं !
तुम आओ हे !
रुधिर मंदिर हो कँपता थर-थर
स्मृति किस सुख में जाती मर मर !
अमर स्पर्श पा कहता अन्तर
फिर ज्वाला में न्हाऊँ मैं !
तुम आओ हे !

आभा स्पर्श

तुम जीवन के सपने !
मन को लगते आज
विश्वमय, अपने !

कब खुल गये हृदय के बंधन,
अपलक-से रह गये विलोचन,
भेद भाव सो गये अचेतन,
पलकें, भर अपार शोभा से,
पाती तनिक न झँपने।
मिट-सी गयी क्षितिज की रेखा
भूल गया मन जो देखा,
जगी चेतना की शशि लेखा
नव स्वप्नों को सत्य बनाने
लगे प्राण मन तपने।
सिमट गयी जीवन तम छाया
जाग गया मन, सोयी काया,
उतर प्रकाश तुम्हारा आया,
मोह भार से मुक्त हृदय में
लगा हर्ष नव कँपने।

परिणति

तुम बसे हृदय में।
धरती निज ज्वाला लिपटाती
तन में—
स्वर्ग किरण आभा बरसाती
मन में,—
मति स्वप्नों से रँग-रँग जाती
क्षण में

धरा लगाती आज नम्र, निर्मम मैं
स्वर्ग बहाता पग-पग बंधन,
अमित तुम्हारी मुक्ति समीरण,
मलिन पंक में दया खिलाती
कहता, पंकज नूतन,
क्या विस्मय, मैं।
छूटा अब सुख दुख का क्रन्दन
मिटा झूठ सच का संघर्षण,
भले बुरे का हटा नियंत्रण,
प्राण चेतना के परिणय में।
धरती की वेदना
कामनाओं की छाया
स्वर्ग चेतना
मृत्यु भीत स्वप्नों की माया
दोनों तुममें पूर्ण हुए अब
बन मन काया,

बाहर भीतर ऊपर नीचे
पात्र तुम्हीं अभिनय में।

जीवनप्रभात

पद रेणु कणों से
धरा गयी भर,
स्वर्ण मरन्द रहा झर-झर
जीवन प्रभात नव आया।
डूबा शोभा में हृदय शिखर,
अब ज्योति तरंगित जीवन सर,
नव स्वप्न रुधिर से सिहर सिहर
प्राणों का सागर लहराया।
वह स्वर्ग श्वास सा गंध पवन
सांसों में, पुलकित करता मन,
जड़ धरा हो गयी नव चेतन
फूलों में रज तम मुसकाया।
धुल गया कामना का हो मुख
हिम कण-सा अश्रु-द्रवित अब दुख,
तुम खड़े आज मन के सम्मुख
आंखों में ऐसा मद छाया।
छम छम छम नाच रही आशा,
डिम डिम डिम जगती अभिलाषा,
मन सृजन गीत से नृत्य चपल
खिसकी भू के मन की छाया।

विजय

मैं चिर श्रद्धा लेकर आयी
वह साध बनी प्रिय परिचय में
मैं भक्ति हृदय में भर लायी,
वह प्रीति बनी उर परिणय में।
जिज्ञासा से था आकुल मन
वह मिटी, हुई कब तन्मय मैं,
विश्वास मांगती थी प्रतिक्षण
आधार पा गयी निश्चय मैं।
प्राणों की तृष्णा हुई लीन
स्वप्नों के गोपन संचय में,
संशय भय मोह विषाद हीन
तेरी करुणा में निर्भय मैं।
लज्जा जाने कब बनी मान,
अधिकार मिला कब अनुनय में,

पूजन आराधन बने गान
कैसे, कब ? करती विस्मय मैं!
उर करुणा के हित था कातर
सम्मान पा गयी अक्षय मैं
पापो अभिशापो की थी घर
वरदान बनी मगलमय मैं।
बाधा विरोध अनुकूल बने
अतश्चेतन अरुणोदय म,
पथ शूल विहँस मृदु फूल बने
मैं विजय बनी, तेरी जय म!

अवगाहन

मैं सुदरता म
स्नान कर सकूँ प्रतिक्षण
वह बन न बधन।
जिस स्वर्ग विभा का
करता मन आवाहन,
उस रूप शिखा म
जलें न प्राण शलभ बन
तुम मुझे घेरकर
बरसो, श्री शोभा घन,
मैं उर शोभा म
स्नान कर सकू प्रतिक्षण।
तुम प्रीति दान कर सको
बनू मैं निर्भय
तुम हृदय दे सको
पूजू मैं नि सशय
मत दो केवल
मधु स्वप्नो का सम्मोहन
मैं अमर प्रीति म
स्नान कर सकू प्रतिक्षण।
मानव उर आशाओ से
आकुल चचल,
प्राणो की अभिलाषाओ का
क्रीडा स्थल,
वह हृदय नही
जो करे न प्रेमाराधन,
मैं चिर प्रतीति मे
स्नान कर सकूँ प्रतिक्षण।
जो चातक की हो
साध अगाध चिरन्तन,

बरसायेंगे ही करुणा कण
करुणा घन,
भू पर श्रद्धा विश्वास
सुरो के भूषण,
मैं कृतज्ञता मे
स्नान कर सकू प्रतिक्षण !

व्याकुल रहता मेरा
कवि उर का यौवन
तुम समा सको मुझमे
उर की प्रिय उर बन,
वह क्या श्रद्धा विश्वास
न दे जो जीवन ?
मैं नव जीवन मे
स्नान कर सकू प्रतिक्षण !

प्रीति समर्पण

ऊषा आज लजायी !
ओसो के रेशमी जलद से
अधर रेख मुसकायी !

कलियो के वक्षा मे कोमल
डुबा रहा मुख मारुत विह्वल,
प्राणो मे सहसा उन्मादन
सौरभ रहस समायी !

तुहिन अश्रु स्मित अपलक लोचन
करते नीरव प्रणय निवेदन,
मधुकर ने गुंजित पखो मे
स्वर्णिम रज लिपटायी !

कँपता छायातप का भूतल,
कँपता द्रवित हृदय सरिता जल,
सरसी के अन्तर मे कँपती
ज्वाला - सी लहरायी !

यह स्वप्नो की वेला मोहन
देती गोपन मौन निमन्त्रण,
निभृत विरह की - सी पवित्रता
नव विभात मे छायी !

यह कामना रहित रहस्य-क्षण,
केवल निश्छल आत्म समर्पण,
तुम्हें हृदय मन्दिर मे पाकर
प्रीति [illegible] !

प्रतीक्षा

चुम्बन दो, मधु चुम्बन।
अपलक नव मुकुला का मधुवन।
वहता रहस परस मलयानिल
प्राणो को कर लालसा शिथिल
शुभ्र अरुण कलियो मे खिल खिल
रँग उठता पुलकित तन।
अग-अग मे हृदय उछलता
रोम रोम म प्रणय सिसकता
तुमम तन्मय होने को उर
करता क्रन्दन गायन।
स्वप्न पख उडते सुख के क्षण
प्राणा म भर विधुर गुजरण,
मौन हृदय पिक करता कूजन
सासो मे वहता मन।
अमर प्रतीक्षा से ही सुदर
नात मुझे यह मानव अतर,
विरह प्रीति वन, व्यथा गीति स्वर
करते तुमको धारण!

अमर्त्य

समझा, क्या हँस-हँस गय विखर।
जव सौरभ के रँग के दल भर
कर गये रिक्त मधुमय अन्तर
क्यो फूल धूल मे गये विखर।
वह कैसी थी स्वर्णिम आशा,
वह क्सी स्वर्गिक अभिलाषा,
कह पाती नही जिसे भाषा,
जो तुमम मूर्तित हुई निखर।
दुलराती थी तन मलय पवन
आशी देती थी स्वग किरण
धोते थे सस्मित मुख हिमकण,
मधु अधर चूमते थे मधुकर।
अव म्लान मृदुल अँग, मुद नयन,
छूटा शोभा का वत शयन,
भरत स्नेही न मधुप गुजन,
लौटा लावण्य निखिल भू पर।
नभ वसा ही नीला निमल
धरती भी वसी ही श्यामल

प्रिय, केवल तुम्ही हुए ओझल,
अह, हुआ न विश्व व्यथित पल-भर !
सूनी लगती यदि मूक नाल
हँसती वैसी ही मुखर डाल,
दिखते वैसे ही दिशा काल,
भ्रम होता, तुम थे सत्य, अमर ?
तुम आये गये, जगत का छल,
तुम हो, तुम होगे, सत्य अटल,
रीता हो भरे धरा अचल
तुम परे अचिर चिर से,—सुदर !

मुक्ति क्षण

हरसिंगार की वेला हँसती
तुम पर कर शृंगार निछावर !

कँप - कँप उठता फूलों का तन,
उड - उड बहता सौरभ का मन,
शोभा से भर, अपलक लोचन
पथ में बिछ जाने को तत्पर !

एक साथ लद पुनकों से वन,
भर जाता सुख स्वप्नों से घन,
करता तुमसे प्रणय निवेदन,
कौन समीर कँपाती अन्तर !

एक रात, ज्योत्स्ना में गोपन
अन्तर शोभा में खिल मोहन,
तारो से कर नीरव भाषण
हँसता वह यौवन कृतार्थ कर !

आता प्रात मधुर मुक्ति क्षण,
जग को कर उर सौरभ वितरण,
हँस हँस वन श्री आत्म समर्पण
करती प्रिय चरणों पर झर झर !

वन-श्री

मर्मर करते तरुदल मर्मर,
कल कल झरते निर्मल निर्झर !
कुहू - कुहू उठती कोयल ध्वनि,
गुंजन रह रह भरते मधुकर !
निभृत प्रकृति का यह छाया वन,
फूलों की शय्या रच मोहन
जीवन सोया जहा चिरन्तन,
स्वप्न गीत गाते सचराचर !

सोयी ज्योति यहाँ तम मे घन,
सोया मन पशु मे उन्मातन,
सोयी शीतल हरियाली वन
प्राण कामना रज मे मन्थर।
लो, अब खुला क्षितिज वातायन,
आयी वन मे स्वण किरण छन,
जग नीड मे मुखर विहग गण,
बरस रहे नभ से मगल स्वर।

वसन्त

फिर वसन्त की आत्मा आयी,
मिटे प्रतीक्षा के दुवह क्षण,
अभिवादन करता भू का मन।
फूलो मे मदु अंग लपटकर,
किरणो के सौ रग समटकर,
गुजन कूजन से जग को भर,
फिर वसन्त की आत्मा आयी
हरित शुभ्र स्वर मे भर ममर,
अरुण पीत लौ मे कँप - कँपकर।
दीप्त दिशाओ के वातायन,
प्रीति साँस - सा मलय समीरण,
चचल नील नवल भू यौवन,
फिर वसन्त की आत्मा आयी
आम्र मौर मे गूथ स्वण कण,
किंशुक को कर ज्वाल-वसन तन।
सिहरी मासल वन-श्री थरथर,
अगो पर कापा छायाम्बर,
सहसा पुष्प शिखर उठे उभर,
फिर वसन्त की आत्मा आयी,
पल्लव क्षितिज बना परिरम्भण,
शोभा करती आत्म समपण।
देख चुका मन कितने पतझर,
ग्रीष्म शरद, हिम पावस सुदर,
ऋतुओ की ऋतु यह कुसुमाकर,
फिर वसन्त की आत्मा आयी
विरह मिलन के खुले प्रीति व्रण,
स्वप्नो से शोभा प्ररोह मन।
सब युग सब ऋतु थी आयोजन
तुम आओगी वे थी साधन
तुम्हे भूल कटते ही कब क्षण?

फिर वसंत की आत्मा आयी,
देव, हुआ फिर नवल युगागम,
स्वर्ग धरा का सफल समागम!

रंग मंगल

आज रँगो फिर जन-जन का मन!
नवल होलिके, नव शोभा से
रँगो पुनः भारत का यौवन!
नव पल्लव से रँगो दिगंचल,
रँग ज्वाला से फूलों के पल,
रंग भरे लोचन आनन से
रँगो सकल गृह के वातायन!
गूँजे रंग ध्वनित भू गायन,
उमड़े रँग रँग के सौरभ घन,
नव स्वप्नों की रंग वृष्टि से
रँग जाये धरणी का जीवन!
रँगो प्रीति से घृणा द्वेष रण,
नव प्रतीति से कटुता के क्षण,
जीवन सुंदरता के रँग से
श्री पंकिल हो भू का प्रांगण!

रजत शिखर

[प्रथम प्रकाशन-वर्ष १९५२]

प्रियवर
दिनकर को

विज्ञप्ति

रजत शिखर म मेरे छ काव्य रूपक सगृहीत हैं, जो आकाशवाणी से सक्षिप्त रूप म प्रसारित हो चुके हैं। इन रूपकों म चौबीस मात्रा का अतुकान्त रोला छन्द प्रयुक्त हुआ है, जिसम नाटकीय प्रवाह तथा वैचित्र्य लाने के लिए यति का क्रम गति के अनुरूप ही बदल दिया गया है एव तेरह ग्यारह के स्थान पर दो बारह अथवा तीन आठ मात्रा के टुकडो पर रखना अधिक आलापोचित सिद्ध हुआ है। पद के अन्त म दो गुरु मात्राओ के स्थान पर लघु गुरु या दो लघु मात्राओं का प्रयोग कथोपकथन की धारावाहिकता के लिए अधिक उपयोगी प्रमाणित हुआ है। पद्य नाट्य म लय की गति को अक्षुण्ण रखने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि पढते समय प्रत्येक चरण के अन्त म यथेष्ट विराम दिया जाय। इति—

१५ जुलाई ५१

सुमित्रानदन पत

रजत शिखर

'रजत शिखर' मनुष्य की अन्तश्चेतन का शुभ्र प्रतीक । इस
का य रूपक म जीवन के ऊर्ध्व तथा समतल सचरणो का द्व
प्रदर्शित किया गया है। मानव मन के विकास की वतमान स्थिति
मे ऊर्ध्व के अवरोहण तथा समतल के आरोहण पर बल देकर
दोनो मे सम वय स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है।

स्त्री पुरुष स्वर
युवक साधक
युवती
मनोविश्लेषक
राजनीतिज्ञ
विस्थापित

(प्राणोन्मादन वाद्य सगीत)

पुरुष स्वर

वन ममर की हरी - भरी घाटी यह सुदर,
कल-कल वहती जहाँ मुखर प्राणो की सरिता
आवेशो के फेनिल मानस पुलिन डुबाकर!
यहा प्रसारा म हँसता जीवन स्वर्णातप
शोभा के ताने - बाने मे सतरँग गुम्फित,
मगजल - सी शत छाया-इच्छाएँ लहराती
निस्वर नूपुर बजा वीथियो म ममता की!

यहा बनले फूलो की मासल सुगध पी
मारुत उन्मद लोटा करता हरीतिमा के
घने उभारो मे, गर्तों मे, इद्रिय मादन!
मुग्ध स्वण प्रभ भृग गूजत वीरुध जग की
कुसुम योनियाँ चूम गध रज, गभ दान दे!
यहा तितलिया रग अग भगिमा दिखाती
वन - अप्सरियो-सी फिरती शोभा इगित कर,
मौन ज्योतिरिंगण निशीथ के अधकार मे
चमक झमक उठत प्रकाश के सकेतो-से!

स्त्री स्वर

नाम - हीन आशाऽकाक्षाएँ यहाँ अतद्रित
इद्रजाल बुनती अपलक स्वप्नो के मोहक
धमिट लालसा तृष्णाश्रा की चल गँगुलियाँ
रँगा करती गरल मदिर क्षण [illegible]!
यहा प्रीति ज्वाला सुदरता हाला पीकर
लिपटी रहती सघन मोह[illegible] [illegible] मे
और सुनहले रहस [illegible] जीवन के
मन के मुग्ध चरण [illegible] शान्ति मे!

(आत्मोन्नयनसूचक वाद्य सगीत)

पुरुष स्वर

दूर वहाँ, उस पार, ममरित अन्तरिक्ष के
ऊपर, नभ का नील चीरत, शुभ्र रजत के
शिखर दिखायी पडत जो स्थिर ज्योति ज्वार-से
तडित चकित जलदा के पुलत अ तराल स,—
मौन, अटल, उत्तग, आत्म गरिमा म जाग्रत,
शाश्वत,अमर,असीम,—परम आन द लोक-स,—
स्वग क्षितिज को उठे विश्वास स्तम्भ से,—
जहा चेतना का प्रकाश हँसता दिग विस्तृत,
स्वच्छ हिमानी सा शनि की किरणो स प्रहसित,
उज्ज्वल,स्निग्ध,प्रशा त,—जिस जगती का कल्मप
स्पश नही कर पाता तम तष्णा के कर से—

स्त्री स्वर

वहा पहुँचन को चिर व्यग्र, महत्त्वाकाक्षी,
एक युवक जो रहता छाया की घाटी म,
जग जीवन के सघपण से श्रा त क्लान्त हो,
सोच रहा मैं कसे प्राप्त करूँ महिमोज्ज्वल
मानस की उस निमत रुपहली ऊँचाइ को
जो निष्कम्प शिखा सी उठकर, महानील को,
आलोकित करती अपने अन्त प्रकाश से।
जहा विचरते सुरगण गोपन सुख स प्रेरित
स्वप्नो की पगध्वनि से कम्पित कर दिगन्त को,
जहाँ प्रेरणाओ के स्वर्णिम मेघ बरसते
मम स्वरो की रजत फुहारो म अजस्र झर।

(वाद्य सगीत आकाश गीत)

शुभ्र कान्ति रही बरस
शुभ्र शान्ति रही हरस,
शाश्वत शोभा असीम
दिशि पल से रही विहँस।
गाते ग धव अमर
झरते स्मित स्वर्णिम स्वर
त मय तन मनस प्राण
अकथित आन द परस
चेतना रही निहार
अपलक दग आर-पार,
जयति सत्य ज्योति शिखर,
अन्त स्मित रहे विलस।
अमत कलश च द्र भाल,
विजित अचित व्याल माल,

स्फुरित दीप चेतनोर्मि,
जयति, शक्ति पुरुष स्ववश!

(तानपूरे के स्वर)

युवक

बरस रहा आत्मस्थ स्वरों का निःस्वर निर्झर
अधिमानस के नभ से, सुधा स्रवित कर अन्तर,—
किंतु हाय, मैं सौरभ मृग-सा गन्ध अन्ध हो
भटक रहा प्राणों की इस मोहित घाटी में
जिसकी छलना के दिगन्त मायावी प्रसार में
खो खो जाती मन की गति, चल इन्द्रिय सुख के
पंखों में छटपटा, श्रान्त श्लथ हो अतृप्ति से!

हँस हँस यौवन की सतरँग आशाऽकांक्षाएँ
इन्द्रधनुष दीपित वाष्पों की भाव भूमि में
विवश मोह लेती मानस को, निज रोमांचित
रंग पाश में बाँध, लिपट कंटकित लता सी!
चारों ओर बिछे हैं मोहक जाल अगोचर
आवेशों की रत्नच्छायाओं के गुम्फित,
कोमल मुखर स्वरों से मर्माहत करती उर,
फूल मौन छवि से मोहित कर लेते अंतर,
रूप हीन सौरभ अदृश्य मृदु रजत सूत्र से
खींच चेतना को कर देती व्याप्त बहिर्मुख!—

हास अश्रु की घाटी यह हँसमुख फूलों की
पलकों से झरते रहते मोती के आँसू
धरती का चातक प्रेमी आकाश कुसुम का,
अन्ध चकोर अँगारे चुग निज तृषा बुझाता,
गन्ध मधुप गाता काँटों में फूल के लिए!!

(मनोमोहक वाद्य संगीत)

इच्छाओं की मर्म गुंजरित इस द्रोणी में
जब प्रवृत्ति पथ, रत्नखचित आकाश सेतु-सा,
अपनी शत रंगों की छायाएँ बखेरकर
अपलक कर देता लोचन मुग्धा चपलाएँ
स्मित कटाक्ष से पुलकित कर देतीं तन, चंचल
ज्वालाओं के स्पर्शों से प्राणों को उकसा
शरद चाँदनी दुग्ध फेन-सा कम्पित उर ले
स्वप्नों की गुंजित चापों से निशा कक्ष को
मुखरित कर देती सहसा जब नव वसन्त श्री
फलों के मृदु अवयव शोभा में लपेटकर
अँगड़ाई भरती, वन सौरभ की साँसों से
समुच्छ्वसित कर हृदय और उन्मद स्वप्नों को
मोहकता से भरी नवल यौवन की अगणित

आशाऽकाक्षाएँ हर लेती आत्मबोध को,—
तव, जाने, मानस म नीरव ज्योति चरण धर,
स्नेह मधुरिमामयी कौन, नव उषा किरण - सी,
करती सहज प्रवेश, हृदय म जगा अभीप्सा,—
मुग्ध, आत्म विस्मृत कर अ तर को क्षण-भर म ।
खुलता हो अ तरतम का चिर रुद्ध द्वार ज्यो
खुलता उर का रहस व्यथामय मम प्रीति व्रण
विद्रुम विगलित दिव्य मौन लालिमा लोक-सा,
करुणा शीतल करता जो लालसा दाह को ।

(करुण वाद्य सगीत)

कसे मैं जीवन के रजित कदम स उठ,
भाव तृषित मग मरीचिका से मोह मुक्त हो,
आरोहण कर रजत चेतना सोपानो पर
पहुँचू अ तमन की उस प्रज्ज्वलित भूमि तक,
जिसके शा त शिखर मोहित करते भू का मन,
चिर हिल्लोलित मानस के हर्षातिरेक स ।

(द्विविधासूचक वाद्य सगीत)

अह, फिर स्वण रजत वाष्पो के सतरगी पट
आच्छादित कर लेते अ त शुभ्र शिखर को—
चपलाओ के विभ्रम से कर चकित मनोदग ।
फिर फिर प्राणा की अभिलाषा कनक भुजग सी
लिपट बाध देती उत्सुक बढते चरणा को ।
हँसमुख गत निगल जाते उच्चाकाक्षा को,
अतल मग्न कर उर प्रान्तर को अधकार म ।
धीरे - धीरे झीगुर - सी फिर रेग कामना
जड विषाद को कँपा, जगाती सुख की तष्णा,—
इस प्रकार नित चलता रहता जीवन अभिनय
और बदलत रहते चल पट छायातप के ।

(कोयल की कूक)

लो, जीवन की नव मजरित प्रथम वसन्त - सी
प्राण सखी आ रही इधर ही राह भूलकर ।
या गत स्मृतियो से प्रेरित हो ? कोयल उसका
अभिन दन करता है उत्सुक मम कूक भर ।
कुहू, कुहू —लहरा ई उठत स्वरावेश म
मेरे प्राणो की उत्कण्ठा वरस रही है ।

मेघो के अम्बर म शशि की रजत तरी ज्यो
तिरती स्वप्नो से रँग रँगकर शिखर फेन के,
मेरे प्राणो म उतराती प्रयसि की स्मति
निज किशोर लीला का चचल मुग्ध हास्य भर ।
विरल जलद स स्वण बिम्ब-सा उसका स्पदित

गौर वक्ष है सतत झलक उठता स्मृति पट मे ।
आज उतर आयी वह ज्यो साभार धरा पर
नव मधु की इच्छाओ के पखो मे उडकर ।

(दूर से प्रवाहित गीत के स्वर)

नव वसन्त क्या लाया ?
प्राणो की घाटी मे फिर
फूलो का पावक छाया ।
सुन कोयल का दाहक कूजन
मधुपो का उन्मादक गुजन,
स्वप्नो ने अन्तर मर्मर भर
कैसा गीत जगाया ।
रँग रँग की इच्छाएँ हँस - हँस
मन को पागल करती बरबस,
पग - पग पर रुकती मैं उन्मन
किसने मुझे लुभाया ।
घिरते आज क्षितिज मे क्या घन
सौरभ के, भावो के मादन,
चल वसन्त के नभ मे मन्थर
सावन क्यो घिर आया ?
अधरो मे नव कलियो की स्मित,
पलको मे स्मृति की भर अविदित,
मन समीर के पखो मे,
उर मे समुद्र लहराया ?

(युवती का प्रवेश)

युवती

नव वसन्त का अभिवादन देने आयी हूँ ।

युवक

प्रणय मुखर कोयल को अपना दूत बनाकर
स्वय वसन्त श्री आयी है नव शोभा मे
मेरी भग्न कुटी के चिर विस्मृत प्रागण मे ।
स्वागत करता हूँ प्रिय ऋतुओ की रानी का ।

युवती

पिक की वाक्पटुता से उपकृत है वसन्त श्री ।

युवक

तुम्हे ज्ञात है, मेरे जीवन के निकुज मे
तुम्ही प्रथम मधुऋतु आयी थी, जब प्राणो के
पल्लव, मर्मर भर, स्वप्नो से सिहर उठे थे !
मदिरारुण लपटो मे उर की आकाक्षाएँ
फूट पडी थी, सहसा तुमको घेर चतुर्दिक,

मौन मुकुल को घेरे रहते ज्यों नव किसलय।
फूलों की ज्वालाभा सी - अंतर अंतर में
सुलग लालसाएँ अवचेतन की चिर संचित
विहँस उठी थी अवशा के नवल दलों में।

युवती

बीता हुआ सदैव रहस स्मृति से रंजित हो
मोहक बन जाता है! तब वास्तव का दर्शन
विस्मृत क्षण हो जाता स्मृति के पट में केवल
इच्छा का आनन्द स्पर्श संचित रह जाता।

युवक

भूल गयी तुम उस नव यौवन के वसन्त को?
प्राणों के पावक के उन्मादन के नव को?
तब जाने किस निभृत गहन के अंतराल से
अंध समीरण उठ, सौरभ के पंखों से छू,
मानस को कर जाता था सौंदर्य उच्छ्वसित,
भावों के श्लथ सागर को आनन्द तरंगित!
रोमांचित हो उठता था तन, कण्टक वन-सा,
जाने किसके मधुर स्पर्श से।

युवती

नहीं जानती।

युवक

जब भी आती थी तुम इस अपलक कुटीर में
वह मधु की मदिरा पी, किसलय लोहित दृग हो
प्रणय कुंज बन जाती थी फल कलि गुंजरित।
कितने ही गोपन वसन्त, पावस रहस शरद
हमने साथ बिताये हैं एकांत प्राण मन,
सूक्ष्म अदृश्य सूत्र में बँध अज्ञात प्रणय के।
हाथ हाथ में लिये तरुण स्वप्नों के पग धर,
विचरण करते थे हम निर्जन वन वीथी चुन
लहर समीरण से अभिन्न, सौरभ-से कलि-से।

मर्मर शीतल तरुओं की कम्पित छाया में
वैठ ग्रीष्म की अलस दुपहरी में हम प्रतिदिन
प्रणय निवेदन के सुख की मादन विस्मृति में
तन्मय हो जाते थे। वर्षा में श्यामल घन
घिरकर यौवन के दिगन्त में गुरु गर्जन भर,
आकुल कर देते थे अंतर आकांक्षा की
गहरी छाया डाल धरा पर विद्युत् अपने
क्षण इंगित से प्रणय भीरु उर को अनजाने
शंकित कर देती थी—

युवती

भावी की लेखा - सी !

युवक

कितनी बार शरद के रेखा शशि की मैंने
एक ओर मुख की रेखाओं से तुलना कर
उसे सदोष बताया है, तुमको कूंई के
अपलक नयनों का विस्मय अर्पित कर सादर !
और तुम्हारी वेणी के चिर कोमल तम में
गूथ कभी जब मधु के मुकुलों की सब स्मिति
मैं मन ही मन तुम्हें हृदय स्वप्नों के मुकुलित
प्रीति पाश में भर लेता था, तब प्रसन्न मन,
तुम अनिमेष दृगों से मेरी ओर देखकर
मन्द हास्य में निज गोपन स्वीकृति देती थी ! —
कह दो तब क्या वह केवल सान्त्वना मात्र थी,
या कोमल उर का सुमधुर उपचार मात्र था ?

युवती

जो भी समझो वह केवल कैशोर प्रणय था !
अभी नहीं छूटी क्या मुग्ध तुम्हारे मन से
मेहदी की लाली - सी वह कैशोर भावना
जिसने निज यौवन उन्मुख प्रच्छन्न राग से
था अजान रँग दिया कपोलों की व्रीडा को ?
उस अबोधता को प्रमाण मानोगे क्या तुम ?
स्पर्श नहीं कर सकी तुम्हारे भावुक उर को
हाय, वास्तविकता जीवन की नित्य बदलती !

युवक

स्पर्श नहीं कर सका तुम्हारे चचल मन को
हाय, हृदय का सत्य, कभी जो नहीं बदलता !!

युवती

आज प्रेम विषयक इन मध्य युगी, शुक जल्पित
उद्गारों की कीर्ति तुम्हारे मुख से सुनकर
मेरा मन अवसन्न, हृदय उद्विग्न हो उठा !

युवक

तब क्यों तुम मुझको फिर से विस्मृत वसन्त की
याद दिलाने आयी, ऋतु शृंगार सजा नव ?
वह क्या केवल क्रूर व्यग्य, उपहास मात्र था ?
या नारी उर की स्वाभाविक निर्दयता थी ?
जिस निगूढ़ निर्ममता की पाषाण शिला से
मायावी विधि ने निर्मित की नारी प्रतिमा
उसमें मृगजल शोभा, छाया कोमलता भर ?

तुम्हे नही क्या ज्ञात, प्रणय चेतना हृदय को
रिक्त पात्र सा जब रस सूना कर जाती है,
तब उसको ये उद्दीपन के कुसुमित साधन,
सुख के रजित उपादान दुस्सह लगते हैं,
और सुधाधर की स्मिति भी विष बरसाती है ?

युवती

मुझे ज्ञात है, ये दुर्बल उच्छ्वास मात्र हैं,
तुम परिणीत नही इन थोथे विश्वासो से।

युवक

कहते हैं, कामिनी कनक साधक के पथ के
बाधक हैं। पर लक्ष्मी के चल पद क्षणो से
मेरा काचन का मद कब का चूर्ण हो चुका,
जो स्त्री का यौवन टुकडा मे क्रय कर सकता,
व्रीडा की लाली को डुबा सुरा प्याली मे
शोभा को अवगुण्ठन हीन बना सकता औ'
शोषित कर सकता है सरयाग्रा के जग को।।

किंतु शेष थी अभी कामिनी की मृदु ममता,
वह भी विधि ने हँसते-हँसते आज कुचल दी
निर्दय अँगुलियो से तोड निरीह फूल सी,
उसकी रगो की पखडियाँ छिन्न भिन्न कर
धरा धूल मे, जिसमे सब कुछ मिल जाता है।

कनक काम के ही पावक का तप पूत कर,
रूपान्तर करना होगा पर नव मानव को,
उसे वासना धूम, राग की दाहकता से
क्षार मुक्त कर परिणत कर शीतल प्रकाश मे
धूम अग्नि का न्याय प्रकृति का नव सस्कृत कर।
काम - शुद्ध काचन की प्राणोज्ज्वलता से ही
जीवन शोभा की प्रतिमा हो सकती निर्मित।

युवती

मन शास्त्र कुछ और बताता है पर जो हो
मैं उन्मन सी हो, उनसे मिलने आयी थी
सुहृद तुम्हारे हैं अभिन्न जो, मानव मन के
सूक्ष्म तत्व विश्लेषक अपने गहन ज्ञान से
मेरी सुप्तात्मा को जगा जिन्होने सहसा
नव चेतन कर दिया उस नव दृष्टि दान दे।
अवगाहक - सा उतर अचेतन के निस्तल मे
गुह्य सत्य की निधियाँ जो लाये हैं ऊपर,
आर पार अनुशीलन कर मानस विधान का।

युवक

समझ गया मैं। दूर हो गया मेरा संशय।
नया केन्द्र मिल गया तुम्हारी मधुर वृत्ति को,
नया दृष्ट आधार हृदय की प्रणय क्षुधा को।
सदा रही आवेग शील, चिर अभिनव प्रिय तुम,
छिपा रही हो मुझसे अब उर की दुर्बलता
मनोनान का उस पर अचल डाल रुपहला।
लो, सुखव्रत आ रहा इधर ही, तुम्हें खोजता।

(मनोविश्लेषक सुखव्रत का प्रवेश)

सुखव्रत

नमस्कार। ओ, तुम भी यहाँ उपस्थित हो तब।

युवक

इन्हें खींच लाया पहिले ही मन का आग्रह।

युवती

सुनती थी मैं, दीप तले रहता अँधियाला
वह सच निकला तुमने अपने बाल्य सखा को
अंधकार ही में रक्खा, अपने प्रकाश से
उनको वंचित कर,—क्या यह आश्चर्य नहीं है?

सुखव्रत

तुमने नहीं सुना, साधक कवि, प्रेमी, पागल
वायवीय तत्वों के बने हुए होते हैं
विधि ने उनका हृदय सूक्ष्म कल्पना द्रव्य से
स्वप्न ग्रथित है किया नित्य वे स्वर्ग धरा के
मध्य भावना पंख मारते रहते निष्फल।
मेरे बाल्य सखा भी साधक हैं सम्भव है,
प्रेमी भी इनकी उत्तेजन - शील शिराएँ
सदा ज्वार भाटाओं पर उतराती रहती।
जीवन और जगत के प्रति ये अनासक्त हैं,
और, अपरिचित भी शायद।—

युवती

क्या विडम्बना है।
मैं इन पर बचपन से ही ममता रखती हूँ,
पर ये मुझको नहीं समझते।

सुखव्रत

प्रणय दान तुम इन्हें नहीं दे सकी, मुझे ज्ञात है,
हृदय समर्पण करना तुमको इष्ट नहीं था,—
इसमें इनका दोष नहीं है अवचेतन की

प्रबल शक्ति से य सन्तत अनभिज्ञ रहे हैं।
उच्च ध्येय से पीड़ित है इनकी सुप्तात्मा,
बोधात्मा पर पित्र्य प्रभाव रहा छुटपन से,
अहमात्मा नित हीन भाव स रही प्रतारित
दमित भावना माग खोजती क्षुधापूर्ति की,
जिससे सघषण रहता नित चेतन मन म।

युवती

कसी अन्तर्दृष्टि तुम्हे है मानव मन पर!

सुखव्रत

ऐसी स्थिति म आत्म पलायन के स्वप्नो पर
मोहित हो उन्नयन खोजता व्यक्ति निरन्तर -
वास्तवता स टक्कर खा वह काल्पनिक तुष्टि क
ऊध्व गत म गिर पडता, छाया सुख सस्मित!

युवती

स्वत स्पष्ट है। किन्तु प्रेम कस होता है?
क्यो बँध जात युगल हृदय अज्ञात सूत्र म?

सुखव्रत

प्राण चेतना अपने ही मौलिक नियमो स
सचालित करती मानव की रागवत्ति को
सजातीयता प्राणो की आकर्षित करती
युग्मो के हृदयो को गोपन प्रणय पन्थ पर।
प्रेम चयन कर, सग्रह कर होता कृताथ नित,
अन्ध समपण मात्र नही वह आवगो का
अवचेतन परिचालित करता उसकी गतिविधि
स्तम्भित इच्छाएँ विमुक्त कर पिण्ड द्रवित कर,
कुण्ठाओ को मिटा रुद्ध ग्रन्थिया खोल दात
गुह्य वासनाओ की, आत्मदमन से गुम्फित!
निश्चेतन मन का रहस्य चिर दुरवगाह्य है।

युवक

तब क्यो शुक की भाति रटें हम अवचेतन के
उपभेदो को उच्छृखलता से प्रेरित हो,
यदि उन पर अधिकार नही है चेतन मन का?

सुखव्रत

सामाजिक भी एक पक्ष है मन शास्त्र का—
जिन मूल्यो पर रागात्मक सम्बन्ध मनुज के
निर्धारित होगे भविष्य म उनको नूतन
मन शास्त्र देगा, अवचेतन के समुद्र को
कूल मुक्त कर, रूढि रीति के प्रतिबन्धो को

ज्वार मग्न कर, उन्नत प्राणो के प्रवाह को
आवर्तों से गण्ड शून्य—

युवती

इसमे क्या सशय ।

सुखव्रत

पचहत्तर प्रतिशत मनुष्य के उद्वेगा का
कारण, रागात्मक प्रवृत्ति का अध दमन है ।
थोथी, रुग्ण, अवज्ञानिक आचार भित्ति पर
प्राणभावना का है भवन बना समाज का,
रुद्ध द्वार, कुण्ठित गवाक्ष नीचे निस्तल से
उठते शत दुर्गन्ध मलिन उच्छवास विषैले,
जिनसे रहता सिन्धु - क्षुब्ध मानव का अतर ।

हमे मुक्त करनी है पहिले काम चेतना
युग युग की कृमि जटिल ग्रथियो से जो पीडित,
रागद्वेष, कुत्सा, कलक की कृपण दृष्टि से
उसे बचाना है, गत नतिक कोण बदलकर ।

युवती

घोर क्रान्ति मच रही आज मानव के भीतर ।

सुखव्रत

जब प्राणो का स्वास्थ्य बहेगा मुक्त वेग से
नव प्रणालिया से सामूहिक सहजीवन की,
नवल भावनाओ, प्रवृत्तियो का शोणित तब
स्वत प्रवाहित होगा मासल चेतन मन म,—
द्वन्द्व चेतना का रूपान्तर कर देगा जो !—
और युगा के शमन दमन उन्नयन पलायन
उड जायेंगे प्राणा के झझा प्रवग म !
अवचेतन के अतल सिन्धु से उठ जीवन का
रग ज्वार मज्जित कर देगा जन भू के तट !
शत सहस्र फन खोल पुन निद्रित निश्चेतन
मनोराग की वशी के स्वर सकेता पर
नाच उठगा—कर विराग के प्रति विरक्त मन ।
यह भावात्मक देन अनोखी ह इस युग की,
मानस विश्लेपण विज्ञान जिसे देता है ।

युवक

बहुत सुन चुका अध प्राण सन्देश तुम्हारा,
निश्चय ही अब नरक द्वार खुलनेवाला है ।
निश्चेतन के अधकार म युग का भू मन
भटक रहा है नतिक मूल्यो का प्रकाश खो ।

अध पतन म मुक्ति नही है। ऊध्व गमन ही
मुक्ति द्वार है। मोह मुग्ध हो गया ग्राज मन!

रग पख वासना प्रणय का मोहक तृष्णा
मुख पर डाल प्रकट हुई थी मर सम्मुख
मधुर रूप धर स्त्री का, निज छाया सा ग्रस्थिर,—
यौवन क स्वप्ना का लोल गवाक्ष ग्रधस्मित!
मैं जान कब ग्रनुभव शूय, मधुर तष्णा क
हसमुख फदम म फस गया, नियति परिचालित!
नारी की पावन शोभा को देख न पाया,
केवल निज इच्छाम्रो क मोहक वष्टन स
रहा खेलता, छाया को उर स चिपकाकर!

युवती

कसा है दुर्भाग्य—

मुखव्रत

मास की दुबलता का!

युवक

लज्जित हूँ मैं! क्षमा चाहता हूँ दोना स!
स्पर्धा के दशन स पीडित, सवेदन क्षम,
इद्रिय स्पर्शो स मर्माहत, भूल गया था
मैं ग्रपन को, मानव ग्रात्मा के गौरव को!
रोमाचक है हाय इद्रियो की यह घाटी,
करुणाजनक कथा है प्राणा क प्रदेश की!
घोर ग्रधेरी नगरी निस्तल निश्चेतन की
मुक्त कामना त त्र राज्य प्यासे ग्रसुरो का!!
देवासुर सग्राम क्षत्र है मानव का मन,
प्राण भावना समर स्थल है जिसका शाश्वत
एक रोज मानव को भू की ग्रध गुहा म
ऊध्व ज्योति की विजय ध्वजा फहरानी होगी—
तभी मुक्त होगी नि सशय प्राण चेतना।
ऊध्व मा यताग्रा का ही सामूहिक जीवन
समतल गत सचरण—धरा के निश्चेतन से
ग्रविरत सघषण कर नित ऊपर उठकर जो
सामाजिक भू जीवन म सगठित हुग्रा है!—
यही ऊध्व इतिहास सभ्यता का है निश्चय।

मुखव्रत

यही करुण ग्राख्यान रुद्ध ग्राकाक्षा का भी।

युवक

यह सच है सम्प्रति, मानव के चेतन मन पर

आकर्षण है अध प्राण अवचेतन मन का,
युग्म भावना लक्ष्य आज दग आक्षेपो की,
नर नारी का सख्य, मम है निभत कुज का,
गुह्य कक्ष का अध विवर का,—जनरव दूषित।
उसे उदार, विशद दृग वनना है, विकास प्रिय
मानव सीमाओ को स्वीकृत कर भूपथ की।
दूत दूतिकाओ की, पटु परकीयाओ की
पष्ठ भूमि कटु वदल, प्रणय के अभिसारो की।
मानवीय सस्कार श्रेणि म, यौवन हर्षित
प्राणो के रग स्फुरणो को मधुर स्थान दे।

निम्न प्राणचेतना एक दिन ऊध्व गमन कर
रागात्मक भू स्वग रचेगी स्वप्न जाल स्मित,
मन उपेक्षित रही रूक्ष नतिकता स हो,
अपने आरोहण पथ म वह देव योनि वन
बरसायेगी भू पर रत्नस्मित आभाएँ
श्री शोभा, विश्वास प्रीति, आनन्द ज्योति की।
व्यापक ऊध्वस्थल पर उठकर प्राण शक्ति ही
मनुष्यत्व म परिणत होगी सुर आकाक्षित।
नव नारी नर, विभा रश्मि स चिर अन्त स्मित
विचरेंगे जग म, कृताथ कर भू विकास पथ।

सुखव्रत

धन्यवाद। ये पुण्य कल्पनाएँ हैं केवल।

युवती

हाय पुण्य इच्छाएँ परस अश्व भी होती।

युवक

छँटते जाते हैं अब धूमिल वाष्पो के धन,
हटती जाती स्वर्णिम नीलारुण छायाएँ,
खुलते जाते अतरिक्ष के अन्तर्मुख पट,—
और निखरने लगे शुभ्र निर्वाक् शिखर फिर
ऊध्व प्राण, अतश्चेतन सोपान से खडे,—
समाविस्थ हो उठा पुन हो बहिर्व्याप्त मन।

इस मरकत द्रोणी के हँसमुख सम्मोहन से
मोह मुक्त हो रजत अभीप्सा अन्तस्तल की
आतुर है उडने को उमेपित पखा म
मन क्षितिज के पार चेतनातप के नभ म—
जहाँ विचारो का अनुगुजन लय हो जाता।

अतिम तण हट गया कट गया दुगम पवत।
अतल गत नीचे ऊपर दुलघ्य शिखर है।
नीचे इद्रिय रौंद रही निमम चरणो से,

दुरारोह निजनता ऊपर द्वैत शून्य है ।—
सहज एक-बहु की स्थिति का आकाक्षी है मन ।
जल जल उठते शीत स्वच्छता से इच्छा पग,
कँप उठता उर हरित ऊष्मता के अभाव से,
ज्यो - ज्यो आरोहण करता मन मौन शान्ति म
धरती का क्रन्दन ही ऊपर स्वर सगति पा
बन जाता सगीत सुनहली झकारो का ।
मानव ही सुर म परिणत हो जाता उठकर ।
अन्न प्राण मन हँस उठते चेतनाऽलोक म,—
सवशक्तिमय दिव्य तमस है जड धरणी का ।

महाश्चय है । वही सत्य है । ऊपर है जो
शिखर, वही नीचे प्रसार है । एक सचरण
मात्र । ऊर्ध्व हो अथवा समदिक्, दोनो ही पर
अन्योयाश्रित है निश्चय । दोनो के ऊपर
एक अनिवचनीय रहस्य, हृदय रोमाचक ।

(जनरव)

किन्तु, कौन आ रहे इधर व गीत रुदन भर ?

(दूर से प्रवाहित समवेत गीत)

कहाँ मिले स्वगवास,
घोर त्रास घोर त्रास ।
एक स्वप्न गया टूट,
एक नीड गया छूट
आस पास मची लूट
मृत्यु कर रही विलास ।
किधर बह रहा समीर
अतल सिन्धु जल अधीर
कहाँ मिले दूर तीर,
भँवर म पडे प्रयास ।
जा रहा किधर उदास
मनुज आज चिर निराश,
यह विकास या विनाश ?
बदल रहा युग लिबास ।
बीत गयी काल रात
वज्र गिरा अकस्मात,
खडा शिखर पर प्रभात—
हृदय म न पर हुलास ।

(विस्थापितो का प्रवेश)

विस्थापित

विस्थापित हैं हम धरती के विस्थापित हैं !

शरणार्थी, नव भू जीवन के शरणार्थी हैं।
उफ, जिन काल कृत्यो के अँधियाले से हम
किसी तरह बाहर निकले वे अकथनीय हैं।
मार काट, हत्या निदयता कटु नृशंसता,
पैशाचिक उद्दाम कामना का खर ताण्डव।
नारकीय प्रतिहिंसा, घोर घृणा का उत्सव।
नग्न वासना नृत्य, प्रेत ज्यो अवचेतन के
अट्टहास भर, बाहर सकल निकल आये हो
धरती की रज योनि चीरकर, बलात्कार कर।
बलात्कार, व्यभिचार, मृत्यु के मुख का कटु सुख।।

कुछ स्वर

उफ, किसने चीरा कोमल कदली स्तम्भा को,
स्वर्ण कन्दुको को लूटा, फूलो की कम्पित
डाला को धर निदयता से तोड मरोडा।
पागलपन था पागलपन सिर पर सवार तब।
कहा मर गयी थी लज्जा सज्जा की ममता?
कहा उड गये थे आखो स फूला के रँग?
बिखर गयी थी उर की स्वप्न भरी पखडिया,
अ तर की कोमलता थी पापाण बन गयी।।

शील सभ्यता, दया मधुरता, श्री सु दरता
कहाँ मिट गये जीवन के उपचार ये मधुर?
ढेर हो गये ढेर सभी वीभत्स दृश्य बन —
भाय-भाय करता था तब भूतल श्मशान सा,
साय - साय करता था उर निजन मरुथल सा।

कुछ स्वर

आग, आग! भगदौड! लील्ती लपटो का जग।
कान जल रहे, अब भी सुनकर कान जल रहे।
लूट पीट, छीना झपटी हम भूत प्रेत हैं,
सम्प्रदाय के कट्टरपथी भूत प्रेत है।
रूढि रीतिया के धर्मान्ध पिशाच प्रेत हैं।।
कायरता, निष्ठुरता, मानव की बबरता का।
प्रतिनिधि है मानव धरती की बबरता।
भूमिकम्प था वह मुर्दों के सम्प्रदाय का,
समा गया अब धरती की घायल छाती मे।।

युवती

कान जल रहे, अब भी सुनकर कान जल रहे।

सुखव्रत

एक अचेतन की तरग के प्रबल घात से
बालू का-सा दुग, यान मानव जीवन का

तहस-नहस हो गया, तिमिगन पुच्छ पात से।
सब प्रकार के सामूहिक ऊहापोहा का,
राग द्वेष ईर्ष्या स्पर्धा का, कलह क्रोध का,
धर्मों वर्गों के विरोध का, रीति नीति गत
विद्रोहा का—एक मात्र गोपन कारण है
अवचेतन का उद्वलन, कुण्ठित तष्णाएँ,
रुद्ध अतप्त पिपासाएँ वासना गुहा की।
रागात्मक सन्तुलन नही आयगा जब तक
प्राणो के जीवन म, तब तक मानव जग मे
नतिकता के मुख स गुण्ठन नही हटगा।
धर्मों के सिंहासन म भूकम्प रहगा।
सामाजिक सम्बध सजीव न हो पायेंगे,
धरती के अगो का कदम धुल न सकगा।
बौना, नाटा, ठिगना कुबडा मानव जीवन
लँगडायगा भूपर, दबकर पाप भार स।

(राजनीतिज्ञ का प्रवेश)

राजनीतिज्ञ

शान्ति, शान्ति। मैं धरती के निर्वासित जन को
फिर स्थापित करन आया हूँ पुनवास दे।
प्रथम भूख है, काम नही म उदर क्षुधा स
पीडित जीवन ककालो को अर्थशास्त्र का
लोकतन्त्र मय सजीवन देने आया हूँ।

एक स्वर

नेता हैं क्या आप ?

राजनीतिज्ञ

मात्र जन सेवक हूँ मैं।
मरे पास अनेक नयी योजना बनी है,
काय रूप म जिनको परिणत भर करना है।
अन्न वस्त्र, आवास,—कमी है यद्यपि इनकी,
मनु के सुत को किन्तु सदा धीरज धरना है।
वैसे कागज की हैं बनी अनेक योजना।

कुछ स्वर

हमे ज्ञात है हम ज्ञात, तुम बहुमत से नित
चलते अपना नही कभी रखते कोई मत,
परिवेशो क सतत बदलत मूल्यो पर ही
अवलम्बित रहत, अपने हैं मान न मौलिक
नित्य परिस्थितिया की ही चेतना तुम्हारी
अपनी भी चेतना रही, तुमको बाहर का
काय भार है घोर,—स्वत चेतना शून्य तुम

भीतर से बस सूने, कोरे अभिनेता हो!

कुछ स्वर

हम उन्मूलित हैं, उच्छेदित इस जगती के,
निज स्वजनों से दूर, परिजनों से चिर वंचित।
नष्ट हो गया सब विनाश के भृकुटि पात से,
हम खँडहर हैं महाध्वंस के, भीषण पंजर।
खेत बाग, घर आँगन, दारा सुत, स्त्री सम्पद
आँखों के सन्मुख फिरते छायाभासा-से,
दुःस्वप्नों से प्रेत ग्रस्त, हम घोर जागती
निद्रा हैं, जो टूट टूट जाती फिर भय से।
कुचल रही है वज्र हृदय को निर्दयता से
दुःस्मृति की दारुण छायाएँ, कटु प्रहार कर।

कुछ स्वर

क्या होगा अब, क्या होगा? अह, उस मिट्टी का,
उन ईंटों का? कहाँ खो गया दृढ़ घनत्व वह,
ठोस रूप वह?—जो झंझा झड़, लू अंधड़ में
अविचल रहता था अब सहसा पिघल गया क्यों?
रिक्त वाष्प बनकर उड़ गया अचानक कैसे?
रूप रेख आकृति सब ओझल कहाँ हो गयी?
क्यों सूना, खोखला हो गया जग क्षण-भर में।
दुःस्मृति हैं केवल हम भी अपनी दुःस्मृति हैं।।

युवक

एक ओर मानव मन, जीवन सीमाओं को
अतिक्रम कर, उत्सुक है नव चेतना स्वर्ग में
आरोहण के हित अभिनव आनन्द मधुरिमा
ज्योति प्रीति का मंगल धाम बनाने भू को
और दूसरी ओर धरा के अंध गर्भ से
निश्चेतन की क्रूर शक्तियों की कल्लोलें
मृत्यु नृत्य कर जीवन शोभा के प्रांगण में
मग्न कर रहीं जन धरणी को महाध्वंस में,
घृणा द्वेष, हिंसा स्पर्धा के रक्त पंक में।
घोर विरोधी प्रतिस्पर्धी बन अडिग खड़े हैं
पुनः स्वर्ग पाताल, परीक्षा हित मनुष्य की।
मानवता पिस रही युगल निर्मम पाटों में,
स्वर्ग नरक पर जय पानी होगी मनुष्य को।

कुछ स्वर

हम फिर से घर द्वार बसायेंगे जन-भू पर,
हम मानव परिवार बढ़ायेंगे जन भू पर।
मृत्यु ज्वार पर चढ़कर फल समस्त धरा में,
नव जीवन संचार करायेंगे हम भू पर!

एक वृत्त हो रहा समापन जग जीवन का
हम फिर नव ससार वनायेंगे जन भू पर।
कलह क्रोध, ईर्ष्या स्पर्धा का गरल पान कर,
हम जीवन का भार वँटायेंगे जन भू पर।
आधि व्याधि का, रोग शोक का, दैन्य जरा का
हम फिर से उपचार करायेंगे जन-भू पर।
उजड गया जो फिर उसको आवाद कर नया,
हम नव जीवन ज्वार उठायेंगे जन भू पर।

कुछ स्वर

चुप हो जाओ, चुप हो जाओ। छायाएं हैं
चली आ रही, दल वांधे,—जीत मनुजा की
भीड चीरती। छिन भिन्न अवयव हैं उनके,
टूटे हाथ - पैर, हिलत हड्डी के ढाचे,—
माया ममता और अधूरी तष्णाओ का
बोझ पीठ पर लादे वे सब भटक रही हैं
अ धकार म राह टोह, लोहू स लथपथ,
तार तार जीवन छायाएँ,—बुड्ढे, वच्चे
नौजवान, सब दल पर दल हैं चले आ रह।
लँगडाती, गिरती - पडती, कँपती छायाएँ
अगो को छटपटा रही दुख की आँधी म,
टपक रहे है घाव, खौलता रुधिर बह रहा,
जीवन की इच्छाओ से, सपनो से लोहित
मा वहनें हैं, मा वहनें वे, जो पीडा स
चीख रही। दुख की कराह से कान फट रहे,
धरती की गूगी पुकार स हृदय छिद रहा।
बहरा है आकाश। दिशा भी वहरी हैं क्या।
बहरा क्या हो गया विश्व। यह असहनीय है।।

युवती

अह कराह से कान फट रहे, हृदय छिद रहा
भाले की सी तीव्र नोक से मम बिघ रहा।

युवक

हाय निखिल सभ्यता और भू जीवन की ही
गाथा है शोणित स पंकिल, हृदय विदारक।
विस्थापित हैं हम सब भूले विस्थापित हैं,
छूट गया कब कहाँ न जान देश हमारा
हम धरती पर विस्थापित है, निर्वासित हैं।
यहाँ खोजने आये सब उस स्वण धरा को
यहाँ मिटाने आये हम भय रोग जरा को।
लहरो पर लहरें उठती धरती के तम की,
तह पर तह खुलता जाता नभ का प्रकाश है।

पुन उतर आया मैं धरती की खाई मे
अजलि सी जो बनी ज्योति को सचित करने
पुन उतर आया मैं प्राणो की घाटी मं
आकुल है जो अग्नि बीज गर्भित होने को ।

सुखव्रत

स्वागत है, स्वागत है ।

युवती

सुनने दो, सुनने दो ।

युवक

अतस् ही म नही, बाह्य से बाह्य क्षेत्र म
मैं अनुभव कर सकू अनिवचनीय सत्य के
अमत स्पश का जन मन के भावा के स्तर पर,
जीवन की प्रत्येक दिशा, प्रत्येक रूप म ।
मैं अतिक्रम कर सकू बाह्य भीतर के अन्तर,
यही प्राथना है अतर्यामी से मेरी ।

सुखव्रत

भाव प्रवण उर का यह नूतन परिच्छेद है ।

युवक

इस घाटी म, अपनी ही छाया क पीछे
भटक रहे जन छोटे मन के छोटे - मोटे
स्वार्थों मे अनुरक्त परस्पर की स्पर्धा से
उन्नति मे रत एक - दूसरे के परिभव से
जीवन सक्षम इसीलिए कुण्ठित मानव मन
जीवन विमुख, विरक्त, तिक्त हो उठता जग म ।
यहा बरसता नही स्नेह हर्षित नयनो से,
सहज समव्यथा छलक नही उठती हृदयो म,
इस घाटी के रहन - सहन म श्री शोभा का
घोर अभाव खटकता मन को मानव उर म,
यहाँ अभी तक प्रेम नही हो सका प्रतिष्ठित
मानव के प्रति, आदर जीवन गौरव क प्रति ।
रिक्त प्रतिष्ठा भार झुकाये हुए रीढ को ।।
भर-भर उठता हृदय घृणा, थोथे विराग से
श्रान्त क्लात अनचाहा मानव जब घर घर म
सुनता नित्य कलक कथा, कुत्सा, पर निन्दा ।

युवती

यही रूप है आज धरा की वास्तवता का ।

युवक

साधक अब मैं नही,—नम्र आराधक भर हूँ ।
साधक मेरे पूजनीय है, ऊर्ध्वारोही—

समतल गामी जगत प्रणत है जिनके पद पर।
ऊर्ध्व शुभ्र, एकाग्र शिखर पर खडे चिरन्तन
देख रहे हैं जग के स्वामी भू के उवर
इस बहुमुख फले प्रसार मे, सतजल कल्पित।
अपनी ही आनन्द तरगित रहस प्रकृति को
फूलो की चोली पहने, लहरा हरिताचल
चूर्ण नील कुन्तल छहरा दिक सौरभ विश्लथ,
घुटनो के बल बठ, उच्छ्वसित हृदय सिन्धु ले,
अपलक आयत दृग जो देख रही ऊपर को
अमत प्रीति वरदान हेतु जीवन साथी स—
'अपने म थर दिग विस्तत आवत शिखर म
धूम असीम छटा म अथक अनन्त काल तक,
फिर-फिर तन्मय होती निज अन्त प्रकाश म
प्राप्त करूँ चैतन्य अमर मैं ज्योति शक्तिमय।
ऊपर स नीचे अपार शोभा सुन्दरता
हप प्रीति की आभाएँ नित रह बरसती—
अन्न प्राण मन के त्रिदलो को विकसित करती।

युवती

कैसी उच्च विराट कल्पना है धरती की।

युवक

आराधक बन सकू प्रणत मैं दिव्य ज्योति का,
जो इस मण्मय धरा दीप की अमर शिखा है,
जिसकी करुणा किरणो के अन्त स्पर्शों से
इस द्रोणी का तम स्वप्नो म दीपित होता।
हम सब विस्थापित हैं हम सब उत्थापित हैं।
पुन बसायेंगे हम धरती की घाटी को,
नव स्वप्नो के स्रष्टा, नव जीवन शिल्पी बन,
मानवीय शोभा गरिमा, आनन्द मधुरिमा
ज्योति प्रीति का स्वग बना जन मगल भू को।

युवती

मैं भी हाथ बटाऊँगी इस लोक काय के
आयोजन म साथ आपके, श्रद्धानत हो।
मेरा मन सन्देह रहित हो गया आज चिर
आश्वासित हो। ऊपर है प्रकाश का द्योतक,
नीचे निस्तल अन्धकार का। निचले मन के
आवेगा को हम सगठित करना होगा
ऊर्ध्वज्योति म। सयम ही वास्तविक मुक्ति है।
प्राणो का सतुलन मुक्ति है मानव मन की,
ऊर्ध्व चेतना का जो क्रीडा स्थल है उज्ज्वल।

युवक

यही मम है, मैं कृतज्ञ हूँ।

सुखव्रत

यह प्रवचना खूब मनोहर प्रवचना है,
तुम मायामयि, अवचेतन की मोहक तृष्णा

युवती

मनुज स्वय अपने मन को छलता रहता है,
मुक्त हो गया मेरा मन अब उस छलना से।

सुखव्रत

मुक्ति नही है आत्म पलायन, मधुर मृत्यु है।
जाता हूँ मैं, घोर पलायन के प्रमाद से
मानव मन को सद्य मुक्त करने का व्रत ले।

(प्रस्थान)

युवक

आज नयी मानवता के शुचि प्राण सूत्र मे
नर नारी का हृदय बँध रहा लोक कम हित
मिलन शान्ति स्मित, विरह अकातर, प्रीति समर्पित
नयी चेतना से स्पंदित, सद्भाव सगठित।

आओ हम दोनो मिल, प्राणो की घाटी म
विस्थापित मानव का फिर घर-द्वार बसायें,
शुभ्र रजत शिखरो की ऊर्ध्वग दिव्य शाति ले,
अम्बर की व्यापकता, सागर की गभीरता,
गिरियो का चिर धय, अथक सरिता की गति ले
भू जीवन के उत्पादन नव आज जुटायें,
आओ, हम नव मानव का घर द्वार बसायें।

नव वसन्त शोभा से, स्वच्छ शरद सुषमा से
फूलो के सारल्य, युक्त तण-तण के बल से,
हम सुदर स्वप्नो का जीवन नीड बनायें,
आओ, हम नव का मानव घर द्वार बसायें।

भ्रात भावना, विश्व प्रम से भी गभीरतम
प्रीति पाश म बाँधे हम नव मानवता को,
जिसका दढ आधार एकता हो आत्मा की,
जिसकी शाश्वत नीव चेतना की उज्ज्वलता
मनुज प्रेम के लिए मात्र हो मनुज प्रेम वह,
जग को नव सस्कृति का स्वर्णिम द्वार दिखायें,
आओ हम नव मानव का घर द्वार बसायें।

युवती

आज दौड़ता भूमि कम्प जन-मन धरणी म,
कैस हम नव आशा, नव विश्वास बंधायें ?
गरज रहा भीषण अणु दानव विश्व गगन म
मृत्यु अक म कस हम अमरत्व जगायें !
क्षुधा दैन्य का भार ढो रहे जब असंख्य जन
कस भू को जीवन शोभा म लिपटायें ?
आदर्शों स विरत आज स्वार्थों म रत जग,
कैस स्वर्णिम मनुष्यत्व की ज्योति दिखायें ?
कैसे हम नव मानव का घर द्वार बसायें ।

युवक

यह सच है, नव मनुष्यत्व के निर्जन पथ म
बाधा विघ्नों के दुराग्रही शृग अडे हैं
स्थापित स्वार्थों से जकडे—जो पूव पक्ष है,
उत्तर पक्ष क्षितिज से इगित करता ज्योतित
मानव भावी के स्वर्णोदय म दिक् प्रहसित ।
आओ हम अन्त प्रतीति को धम बनायें,
आओ हम निष्काम कम को वम बनायें
हम आत्मा की अमर प्रीति के धरा स्वर्ग म
सब मिलकर जीवन स्वप्नो का नीड सजायें,
आओ, हम नव मानव का घर-द्वार बसायें ।

युवती

आज बहुत ही बडा चाद आया है नभ म,
अन्तर का खुल गया रुपहला हो वातायन,—
मौन क्षितिज स, शुभ्र हास्य बरसाते भू पर
रजत शिखर मानव आत्मा की गरिमा-स उठ ।
आज प्राथना के हित आकुल स्वप्नो का मन ।

(समवेत प्राथनागीत)

धरा शिखर हे,
अ तर के ज्योति ज्वार
अजर अमर हे ।
ध्यान मौन, उच्चप्राण,
तदाकार पूण ज्ञान,
श्रद्धारोहण समान
शुभ्र सुघर हे ।
शान्त क्लेश हो अशेष
शा त निखिल राग द्वेष
भाषा हो भाव वेश
सु दरतर हे ।

विकसित हो जन अन्तर,
कुसुमित जन-भू के घर,
भोगें नव जीवन वर
नारी नर हे!

ऊर्ध्व गगन उठा निखर,
चन्द्र किरण रही उतर
स्वप्न पंख रहे विचर
स्मित नभचर हे!

(२५ जून, १९५१)

फूलों का देश

फूलो का देश सास्कृतिक चेतना का धरातल है। प्रस्तुत काव्य रूपक म इस युग के अध्यात्मवाद भौतिकवाद तथा आदशवाद वस्तुवाद सम्बन्धी सघष को अभिव्यक्ति दकर उनमे व्यापक समन्वय स्थापित करने की चेष्टा की गयी है एव विश्व जीवन म वहिरन्तर सन्तुलन तथा परिपूणता लाने के लिए दोना की ही उपयोगिता दिखायी गयी है।

स्त्री पुरुष स्वर
कलाकार
वनानिक
विद्रोही जन

(नव वसन्त सूचक वाद्य सगीत)

पुरुष स्वर

यह फूलो का देश, ज्योति मानम का रूपक
जहाँ विचरते अन्तद्रष्टा कलाकार, कवि
निभत कल्पना पथ से नित, भावो मेषित हो।
यहा प्रेरणाओ की स्मित अप्सरिया उडकर
बरसाती आभा पखडिया शत रगो की,
स्वप्नो से गुजरित यहा स्वर्णिम भगा की
रजत घण्टिया बज उठती हर्षातिरेक से—
देवो का सगीत अमर वाहित कर भू पर।
यहा कापती छायाएँ शोभा वसनो सी,
गोपन ममर ध्वनि भरती मानस श्रवणो म,—
भावी की अश्रुत चापा सी आकृति धरती।

स्त्री स्वर

यहा प्राण पुलिनो को भावो से स्पदित कर
जीवन की आकाक्षा बहती कल कल ध्वनि मे,
प्रीतिश्वास सी समुच्छवसित रहती मलयानिल
नाम हीन सौरभ से आकुल कर अन्तर को।
यह मोहित अभिसार भूमि है गन्धर्वो की,
जहाँ दूर वास्तविक जगत के कोलाहल से
स्वर्णिम द्वाभा मे रचती है सजन कल्पना
सूक्ष्म विश्व मानव भावी का सतरँग कल्पित।
यहा गूजता रहता है सगीत अहर्निशि,
भाव प्रवण मानस द्रव्या से प्रवहमान हो।

(वाद्य सगीत समवेत गान)

यह फूलो का देश।
यहाँ निरन्तर जीवन शोभा
सजती नव-नव वश।
यहाँ लोटते इन्द्रचाप शत

हँसते अपलक स्वप्न मनोरम
यहाँ झूलता रश्मि दोल में
मानस का उल्लास !
रत स्वर्णिम निर्झर कलकल
भरते प्राणों में स्वर कोमल,
सुन्दरता का दीप स्वर्गिक—
प्रीति हर्ष में हास ।
यहाँ गूँजते मधुरद निस्तल
बरसा करता जीवन मंगल
गुंजन रता की यह स्वप्निल
लीला भूमि प्रशांत ।
(तानपूरे के स्वर)

पुरुष स्वर

यहाँ निर्जन छाया वन में रहता एकाकी
एक स्वप्न द्रष्टा कवि, तरुण अरुण-सा सुन्दर,
लता प्रतान से मण्डित कुसुमित पर्ण कुटी में।
जीवन का संघर्ष मरण क्रन्दन चीत्कारें
उमड़ भाव जग को छूकर मर्म गीत में
परिणत हो जातीं युग जीवन के स्वप्नों की
शोभा से वेष्टित हो, नव सन्तुलन ग्रहण कर।
खोजा करता वह निनाद के महाध्वंस में
नवल सृजन की स्वर संगति उडते झंपा के
भ्रम जाल में घिरती तिरती शशि रेखा सी !
भावाकुलित वक्ष, खड़ा तृण वक्ष द्वार पर,
सोच रहा वह स्वगत, गंध गुंजित मधुकर-सा—
(स्वप्नवाहक वाद्य संगीत)

कवि

यह छाया का देश, कल्पना का क्रीडा स्थल,
वस्तु जगत अपना घनत्व खोकर इस जग में
सूक्ष्म रूप धारण कर लेता, भाव द्रवित हो।
जीवन के संघर्षों की प्रतिध्वनियाँ उठकर
यहाँ बदलती रहती उर संगीत में विकल ।
इस मानस भू पर नि:स्वर चलते नित सुराण
स्वप्नों के धर चरण चिह्न आशाऽकांक्षा स्मित ।
यहाँ बिछाती शत शत रंगों की ज्वालाएँ
अपलक इन्द्रजाल शोभा का, जन - मन मोहन
सुन पडती अप्सरियों की पदचाप रुपहली
कँपती छायाओं के पुलकित दूर्वांचल में—
आँखमिचौनी खेला करती जो जीवन से ।

बडी - बडी चट्टान यहाँ धरती की आदिम
चुप्पी-सी दम साधे नीरव चिन्ता करती
अधरात्रि म झिल्ली तरु कोटर म भन - भन
स्वर भर, सूनापन विदीण करती वन भू का,
घोर गुहय आकाक्षा-सी जग निश्चेतन की ।
यहाँ भयानकता सुदरता प्रीति पाश म
बँधकर करती क्षण उपहास नियति का निमम ।

(गम्भीर प्रसन्न वाद्य सगीत)

कवि

शान्त, सौम्य, सोयी वन श्री अब जाग रही है
नव प्रभात के स्पर्शो स स्वर्णिम चेतन हो,
बरस रहा नीडो स कलरव सृष्टि गान-सा,
सिहर रहे पत्ते थर-थर, सुख स विभोर हो ।
गधपवन म धरती भीनी साँस ले रही,
जाग रही वन छायाएँ अँगडाई भरती ।
तरुण मधुप, पटपद से हटा पँखुरिया के पट
अधस्मित कलियो के मदु मुख चुम्बन करत ?

यह प्रभात भी ससृति का आश्चय है महत,
मौन प्राथना सा, पवित्र आशीर्वाद सा !
विस्मित वर देता जो भू मानस पलको को
दिव्य स्वप्न-सा, अमर स्वग स देश सा उतर ।
धरती का जीवन सहसा निज ज्योति केद्र स
पुन युक्त होकर, हो उठता पूण काम है ।

यह फूला का देश आज फिर धय हो उठा,
वाहित करता जो धरती की ओर निरन्तर
देवा का ऐश्वय अतुल,—शोभा सुदरता,
ज्योति प्रीति आनद अलौकिक स्वग लोक का ।

जाग रही ह सुप्त प्रेरणाएँ मानस मे,
यह अन्तनभ का प्रभात है जन मगलकर ।
तरु पत्रा के अन्तराल से छन नव किरणें
लोट रही भू रज पर ज्योति प्ररोहा सी हँस ।

(हुष वाद्य सगीत)

युग प्रभात यह एक वत्त हो रहा समापन
धरा चेतना मे सस्कृति का आज पुरातन ।
नव युग की प्राणो की आशा अभिलाषाएँ
मम मधुर सगीत लहरियो मे मुखरित हो
गूज रही हैं, छाया वन के नव मुकुलो को
घेर चतुर्दिक । सद्य स्फुट कुसुमो के मुख पर
विहँस रहे हैं स्वर्णिम ओसो के मुक्ता कण,

स्वप्नो की पद चापो से कँप उठता भूतल ।
देख रहा मैं मनश्चक्ष से, ताल म ध्वनित,
अगणित निर्भय चरण क्षितिज की ओर बढ रहे!
(वाद्य सगीत दूर से आता हुआ नर नारियो का समवेत गा

युग प्रभात,
रक्त स्नात, युग प्रभात ।
अ धकार गया हार
मानस का हटा भार
मुक्त पन्थ, मुक्त द्वार
गयी रात ।
सागर म बाध सेतु
अम्बर म उडा केतु
मानव की विजय हेतु
बढो तात बढो भ्रात ।
पवत के गिरें शिखर
मरुथल हो नव उवर
विघ्नो पर रहो निडर
करो घात, करो घात ।
करो घात ।

(नर-नारियो का प्रवेश)

स्त्री स्वर

कौन, कौन तुम अरुण वसन्त, मदन-से सुन्दर
पत्रो के प्रच्छाय नीड म यहा छिपे हो
पक्षी - से एकाकी ? नगरो से, वासो से
दूर, सभ्यता के केन्द्रो से विरत, विमुख हो
युग जीवन सघषण स, जन आकषण स ?

कवि

अरुण वसन्त मदन सा । पक्षी सा एकाकी ?
कलाकार हूँ मैं, पर जीवन सघषण से
विरत नही हूँ । देखो मेरी स्वप्न निमीलित
आखो म भावी का स्वर्णिम बिम्ब पडा है ।

पुरुष स्वर

(साश्चय) भावी का प्रतिबिम्ब ?

कवि

इन्द्रधनुष को छीन, स्वग की वेणी स मैं
उस गूथ जाऊँगा—दवा की विभूति स
मनुष्यत्व का पद्म खिला जीवन कदम म ।

ताराओं के छायातप से रँग-रँगकर मैं
जन-भू का उपचेनन, रज की पखडियो को
अन्त सुरभित कर जाऊँगा, नन्दन वन के
फूलो की शाश्वत स्मिति भर मण्मय अधरा म
मैं नव मानवता की प्रतिमा यहाँ गढ रहा
अ्तमन के सूक्ष्म द्रव्य से।

जनगण

ह ह ह ह ।।

कवि

मैं विराट जीवन का प्रतिनिधि हूँ। मैं वन के
ममर से, युग के जनरव से चिर परिचित हूँ।
भौंरा का मधु गुजन, कोयल का कल कूजन
मेरे ही स्वर है। स्वणातप मेरी स्मिति है।
मेरे उर के स्वप्न तितलियो की फुहार-से
रँग-रँग की शोभा बखेरते जन मानस मे।
ऊषा, ज्योत्स्ना, ओस और तारे मेरा ही
चिर सन्देश वहन करते। पवत निझर-से
मेरे गायन फूट, दग्ध युग मन के मरु मे
प्राणो का कलरव, जीवन हरियाली भरते।
धरा स्वग को स्वप्न सेतु मे बाँध सुनहले
मैं सोपान बना जाऊँगा सुर नर मोहन।

प्रथम स्वर

खूब अहता का ऐश्वय मिला है तुमको।

द्वितीय स्वर

आत्म वचना का उन्माद पिये हो मादक।

प्रथम स्वर

कलाकार हो, तभी हवा मे महल बनाते।
रिक्त स्वग म रहते आत्म पलायन के हो।

कवि

तुम जो अस्त्रा-शस्त्रा स सज्जित सना ले,
विजय ध्वजा ऊँची कर, चलते सख्याओ म,
तुम भी मेरा काय कर रहे। धरा धूलि मे
जो जीवन तृष्णा भुजग, सौ शत फन फला
लोट रही है नीचे, मैं ऊपर स उसकी
शोभा रेखाएँ अकित करता तटस्थ हो,
व्यापक युग पट म सँवारकर उसकी घातक
विष की फुकारो को पीकर मर्माहत हो
हृदय दाह मे जलता प्रतिपल, मैं उस पर हूँ
बरसाता चेतना अमृत निज, तिक्त घृणा को

मधुर प्रीति में, कटु तमिस्र को उर प्रकाश में
आत्म विद्रवित कर ! कंवल स्वर सन्धि भी ही
रिक्त साधना मात्र नहीं होती युग रवि की,
उस साम्य संगति, सार्थकता इसी होती
जीवन विशृंखलता में सौंदर्य खोजकर,
मानस कमल खिला पद्म में !

प्रथम स्वर

रहने दो यह वाक् चपलता ! बहुत हुआ बस !
सीमा लाँघ चुकी है ! यह शोभा की
तुम अपने को जीवन का प्रतिनिधि बतलाते ?
और विधाता बन बैठे हो मनुज नियति के !

द्वितीय स्वर

हम हैं भावी के निर्माता, मानवता के
जीवन शिल्पी, भू के जनगण जो युग-युग की
लौह शृंखला तोड वज्र संगठित हुए हैं !
बंधन मुक्त नयी जन मानवता के रक्षक !
हम वन पर्वत, सागर मरुथल में मानव की
विजय ध्वजा फहरायेंगे ! इस वन प्रान्तर में
जहाँ वनैले पशुओं की हैं गुहा, वहाँ हम
सेना शिविर बनायेंगे निज, जहाँ खगों के
नीड मात्र हैं वहाँ जनों के वास बनेंगे !
हमको सामूहिक जीवन की आवश्यकता
समतल मनुज बनाने को है बाध्य कर रही !
तभी तुम्हारे से आदिम जन, युग जीवन के
नव स्पर्शों से विकसित संस्कृत हो पायेंगे !

कवि

निःसंशय, आदिम हूँ मैं !

कुछ स्वर

(दर्प से) हम चिर नवीन हैं !

स्त्री स्वर

नहीं, नहीं—परिहास कर रहे हो तुम हमसे !
तुम कवि हो, तुम कलाकार हो ! तुम युग-युग के
अभिशापित शोषित जनगण के साथ रहोगे !
युग संकट में उद्बोधन के गान छेड़कर
तुम जनता को साहस दोगे, संबल दोगे !

कवि

अगर साथ रहने देंगे जनगण के नायक ! !

स्त्री स्वर

देखो, तुम देखो इन हड्डी के ढाचा को—

एक स्वर

वज्र बन चुके हैं दधीचियो के ये पंजर !

स्त्री स्वर

देखा, नग्न क्षुधित मनुष्यता की छलना को,
रक्त क्षीण, निष्ठुर विपण्णता को जीवन की ! !
वर्तमान का भीषण उत्पीडन है इनको
निर्ममता स कुचल रहा ! यदि एक बार तुम
आँख खोलकर इन्हे देख लोगे जो सचमुच,
करुणा स विगलित उर हो, मर्माहत हो तुम
सहम उठोगे, हे फूलो के जग के वासी !

एक स्वर

और क्रोध स पागल हो जाओगे शायद
आदर्शों के मूर्ति - पूजको के इन कुत्सित
दुष्कर्मो को देख, घृणा से आँख फेरकर !
मृत प्रतिमाओ के पूजक जीवित जनता के
पूजक कभी नही हो सकते,—जीव मृत जो !

कवि

देख रहा हूँ, मैं लज्जा से गडा जा रहा !
क्व स मेरे मन की आँखो के सम्मुख उठ
नाच रही हैं छायाएँ संक्रांति काल की !
भूखो के कंकाल खडे चीत्कार कर रहे,
अवचेतन के प्रेत भर रहे अट्टहास हैं !
क्रूर, ह्रास युग के लोभी असुरो से पीडित
मानवता कातर बन रोदन छोड, एक हो,
आज क्रुद्ध ललकार रही, हुकार भर रही !

(तुमुल वाद्य सगीत समवेत गान)

भूत के कंकाल हैं हम,
क्रुद्ध रुद्ध कराल है हम !
कण्ठ स लिपटे त्रिशूली के
भयकर व्याल है हम !

मनुजता के प्रेत है हम
आज सब समवेत है हम,
बीज है हम, खेत है हम,
शक्ति अमिट विशाल है हम !

खड्ग है हम, ढाल हैं हम,
ज्वार से उत्ताल हैं हम,

रज की दुग ज्वार हैं हम
धरणि की जयमाल हैं हम।

कुछ स्वर

मिथ्या है, सब मिथ्या जग में आज चतुर्दिक,
केवल सत्य मनुज के उर की घोर घृणा है।
मिथ्या नैतिकता मिथ्या आदर्श है केवल,
जन पीडन शोषण के हित जो उद्भूत होते।
केवल सत्य विषमताएँ हैं प्रतिहिंसा है,
केवल सत्य प्रतप्त पिपासा है तृष्णा है।।

उबल रहा है द्वेष गरल में जन-गण का मन,
भभक रहा है क्रोध अग्नि से मानव अन्तर,
फटने को है आज विकट ज्वाला का पर्वत,
फूंकेगा वह उगलेगा पावक लावा को,
और जला देगा छल झूठ कपट के जग को,
मानव उर की निर्ममता को नृशंसता को,—
भस्मसात् कर देगा जग के दुःस्वप्नों को।

(चिन्तन संगीत)

कुछ स्वर

छायाएँ हैं छायाएँ आदर्श भयानक,
छायाओं को कुचलेंगे हम, आभासों को
रौंदेंगे पाँवों के नीचे युग-युग के मृत
संस्कारों को खोद मिटा देंगे जन मन से।

(उत्तेजना द्योतक संगीत)

कवि

इसीलिए तुमने सम्मानित जीवन श्रम को
छोड़ प्रहरी जीवन फिर स्वीकार किया है।—
देख रहा हूँ आज संगठित मन युग-युग का
सामूहिक जन बर्बरता में बिखर रहा है,
आदर्शों के स्वर्ग विचुम्बी शिखर टूटकर
भू लुण्ठित हो रहे विवर्तन की आँधी में
और नाश के घने अँधेरे के उतने ही
गहरे गर्तों में गिर, धरती के अन्तर को
क्षत विक्षत कर रहे चूर्ण हो।

जीवन की वे
पावन, मोहित, निमत घाटियाँ, जो चिर करुणा,
ममता के स्वर्णिम प्रकाश से भरी हुई थीं,
जहाँ सभ्यता का क्रन्दन न पहुँच पाया था,
पद मर्दित हो रही आज वे अविश्वास के
प्रतिहिंसा के दैत्यों के निर्मम चरणों से।।

मानव की निदयता उनके भीतर घुसकर
बोल रही तोपा के मुख से विकट नाद कर ! !
भले बुरे, काले सफेद औ' सत्य झूठ के
सभी मान इस सतत बढ रही अँधियाली के
प्रलय ज्वार मे डूब रहे है किमाकार हो !

(विप्लवसूचक वाद्य सगीत)

एकाकार हुए जाते है पाप पुण्य सब,—
मानव के अन्तर्व्यापी घन अन्धकार से
घृणा द्वेष, अन्याय कपट, छल स्पर्धा हिंसा
आज पुकार रहे चिल्लाकर—बाह्य सगठन
मात्र सत्य है ! बाह्य सगठन चरम लक्ष्य है !
बाह्य आसुरी एका ही सब कुछ है जग मे,
अतजगत, हृदय का एका,—केवल भ्रम है !
अतमुख सगठन पलायन, बहलावा है !
सस्कृति ? वर्गो के हित साधन की दासी है !
युग अपनी मुट्ठी म अणु सहार लिये है ! !

विज्ञापन करता विनाश भीषण शब्दा म !
हिल हिल उठते आज चेतना भुवन मनुज की
भावो की आशका से ! अह आज मनुज का
आत्म प्रतारक द्वेष बन गया विश्व विनाशक ! !

कुछ स्वर

कायर हो तुम कायर ! जो उपदेश दे रहे
नगे - भूखे लोगा को अध्यात्मवाद का !
कलाकार तुम नही, तुम्हारे दुबल उर म
वज्र घोष विद्रोह नही युग की प्रतिभा का !

खौल न उठता रक्त तुम्हारा घृणा क्रोध स
शोषित पीडित मानवता की नग्न व्यथा पर !
दया द्रवित भी नही दिखायी देते हो तुम ! !
जग जीवन से विरत, निरत फूलो के वन म,
स्वप्न लोक म रहते हो तुम आत्मतोष के !

साथ नही दोगे तुम जन का युग सकट मे
रिक्त कला, सुन्दरता के थोथ आराधक ! !
धिक तुमको ! यह व्यक्ति अह जन पथ कण्टक है!

कवि

किन्तु हाय, यह सत्य अह दुगम पवत है ! !
भीतर भी है जनगण, भीतर ही जन का मन,
भीतर भी है सूक्ष्म परिस्थितियाँ जीवन की,
भीतर ही रे मानव भीतर ही सच्चा जग
जाति वग श्रेणी म नही विभाजित है जो,

उस नव्य सगठित, पूण सक्रिय, चेतन कर
वहिर्जगत म स्थापित करता है मानव को !

कुछ स्वर

चलो, बढो हे भूजन, प्रगतिधारा के पथ पर,
सागर को मथने, पवत का शीश भुकान,—
विजय ध्वजा स्थापित करने देवा के सिर पर।

रौंदेंगे हम परियो की पापा स गुजित
इस वन फूला की घाटी को ! बिसरा देंगे
इसकी स्वप्न भरी पगडियाँ धरा धूल म।
तोड - मोड इसकी शोभा पल्लव शाखाएँ
लूटेंगे रस के मटका-स नर फला को,
जो सगोल स चेतन भुवना स लटक हैं !

ध्वस भ्रष्ट कर देंगे हम इस प्रान्तों की
माया मोहक पचवटी को भटकाती जो
मानव मन को नित नव स्वण मृगा के पीछे।
वहिर्जगत की लौहमुष्टि फिर भ्रन्तर जग का
नव निर्माण करेगी जीवित म्रापाता न।
नही रहेगा बास, बजगी तब क्या वशी ?
हम युग विद्रोही हैं प्राज हमारी इच्छा
सत्य न्याय की उदघोषक है।—शेष झूठ है।

(प्रयाण सगीत)

चलो तात, बढो भ्रात
गौरव के गिरे शिखर
जन भू हो नव उवर,
जडता पर, रहो निडर,
करो घात करो घात
करो घात !

(तानपूरे के स्वर)

कवि

धरती का निस्तल ग्रवचेतन उमड रहा है
बवर युग के ग्रावेशो से ग्रान्दोलित हो
जग जीवन की क्रूर विपमताग्रा म फिर स
नव युग का मासल सगत्व भरन जन वाछित,—
मानव उर की मोह दम्भ की वज्रशिला पर
शत निष्ठुर प्राट्टत प्रहार कर प्रतिहिंसा के।

विस्मित हू मैं। भ्राज उपेक्षित जन धरणी का
भू विस्तत समतल जीवन जब विहँस चतुर्दिक
प्रथम बार पल्लवित लोक सगठित हो रहा

भौतिक स्तर पर, दैन्य दुख से अखिल मुक्त हो
छूट रहा जब करुण पराभव सरयाम्रो का
विगत युगो की निठुर नियति स भाल पर लिखित,—
प्रथम बार जब युग-युग का भू कल्मप कर्दम
आज धुल रहा प्रणत रौढ जनगण के मुख से,
खडे हो रहे जो अगणित पैरो पर फिर से
दैन्य गत स निकल, असख्य भुजाएँ फैला,
अँगडाई भरते प्रचण्ड जीवन लपटो-म,
अग्नि शस्य स लहरा भू पर प्राण प्ररोहित,—
ऐसे युग म एक ऊर्ध्वदिक दिव्य सचरण
जन्म ले रहा अतरतम म युग मानव के,
निज अपूर्व चेतना शिखा से आलोकित कर
जीवन मन की अतल गहनताओ का वैभव,
सूक्ष्म प्रसारो की अतुलित दिगव्यापी शोभा,—
मानव मन को ज्योति चमत्कृत कर जीवन का
स्वर्गिक रूपान्तर कर, स्वर्णिम ऊँचाई स।
देख रहा मैं, स्वर्ग क्षितिज से उतर रही है
नव जीवन शोभा की प्रतिमा आभा देही,
नव सस्कृति की अन्त स्मित किरणो से मण्डित,—
जो बहिरन्तर ऐक्य साम्य मानव जीवन मे
पुन प्रतिष्ठित कर देगी, ऊर्ध्वग भू व्यापक।
किन्तु कौन तुम, मौन ज्योति विद्रवित जलद-से
चिन्तन की मुद्रा म, यहाँ खडे हो कैसे?
छोड साथियो को अपने —किस अभिप्राय से?

वैज्ञानिक

किस आशा से? वैज्ञानिक हूँ मैं। इतना ही
मेरा परिचय। मैंने ही चचल विद्युत् को
वाष्प रश्मि को बाध, बनाया युग मानव की
क्रीता दासी। मैंने अणु का गर्व चूर्ण कर
मूर्त प्रकृति की मूल शक्ति को किया निछावर
मानव के चरणो पर। आज मनुज स्वामी है
सिन्धु गगन का देशकाल का—निखिल प्रकृति का।
और अनेका चमत्कार मैंने इस युग म
दिखलाये हैं यन्त्रो के बल से मनुष्य को
जो पिछले युग के मन्त्रो-तन्त्रो के छल से
कहीं सत्य विस्मयकारी है,—उन्हें गिनाना
आत्म प्रशसा कहलायेगा, पातक है जो।

कवि

परिचित हूँ मैं सुहृद, तुम्हारे अमर दान स,
व्याप्त तुम्हारी शुभ्र कीर्ति है दसो दिशा म,

रूपातर कर दिया मनुज जीवन का तुमने
भूत परिस्थितियो म उसकी महत् क्रान्ति कर।
कितु पूछता हूँ मैं तुमसे आज मनुज क्या
स्वामी है या दास प्रकृति का? वह विद्युत् पर
शासन करता है या विद्युत वाष्प यन्त्र ही
अधिकृत उसे किये हैं?—हाय, मनुज का अतर
चूण हो रहा आज दप से वहिजगत की
अध वीथियो म शत खोकर लक्ष्य भ्रष्ट हो।
हृदय हीन कर दिया उसे जड भौतिकता ने।।
आज प्रकृति की मूल शक्ति देकर, मानव को
महानाश के पथ पर तुमने छोड दिया है।।

वज्ञानिक

स्यात वदल जाती जग की कटु अथ व्यवस्था,
वाह्य विपमताएँ पट जाती युग जीवन की
स्वाथ लोभ क पैने पजो स मानव पशु
मानव का मुख नही नोचता रक्त सिक्त कर।—
लौह अस्थि पजर म भीपण यान्त्रिक युग के
मनुज हृदय की धडकन पुन सुनायी पडती।
क्रूर वाष्प विद्युत क दानव मानवीय वन
शोपक से सेवक वन जाते जन समाज के।

कवि

यदि अत सगठित आज हो जाता युग मन,
मनुज हृदय का परिवतन साथक हो सकता
तो आदिम सस्कार उभडते नही धरा के
युग जीवन का स्वर्णिम रूपातर हो उठता।
हिम फुहार-सी वरस सुनहली शाति चतुर्दिक
शुभ्र हास्य से अभिपक्ति करती भू प्रागण,
जीवन मन के मूल्य निखिल अत परिणत हो
व्यापक उर स्पर्शी वन जाते स्वग क्षितिज छू।
अतर जीवन की ऊध्वग महिमा से मण्डित
नव चेतन हो उठती जड धरणी सुर प्रहसित।

वज्ञानिक

अगर मुक्त हो सक्ती रचना शक्ति जनो की
समुचित वितरण हो पाता जीवनोपाय का,
सामाजिक सतुलन ग्रहण कर लता भू श्रम
बँट जाता यन्त्रो का बल आर्थिक समत्व म,—
स्वाथ लोभ, अन्याय द्वप स्पर्धा उठ जात
भूव्यापी जन रक्तपात टल जाता युग का
मानव के सयुक्त कर्म स स्वर्णिम चेतन
युग प्रभात हँस उठता भू तम को निरस्त कर।

कवि

और साथ ही अगर ऊर्ध्व चेता बन जाता
समदिक मानव, अतिक्रम कर मन की सीमाएँ,
मिट जाते खण्डित भू जीवन के विरोध सब,
भौतिक नतिक मान नियोजित होते युगपत्‌ ।
मानवीय सन्तुलन ग्रहण कर लेता जन युग,
यन्ना की जलती सासें ठण्डी पड जाती ।
मनुज चेतना के पारसमणि स्निग्ध स्पश से
लोहे की निममता स्वण द्रवित हो उठती ।

नयी चेतना के प्रकाश मे केन्द्रित मानव
पुन सत्य का मुख विलोकता नये रूप से,
नयी दृष्टि मिल जाती उसको जीवन के प्रति,
मिट जाती सब विगत युगो की घणित क्षुद्रता ।
बाह्य रुद्ध बौनेपन से निज ऊपर उठकर
ऊर्ध्व मुक्त, अन्तश्चेतन बन जाता जन मन,
अन्त स्थित, अन्त स्मित हो, अन्त कृताथ हो ।

वैज्ञानिक

यही सोचता हूँ मैं भी अब ! आज मुझे है
महत प्रेरणा मिली मनुज अन्तर्जीवी है ।
स्पष्ट देखता हूँ मैं अन्तर का विधान ही
मानव है ! अन्त नयोजित, ऊर्ध्व समन्वित !
आज मनुज मर गया ! पराजित हो भीतर से
दौड रहा है वह बाहर, व्यक्तित्व हीनहो !
व्यक्तिहीन सामाजिकता निर्जीव ढेर है !

ढेर हो गया मानव का मन, यान्त्रिकता से
चूण हो गया मनुज हृदय ! वह अब समूह है ।
यन्त्रो से चालित इच्छाओ का समूह है,
घणा, द्वेप, स्पधा तृष्णाओ का समूह है !
नाटकीय कटुता निममता का समूह है,
अवचेतन की अन्ध वासना का समूह है !!

महत व्यक्ति चाहिए आज सामूहिक युग मे,—
दुर्निवार कामना किन्तु है मुक्त हो उठी,
रौंद रही जो मानव के मिथ्याभिमान को !
आज निखिल विज्ञान शक्ति मानव हाथो म
विश्व प्रलय कारिणी बन गयी लोक विनाशक
कापालिक बन गया मनुज है, जीवन बलि प्रिय,
मानव शव का पूजक, साधक भू श्मशान का !!

कवि

यद्यपि अब भी लसरो की रपहली पायलें
बजती छम खेता म हसमुख हरियाली

सोना उगला करती है, नव मुग्धाओ की
चल चितवन से स्वग भाकता, नव शिशुओ को
घेर स्वग की परियाँ मँडराती लुकछिपकर,—
किंतु चतुर्दिक् गरज रहे युग सघषण मे,
हिंस सभ्यता की हुकारो म, जीवन की
मोहकता सब बिखर गयी है। मानस सूना,
जग फीका लगता है मरुस्थल सा निरथ, मत,—
जीवन इच्छा तुच्छ, रूप चल मृग तृष्णा-सा,
आशा का इगित निष्प्रभ, भूतल मरघट सा॥

(आशाप्रद वाद्य सगीत)

अमत पुत्र है पर मानव,—है व्यथ निराशा।
मास पेशियाँ आज पवताकार खडी हो
भले रोकती हो अत केद्रित प्रकाश को,
फूट पडेगा वह स्वर्णिम निभर वन उर से।

पतझर आया है यह फूलो के प्रदेश म,—
झरने दो मानस के मुरझाय वभव को,
अरुण किसलयो से कलियो के अवगुण्ठन से
झाक रहा फिर नवल रुपहला आशा का जग।

फिर से वहिरतर सयोजित होगा मानव,
पुन नान विज्ञान समन्वित होगा जीवन।
व्यक्ति समाज परस्पर अयोयाश्रित होकर
बढते जायेंगे विकास के स्वर्णिम पथ पर।
वहिजगत के शिखर ज्वार पर आरोहण कर
नव्य चेतना उतरेगी किरणो से मण्डित।
सत्य अहिसा होगे भावी के पथ दशक,
विचरेगी मानवता फूलो के प्रदेश मे
नव सस्कृति की श्री शोभा सौरभ से पोपित।

(हपसूचक वाद्य सगीत)

वज्ञानिक

स्वप्न नही है यह, नि सशय मूत सत्य है।
मनुज सदा अपने को अतिक्रम कर, अन्तर्मुख
आदर्शों के नित नूतन ऊध्वग प्रकाश को
नवल वास्तविकता म बाँधेगा जीवन की,
मानवीय होगी निश्चय वास्तविकता वही।

कवि

तुमसे यह सुनकर कृतकाय हुआ अब जीवन!
आओ, हम दोनो वहिरन्तर क प्रतिनिधि मिल
अमृत चेतना को इस फूलो क प्रदश की
नव युग जीवन म परिणत कर, सत्य बनायें।

(जनरव रणवाद्य)
देखो, लौट रहे हैं जनगण श्रान्त क्लान्त मन,
शोणित पंकिल तन,—धरणी को रक्त पूत कर।
आज प्रार्थना जनश्रम मिलकर ज्योति शक्ति से
शान्ति धाम, जन मंगल ग्राम बनायें भू को।

(समवेत गीत)

मंगलमय पूर्ण काम
जन-मन का लो प्रणाम।

द्वेष रहित हो भू मन
शोभा स्मित जन जीवन
सृजन स्वप्न भर नयन,
कर्म जनित हो विराम।

विश्व शान्ति बने ध्येय,
श्रेय ग्रथित रहे प्रेय,
लोक ऐक्य हो अजेय,
पावन जनवास, ग्राम।

शान्त नील विश्व गगन,
शान्त हरित सिंधु गहन
शान्त नगर पर्वत वन,
जन भू हो शान्ति धाम।

(५ मार्च, १९५१)

उत्तर शती

विश शती का विश्व सभ्यता के इतिहास म अत्यन्त महत्त्वपूण स्थान रहेगा। प्रस्तुत रूपक म उसके पूर्वार्ध के सघप-सग्राम का सक्षिप्त निदशन तथा उत्तराध के आशा कल्याणप्रद क्रम-विकास की ओर सकेत किया गया है। उत्तर शती मानव जगत म नवीन स्वणयुग का समारम्भ कर सकेगी, इसम सन्देह नही।

पुरुष स्वर
स्त्री स्वर
सन १६५१
जनगण

(समवेत गान)

कौन कौन तुम निष्ठुर हासिनि ?
महाकाल के मुक्त वक्ष पर
नग्न नृत्य करती उन्मादिनि !
दक्षिण कर पीयूष पान स्मित
वाम हस्त विष ज्वाल विकम्पित,
विचर रही निमम अबाध तुम
विश्व विषादिनि, लोक प्रसादिनि !
टूट रहे युग - युग के बन्धन
गिरते मुकुट महल सिंहासन,
रणन झनन वज - वज उठता रण
जय जन-मन जीवन उल्लासिनि !
सिन्धु क्षितिज अब रक्त तरंगित
अरुणोदय होने को निश्चित
जय, विनाश के अतल गर्भ से
नव युग जीवन ज्वार विकासिनि !

(तानपूरे के स्वर)

पुरुष स्वर

विंश शती यह, अपने वज्र मुखर चरणा से
रण झंकृत कर युग के जीवन का कण्टक पथ
दिग घोषित करती है अपना महिम आगमन
शत शत तोपों के गर्जन से अभिनन्दित हो !

(तुमुल वाद्य ध्वनि)

वोऽर युद्ध के साथ धरा जन के जीवन म
कर प्रवेश, भर दारुण क्रन्दन, भीषण गर्जन,
लय वलाहक-सी छायी यह जग के नभ म
ण्डित कटाक्षो से विदीर्ण कर विश्व दिगन्तर !
हासमर छिड चुके धरा पर हैं तब से दो,
त तरंगित कर जन के जीवन का सागर,

रुधिर पक से रँग धरती का आहत तन मन,
दैन्य दुख ईर्ष्या स्पर्धा के रक्त बीज बो ।
मँडराते रण वायु यान मथित कर अम्बर
भीम काय दानव-से फैला मृत्यु पख-निज,
हरित भरित धरणी के जन उवर अचल मे
बरसाकर पावक प्रचण्ड खर नरक कुण्ड का ।
किमाकार चल पवत शिखरो से टकराकर
तुमुल नाद से चीर गगन की नील शान्ति को
घिरते विद्युत घन विनाश के, युग के नभ मे,
महामरण की छाया डाल धरा के मुख पर ।

(करुण भीत वाद्य ध्वनि)

स्त्री स्वर

बढता जाता सघषण पर कटु सघषण,
उद्वेलित वारिधि-सा विश्व शती का मानस
आलोडित हो युग आवेशो के शिखरो मे
डुबा रहा भू के तट, नव जीवन प्लावन भर ।
निखर रही है नयी धरित्री युग कदम से
निखर रहे हैं नये देश प्राणो से मुखरित,
लोक साम्य की महत प्रेरणा से आदोलित
उमड रही जन मानवता जीवन कल्लोलित ।

(हषसूचक वाद्य ध्वनि)

जूझ रहे हैं लौह सगठन युग जडता को
वज्र मुष्टियो के प्रहार से जागृत करने,
नव शोणित से वर स्नात करने भू का मुख
परिवर्तित करने जग के कटु मानचित्र को ।
टकराती हैं नव्य चेतना की हिल्लोले
युग मन की निश्चेष्ट बधिर पाषाण शिला पर,
हाहाकारो से जयघोषो से समुच्छ्वसित
विश्व क्रांति की ओर सतत आरोहण करती ।

(द्रुत तीव्र वाद्य ध्वनि)

पुरुष स्वर

रक्त क्रांति के शोणित के सागर से उठकर
चमक रहा है लोहिताक्ष नक्षत्र नवोदित
युग के नभ मे अगारक सा महत् महोज्ज्वल
भूमि पुत्रवत मातृधरा के वैभव से स्मित —
युग-युग के शोषित जनगण का स्वग नूतिप्रद ।
नव्य लोक वह, जिसके श्रेणि मुक्त समतल मे
विचरण करती वगहीन मानवता निभय
नव शोणित से स्पदित, नव शिक्षा से जागत,

विगत विभेदा, घृणित निषेधा से विमुक्त मन,—
खीच धरा के प्राणा से नव युग का यौवन
निर्मित करती वह नव भू जीवन, जग सस्कृति,
अभिनव श्राकाऽक्षाश्रो, ध्येया से प्रेरित।
तरुण रक्त म उसके अभी नही आ पाया
वयस सुलभ, अनुभूति गहन सन्तुलन ज्ञान का,
गत युग के सस्कार नही मिट सके मनस के,
श्रावेगा की नयी धरा वह, ऊष्ण, वहिमुख,—
जिसे चाहिए जीवन म थन अन्तदर्शन।
फल रही है उसकी आभा, जग जीवन के
जाति प्रथित तम को सतरगा म रजित कर,
विजयी अरुणध्वजा म फहराता प्रभात नव,
स्मित प्रकाश की किरण बिखरा जन प्रागण म।
वहाँ सम्यता मध्य युगा की, मध्य वग की
रूढि रीतिया के पाशो से मोह मुक्त हो
जीवन पट बुन रही विशद जन मानवता का
नव शोभा सुन्दरता, नव गौरव गरिमा के
स्वण रजत ताने बाने से,—नव मूल्याकित।
अभिवादन इस नव्य देश का, वद्ध जगत के
साथ बढे वह, विश्व शान्ति का पोषक बनकर।

स्त्री स्वर

वयस शुभ्र हिम शिखरा के उस पार, पडोसी
ज्ञान वद्ध प्राचीन चीन की महाभूमि भी
युग परिवतन की करवट ले, नव्य राष्ट्र म
उधर लोक सगठित हो रही, तरुण रुधिर स्मित
नव जीवन से गुजित, नव प्राणा से मुखरित,—
रक्त जिह्व ध्वज फहरा जन आशाऽकाक्षा का,
युग प्रभात सूचक। जाग्रत् एशिया अब महत।
गात गरज-गरज जनगण इस भूमि खण्ड के
वश प्ररोहा से उठ भू का वक्ष चीरते,—
अग्नि शालि से लहरा जीवन की लपटो म,—
जय हो जनता की जय, जय मानवता की जय।

(जन गीत)

युग प्रभात जन लाये, जन लाय।
सिन्धु तरगो गिरि शृगा पर
विजये ध्वजा फहरायऽ।
बढते अगणित पग जव मग पर
उठते अगणित भुज जब ऊपर
देते पथ मरु पवत सागर,
सादर शीश नवाय।

उस पाटना है इस युग को आत्म त्याग से
सहिष्णुता, शिक्षा समत्व से,—और नहीं तो,
सत्याग्रह से, शत शत निर्भय बलिदानों से !
जिससे भू का रक्त क्षीण शोषित विषण्ण मुख
फिर प्रसन्न, जीवन मासल हो, युग शोभन हो !
उत्तर शती अवश्य यन्त्र युग के विप्लव म
सामजस्य नया लायेगी जन - मन वाछित,
जिसस शिक्षा, सस्कृति, सामूहिक विकास का
पथ प्रशस्त हो जायगा युग मानव के हित !

(घण्टो और वाद्यो की करुण ध्वनि)

स्त्री स्वर

अधशती अब बीत रही है, घनन् घनन् घन्,
घड़ियालो का क्रन्दन उसको विदा दे रहा !
अधरात्रि की नीरवता को चीर झनन झन
झिल्ली का कातर स्वन उससे विदा ले रहा !
शत शत आहत इच्छाएँ, असफल तृष्णाएँ
उसके चिर कुण्ठित अन्तर म मौन सो रही,
शत मुकुलित आशाएँ, अभिनव अभिलाषाएँ
भावी के स्वप्निल पलको म जन्म ले रही !

(मन्द्र वाद्य ध्वनि)

स्त्री पुरुष स्वर

विदा, विदा, हे पूर्वशती, गत समरा की स्मृति
मिटे तुम्हारे सँग मन स, भीषण छायाकृति !
मुक्त रूपहले पख खोल, बरसा स्वर्णिम स्मिति
विचर भू पर शान्ति, शान्तिप्रिय हो जन सस्कृति !

(द्रुत वाद्य ध्वनि)

लोक क्रान्ति की अग्रदूतिके, तुम झझा पर
चढकर आयी, मथित करने जीवन सागर !
भूमिकम्प - सी, ध्वस भ्रश, गजन-तजन भर
धूलिसात् कर गयी युगो के सौध स्मृति शिखर !
स्वस्ति, स्वस्ति ! अब नव निर्माण करें भू के जन
ले जाओ अपने सँग जग का दारुण रोदन !

(गभीर वाद्य ध्वनि)

पुरुष स्वर

इन पचास वर्षों के निविड कुहासे से कढ़
सन् इक्यावन मौन बढ रहा धीर सम्मुख !
अधपक्व केशो के उसके प्रौढ भाल पर
चिन्तन की रेखा है अकित, नवल क्षितिज-सी !
रजत घण्टियो की कल ध्वनि स्वर्णिम आशा के
पखा मे उड अभिनन्दन करती है उसका !

मिटा युगों का दैन्य त्रास तम
कटा निखिल मन का मोहक भ्रम
जग जीवन गौरव जन का श्रम
नव प्रकाश दिखलाय !

आज धरा श्रम सकल एक हो
मात्र दासता के बंधन खो,
अग्नि बीज नव जीवन के बो
स्वर्ण शस्य बन छाये, लहराये !

(तानपूरे के स्वर)

स्त्री स्वर

भौगोलिक ही नहीं सांस्कृतिक धर्म बंधु भी
भारत का जो रहा पुरातन, अक्षय करुणा
ममता के स्वर्णिम सूत्रों में बँधा चिरंतन
भारत के अंतः प्रकाश से ज्योतिमज्जित
जिसके शिखर गहन पथ विपणि हुए चिर पावन,
महाबोधि की प्रीति द्रवित संस्कृत वाणी से
जिसके पुर गृह द्वार रहे नित अंतर्मुखरित,
ऐसे निज आत्मीय सखा का पुनः हृदय से
अभिवादन करते भारत जन, उससे नूतन
युग मैत्री, सद्भाव, संधि स्थापित करने को
समुल्लसित मन,—सुहृद् अभ्युदय के गौरव से
उन्नत मस्तक !—

बंधन मुक्त, स्वतंत्र,—आज वे
लोक शांति के लिए स्वतः भी जाग्रत्, उद्यत !
गौतम से गांधी तक सत्य अहिंसा का जो
रहे अमर संदेश सुनाते क्षुधित जगत को,
मानव जीवन मन में अंतःक्रान्ति के लिए
मौन प्रयासी, विश्व शांति के चिर अभिलाषी
भारत के सुत, नव्य चेतना से अन्तःस्मित,
नव मानवता के स्वप्नों से अपलक लोचन
जाग रहे, विस्मृत युग के स्वर्णिम खण्डहर से,
भू जीवन की नवल कल्पना से उन्मथित
स्वर्गिक पावक की लपटों में, लोक यज्ञ हित !

(जागरण वाद्य संगीत)

पुरुष स्वर

यह सच है जिस अर्थ भित्ति पर विश्व सभ्यता
आज खड़ी है, बाधक है वह जन विकास की,
उसमें दीर्घ अपेक्षित है व्यापक परिवर्तन
भू मंगल हित ! धनिक श्रमिक के बीच भयंकर
जो शोणित पंकिल खायी है वर्ग भेद की

उसे पाटना है इस युग को आत्म त्याग से
सहिष्णुता, शिक्षा समत्व से,—और नहीं तो,
सत्याग्रह से, शत शत निर्मम बलिदानों से।
जिससे भू का रक्त क्षीण शोषित विपण्ण मुख
फिर प्रसन्न, जीवन मासल हो, युग शोभन हो।
उत्तर शती अवश्य यन्त्र युग के विप्लव में
सामजस्य नया लायेगी जन-मन वाछित,
जिससे शिक्षा, सस्कृति, सामूहिक विकास का
पथ प्रशस्त हो जायेगा युग मानव के हित।
(घण्टो और वाद्यो की करुण ध्वनि)

स्त्री स्वर

अधशती अब बीत रही है, घनन घनन् घन्,
घड़ियाला का क्रन्दन उसको विदा दे रहा।
अधरात्रि की नीरवता को चीर झनन झन
झिल्ली का कातर स्वन उससे विदा ले रहा।
शत शत आहत इच्छाएँ, असफल तृष्णाएँ
उसके चिर कुण्ठित अन्तर में मौन सो रहीं,
शत मुकुलित आशाएँ अभिनव अभिलाषाएँ
भावी के स्वप्निल पलकों में जन्म ले रहीं।
(मन्द्र वाद्य ध्वनि)

स्त्री पुरुष स्वर

विदा, विदा, हे पूर्वशती, गत समरों की स्मृति
मिटे तुम्हारे संग मन से, भीषण छायाकृति।
मुक्त रूपहले पख खोल, बरसा स्वर्णिम स्मिति
विचर भू पर शान्ति, शान्तिप्रिय हो जन ससृति।
(द्रुत वाद्य ध्वनि)
लोक क्रान्ति की अग्रदूतिके, तुम झझा पर
चढकर आयी, मथित करने जीवन सागर।
भूमिकम्प-सी, ध्वस भ्रश, गर्जन-तर्जन भर
धूलिसात् कर गयी युगों के सौध स्मृति शिखर।
स्वस्ति, स्वस्ति। अब नव निर्माण करें भू के जन
ले जाओ अपने सँग जग का दारुण रोदन।
(गभीर वाद्य ध्वनि)

पुरुष स्वर

इन पचास वर्षों के निविड कुहासे से कढ
सन् इक्यावन मौन बढ रहा धीरे सम्मुख।
अधपक्व केशों के उसके प्रौढ भाल पर
चिन्तन की रेखा है अकित, नवल क्षितिज-सी।
रजत घण्टियों की कल ध्वनि स्वर्णिम आशा के
पखों में उड अभिनन्दन करती है उसका!

(घण्टियों की हृपध्वनि)

स्त्री-पुरुष स्वर

स्वागत नूतन वर्ष, शिखर तुम विश शती के,
लाओ नूतन हर्ष, नवागन्तुक जगती के!
कब से अपलक नयन प्रतीक्षा करते भू जन,
विश्व शान्ति म लोक क्रान्ति हो परिणत नूतन!
भर जाओ स्वर्णिम समत्व जग जीवन रण मे,
नव जीवन के सजन स्वप्न जनगण के मन म!
लहरो के शिखरो मे उठती जीवन आशा,
गिरि शृंगो पर चढती जन भू की अभिलाषा!
खोज रही गत प्रतिध्वनियां नव मन की भाषा,
जन मानवता जीवन की नूतन परिभाषा!
आओ, जन सारथि बन, कदम स्तम्भित युग रथ,
पथ बाधाएँ लाघ, करो हे पूर्ण मनोरथ!

(आशाप्रद वाद्य सगीत)

पुरुष स्वर

रवि के चारो ओर धरा के पूर्ण पचदश
सक्रमणो के बाद वर्ष नव उदित हो रहा
विश्व मच पर, पार कण्टकित कर आधा पथ,
अनुभव गहन हृदय मन ले सागर सा निस्तल!
नव आशा की किरणो से स्मित आनन श्री ले,
सोच रहा वह उच्च स्वरो म जल प्रपात सा—

(गभीर वाद्य ध्वनि)

सन इक्यावन

भाग्यवान् हूँ मैं! विराट् इस विश शती के
चिर महान युग मे जो नूतन जन्म ग्रहण कर
पुन आ सका हूँ अब सन् इक्यावन बनकर!
विश्व सभ्यता आज नवल इतिहास रच रही,
जन सस्कृति का आज धवल अध्याय खुल रहा!
कितने ही परिवतन आये भू जीवन मे,
कितने ही सघर्ष और सग्राम छिड चुके,
बर्बर युग से आज यन्त्र युग म मानवता
लडती भिडती अधकार म राह खोजती,
सागर-सी गर्जन-तर्जन उद्वेलन भरती
पहुँच रही अब एक व्यापक सगम स्थल पर
जहाँ उसे निज पिछले जीवन का मथन कर
पिछले आदर्शों मूल्यो का विश्लेषण कर
लोक सभ्यता निर्मित करनी है भू विस्तृत,
विविध विगत सस्कृतियो का कर महत् समन्वय।

(प्रगति सूचकवाद्य सगीत)

महाभाग हूँ मै ! महान् है विश शती यह !
धन्य धरा जीवी युग के जिनके कधो पर
भावी मानवता का स्वर्णिम भार धरा है !
वृहद ज्ञान विज्ञान किया सचय इस युग ने,
वाष्प तडित, वहु रश्मि शक्ति इसके इगित पर
नाच रही है,—आज महत् अणु सिद्धि प्राप्त कर
उसने मौलिक भूत शक्ति का स्रोत पा लिया
विजयी हुआ मनुज का मन जड भूत प्रकृति पर,
आज अनुचरी वनी स्वामिनी मनुज नियति की !

(विजय सगीत)

भू रचना का स्वर्णिम युग हो रहा अवतरित
पुन विश्व प्रागण मे कव से लोक अपेक्षित !
आज मनुज को खण्ड युगो से ऊपर उठकर
रूढि रीति गत आदर्शो के ककालो को
पद लुण्ठित कर, युग वैभव की सुदृढ भित्ति पर
मनुष्यत्व के व्यापक तत्वो से नव जीवन
नव सस्कृति निर्मित करनी है भू जन के हित !
युग युग से कलुषित भू का तन भाव स्नात कर
वेष्टित करना है उसको नव श्री शोभा मे
जीवन के मन के गौरव मे आत्म द्रवित कर !
नव्य चेतना के आलिगन मे बँध जनगण
जिससे फिर सगठित हो सकें वाहर भीतर
गूज उठे सहार सृजन का गीत मुक्त स्वर—

(समवेत गान)

झरें, झरें
जीर्ण शीर्ण विश्व पर्ण
चिर विदीर्ण चिर विवर्ण
नव युग के प्रागण मे
मरें, मरें !

अधशती रही वीत
भावी मे लय अतीत,
दैन्य ताप, रक्त पात
हरें, हरें !

हँसता जीवन वसन्त
कुसुमित जग के दिगन्त,
जन हित वैभव अनन्त
भरें भरें !

जीण शीण विश्व पण
मरें, मरें !
(मेघ घोष और रण वाद्य)

सन इक्यावन

किन्तु हाय, क्या देख रहा मैं, विश्व क्षितिज मे
उमड घुमड घिर रहे चतुर्दिक् मेघ भयानक !
अट्टहास करती शम्पा, रण भीषण गजन
भरते शोणित के घन, दिङ् मण्डल विदीण कर !

आज तीसरे विश्व युद्ध की भय आशका
गरज रही इन भीम घनो मे हृदय विदारक !
राष्ट्रो के कटु स्वाथ, सत्व धन बल की तृष्णा
समर सगठित पुन हो रही भू भागो म !!
अभी अभी फासिस्त शक्ति के युग दानव को
लुण्ठित, दप दलित करने जो देश धरा के
एकत्रित थे हुए प्रगति का व्यूह बनाकर,
आज परस्पर के भय दु स्वप्नो से पीडित
महा प्रलय के हेतु दीखते रण तत्पर वे !!

पूजीवाद उठा हिंसा का धूम्रकेतु ध्वज
लिये लोक सहार घोर अणु मुष्टि म विकट
फिर ललकार रहा धरती की हरित शाति को,
जन समुद्र के उर की नभ चुम्बी लहरो पर
दुरभिसंधि से शासन करने ! हाय दुराशा !!
लोक राष्ट्र भी भूल वहद् जन साम्य योजना
आज नवल साम्राज्यवाद की मद लिप्सा से
बना रहे हैं सैन्य शिविर निज जन तन्त्रो को,—
घूम रही है धरा समर के घोर भँवर मे !
दम साधे है खडा भयकर अणु का दानव
भूव्यापी सहार, प्रलय हुकार छेडने !!

क्या भारत इस भू विसूचिका से हो जागृत
बहिरन्तर सगठित नहीं होगा इस युग मे ?
आत्म शक्ति का, विश्व चेतना का प्रतीक बन,
सौम्य, शान्त, भू कमनिष्ठ, जन मगल कामी,
मनुष्यत्व का प्रतिनिधि, दढ, निर्भीक, अहिंसक !

रूढि रीतियो की इस मध्य युगीन धरा को
कौन पुनश्चेतन कर सकता आत्म दान से
जनगण के अतिरिक्त, भूमि के अधिकारी जो,
गौरव गरिमा के वाहक इस महादेश के ?
नव जन जीवन के भूव्यापी प्राणज्वार म
निश्चय हो सकते निमग्न ये अथ शक्ति रण
वग समन्वय मे नव, शोणित रहित क्रान्ति से !

(उद्‌बोधन सगीत)

कौन सुनेगा पर मेरे ये तूती के स्वर
इस भीषण तजन गजन, कटु चीत्कारो के
निमम युग मे, छाया चारो ओर जहाँ है
भय, सशय, नैराश्य, विषाद, उपेक्षा, निन्दा
ईर्ष्या, स्पर्धा, अहकार,—खर लौह शूल-सा ।
देख चुका हूँ अधशती सक्रमण कर चुका
वर्ष पचदश, दुसह युग परिवेश से व्यथित,
किसी तरह मैं । मुद्गरो के वाने मे गुम्फित
मिले अनेको लोग, देश, भू राष्ट्र प्रतिष्ठित,
जन सस्थाएँ, लोक सघ बहु, व्यक्ति कनक घट,—
आत्म वचना द्वेष, कलह, स्वार्थों से पीडित
पर उन्नति से क्षुब्ध, लुब्ध निज बौने बल पर ।

कृमियो का उत्पात विटप ज्यो वट का सहता
झेले है मैंने निष्ठुर स्पर्धा के दशन
जीवन मन से कुण्ठित सूने अस्तित्वो के ।
किन्तु नहीं मैं भूल सका, मैं महाकाल का
अमर पुत्र अवतरित हुआ हूँ सधिस्थल पर,
पार अनेको कर वन पवत मरुथल सागर
कण्टकमय, ख दकमय,—झझावात तरगित,
विनय मूक मैं चलता निजन शान्ति माग पर
क्रीडा निरत कलभ सा, लाघ शिखर युग के बहु ।

कैसे तुमसे कहूँ, आज मैं अधशती के
ऊध्व शिखर पर खडा मौन क्या सोच रहा हूँ ।
उद्वेलित करती मुझको शत भाव तरगें,
प्ररित करते रश्मि स्पश स्वप्नो के उर को ।

याद मुझे आती फिर - फिर उस महापुरुष की,
अभी - अभी जो रजत शुभ्र चेतना शिखर-सा
धरती पर विचरा था स्वग विभा से मण्डित,—
अपनी मगल स्मिति से दीपित करता भूपथ ।
दय दासता के युग - युग के बन्धन जिसने
भारत के काटे दुधर साम्राज्यवाद से
हँस हँस लोहा ले, अजेय अस्त्रो शस्त्रो की
हिंस्र शक्ति को किया पराजित सत्याग्रह से
सौम्य अहिंसा के सामूहिक मगल बल से ।

एकाकी, निज आत्मशक्ति से जिसने निभय
भौतिकता यान्त्रिकता के दुमद असुरो को
किया निरस्त, जगत को दे सन्देश सत्य का,
शान्ति अहिंसा का, श्रेयस्कर आत्मिक बल का ।

प्रादोलित जन युग दपण है मानव मन का,
शान्त उस कर सकत केवल उस युग नर के
सत्य अहिंसा के आदश, अमर, युग पूरुष !
सदाचार की रजत रश्मिया स शुभ मण्डित,
विनय त्याग नय शोभित, नार कम अनुप्राणित,
सूय शुभ्र व्यक्तित्व एक दिन आत्म पुरुष का
भू मानस म स्वत प्रतिष्ठित होगा निश्चय !
जीवन मन की क्षुधा तृपाम्रा की चीत्कारें,
अथ शक्तिया, सस्कृति धर्मों के सघषण
विश्व एक्य म, लोक साम्य म बंध जायेंग
युग मानव म सयोजित, व्यक्तित्ववान् हो !
धरती का विस्तार हुआ ही इस प्रकार है
कर सकते सहार नहो भू जीवन का जन !
प्रेम मनुज को करना होगा भ्रातृ मनुज स,
देशा को दशा स, तन्त्रा को तन्त्रो स,
ईश्वर का आवास जगत मन्दिर है जन तन,
रूपान्तर होगा ही अधोमुखी तृष्णा का
अमृत चेतना म, अन्तमुख ऊध्व गमन प्रिय !
गूज रहे हैं अभी दग, पुर पथ, गिरि सागर
उस युग मानव की महिमा के जय निनाद स,
गूज रही प्रतिध्वनियाँ कभी न मिटनेवाली !

(वाद्य सगीत जन गीत)

जय विराट युग मानव जय, जय !
स्वगदूत तुम उतरे भू पर
आत्म तज म विचरे निभय !

सात्विकता के रजत शुभ्र तन
साधन तप के स्वण शुभ्र मन,
नव युग जीवन के प्रतीक वन
विहँस तुम, उर के अरुणोदय !

रक्त पक इस मत्य धरा पर
प्रथम वार लाये तुम निजर,
रक्त हीन रण जन श्रेयस्कर
जिसस हो भू स्वग अभ्युदय !

(करुण वाद्य सगीत)

सन् इक्यावन

हा दुर्दैव, अतीत कथा -सी अधशती अब
हुई व्यतीत, बनी इतिहास ! किन्तु भू-मन का
उद्वेलन रुक सका नहीं ! उच्छवसित सिन्धु सा
पीट रहा मुख युग जीवन दारुण हाहा कर
मानव उर की वज्र दम्भ पापाण शिला पर !

उतर नही पा रही जनो मे नव्य चेतना
भू रचना के उवर स्वप्ना से उद्दीपित,
विजय नही पा सका मनुज निज भौतिक मद पर
राष्ट्र वग के, जाति वण के रिक्त गव पर।।
विश शती का महाज्ञान विज्ञान प्राप्त कर
महानाश के अध गत की ओर सभ्यता
आज बढ रही हृदय शू य हो, भ्रमित बुद्धि हो।
तर्कों वादा वर्गो के भेदा म खण्डित,
य त्रा स शोषित, जन त त्रो म आ दोलित,
क्षधा तृषा श्रम पीडित, तमस अविद्या मूर्छित,
रेंग रहा युग भग्न रीढ पर आहत अहि-सा
घूम-घूम फिर घोर वत्त मे महानाश के।।
बँटा विरोधी शिविरो मे है मानव जीवन,
विश्व शक्तिया का है हुआ विभाजन निमम,—
लोक सम वय, विश्व ऐक्य होगा ही निश्चय
उत्तराध कर रहा प्रवेश नया युग जग म।

(आशाप्रद वाद्य सगीत)

जिस युग न हं दिये माक्स-से भौतिक चि तक,
श्री अरवि द सदृश द्रष्टा भू स्वग विधाता,
लेनिन गाधी-से जन अधिनायक, जो निश्चय
भि न परिस्थिति, भि न प्रकृति मानव पदाथ पा,
निज क्षेत्रो के रहे विधायक, जन उ नायक,—
नव युग के पतझर वस त से, नव बीजो से
गभित, नव जीवन स मुकुलित,—महाप्राण मन।
जिस युग म वभव अपार सचित कोषा मे,
देश काल को किय ज्ञान विज्ञान हस्तगत,
वाहित करती विद्युत क्षण म निखिल विश्व मन
जिस युग म, वह आत्म पराजय से क्यो पीडित ?
क्यो उसम स तुलन नही आ सका अभी तक ?
क्या है इसका कारण ? क्यो अधिविश्व क्रान्ति है
छायी भू जीवन, युग मन म ? शोचनीय यह।

(स्वप्नवाहक वाद्य सगीत)

दख रहा मैं मन क्षितिज मे युग स्वर्णोदय
मानव भावी का, अभिनव क्रिरणा से दीपित,
विश शती का जनसुख मासल उत्तर यौवन
निखर रहा निज भौतिक आध्यात्मिक वैभव म।
धीरे - धीरे अथ व्यवस्था म धरणी के
युग वाछित स तुलन आ रहा, भौतिक सत्ता
मानवीय बन, नव चेतन आकार धर रही।

आंदोलित जन युग दर्पण है मानव मन का,
शांत उसे कर सकते केवल उस युग नर के
सत्य अहिंसा के आदर्श, अमर, युग पूरक!
सदाचार की रजत रश्मियों से शुभ मण्डित,
विनय त्याग नय शोभित, लोक कर्म अनुप्राणित,
सूर्य शुभ्र व्यक्तित्व एक दिन आत्म पुरुष का
भू मानस में स्वत प्रतिष्ठित होगा निश्चय!
जीवन मन की क्षुधा तृषाओं की चीत्कारें,
अर्थ शक्तियों, संस्कृति धर्मों के संघर्षण
विश्व ऐक्य में, लोक साम्य में बँध जायेंगे
युग मानव में संयोजित, व्यक्तित्ववान् हो!
धरती का विस्तार हुआ ही इस प्रकार है
कर सकते संहार नहीं भू जीवन का जन!
प्रेम मनुज को करना होगा भ्रातृ मनुज से,
देशों को देशों से, तन्त्रों को तन्त्रों से,
ईश्वर का आवास जगत मंदिर है जन तन,
रूपांतर होगा ही अधोमुखी तृष्णा का
अमृत चेतना में, अंतर्मुख ऊर्ध्व गमन प्रिय!
गूंज रहे हैं अभी देश, पुर पथ, गिरि सागर
उस युग मानव की महिमा के जय निनाद से,
गूंज रहीं प्रतिध्वनियां कभी न मिटनेवाली!

(वाद्य संगीत जन गीत)

जय विराट् युग मानव जय, जय!
स्वर्गदूत तुम उतरे भू पर
आत्म तेज में विचरे निर्भय!

सात्विकता के रजत शुभ्र तन
सावन तप के स्वर्ण शुभ्र मन,
नव युग जीवन के प्रतीक बन
विहँस तुम, उर के अरुणोदय!

रक्त पंक इस मर्त्य धरा पर
प्रथम वार लाये तुम निर्जर,
रक्त हीन रण जन श्रेयस्कर
जिससे हो भू स्वर्ग अभ्युदय!

(करुण वाद्य संगीत)

सन इक्यावन

हा दुर्दैव, अतीत कथा-सी अर्धशती अब
हुई व्यतीत, बनी इतिहास! किन्तु भू मन का
उद्वेलन रुक सका नहीं! उच्छ्वसित सिंधु सा
पीट रहा मुख युग जीवन दारुण हाहा कर
मानव उर की वज्र दम्भ पाषाण शिला पर!

उतर नही पा रही जनो म नव्य चेतना
भू रचना के उवर स्वप्नो से उद्दीपित,
विजय नही पा सका मनुज निज भौतिक मद पर
राष्ट्र वग के, जाति वण के रिक्त गव पर।।
विंश शती का महाज्ञान विज्ञान प्राप्त कर
महानाश के अ ध गत की ओर सभ्यता
आज बढ रही हृदय शू य हो, भ्रमित बुद्धि हो।
तर्कों वादो वर्गों के भेदा मे खण्डित,
य त्रा से शोषित, जन त त्रो मे आ दोलित,
क्षधा तृषा श्रम पीडित, तमस अविद्या मूर्छित,
रेंग रहा युग भग्न रीढ पर आहत अहि सा
घूम-घूम फिर घोर वृत्त मे महानाश के।।
बँटा विरोधी शिविरो मे है मानव जीवन,
विश्व शक्तिया का है हुआ विभाजन निमम,—
लोक सम वय, विश्व ऐक्य होगा ही निश्चय
उत्तराध कर रहा प्रवेश नया युग जग म।

(आ ाप्रद वाद्य सगीत)

जिस युग ने है दिये मार्क्स-से भौतिक चिन्तक
श्री अरवि द सदृश द्रष्टा भू स्वग विधाता,
लेनिन गाधी-से जन अधिनायक, जो निश्चय
भि न परिस्थिति, भि न प्रकृति मानव पदाथ पा,
निज क्षत्रो के रहे विधायक, जन उन्नायक,—
नव युग के पतझर वसन्त से, नव बीजो स
गर्भित, नव जीवन से मुकुलित,—महाप्राण मन।
जिस युग मे वभव अपार सचित कोषो म,
देश काल को किय ज्ञान विज्ञान हस्तगत,
वाहित करती विद्युत क्षण म निखिल विश्व मन
जिस युग म, वह आत्म पराजय से क्यो पीडित ?
क्यो उसम स तुलन नही आ सका अभी तक ?
क्या है इसका कारण ? क्यो अधिविश्व क्रान्ति है
छायी भू जीवन, युग मन म ? शोचनीय यह।

(स्वप्नवाहक वाद्य सगीत)

देख रहा मैं मन क्षितिज मे युग स्वर्णोदय
मानव भावी का, अभिनव किरणो स दीपित,
विंश शता का जनसुख मासल उत्तर यौवन
निखर रहा निज भौतिक आध्यात्मिक वैभव म।
धीरे - धीरे अथ व्यवस्था मे धरणी के
युग वाछित स तुलन आ रहा, भौतिक सत्ता
मानवीय वन, नव चेतन आकार धर रही।

पूँजीवादी लोक साम्यवादी देशों के
वातायन खुल रहे भाव विनिमय के व्यापक,
हृदय द्वार खुल रहे, विचारों से नव मुकुलित,
भू जीवन के आवागमन हेतु दिग् विस्तृत!

नव युग के आर्थिक नैतिक विधान के युगपत्
नव निर्मित हो जाने पर, नव मानवता की
स्वर्ण चेतना ध्वजा उड़ रही गिरि शिखरों पर,
सागर के उल्लसित वक्ष, प्रहसित अम्बर में!

(विजय वाद्य संगीत)

दैन्य दुःख मिट गये, भर गये धरणी के व्रण,
आनन की धुल गयी कलुष कालिमा युगों की,
मानस वैभव से मुकुलित हो उठे दिगन्तर,
संस्कृति के सोपानों पर आरोहण करता
जनगण का मन, देवों का ऐश्वर्य बँटा!—
समुल्लसित गाते नर-नारी भू जीवन के
विश्व प्रीति के गीत, भाव स्वप्नों से झंकृत!

(वाद्य संगीत तथा जन गीत)

निखर रहा मनुज नवल,
निखर रहा मनस् नवल!
जीवन के वारि चपल,
विहँस उठा हृदय कमल!
खुले रुद्ध लोक द्वार,
मुक्त वचन जन विचार,
बरस रही आर पार
ज्योति प्रीति धार तरल!
श्री हत गत सौध धाम,
कुसुमित जन वास ग्राम,
मानवता पूर्ण काम
युक्त धरणि हुई सफल!
नवल चेतना प्रकाश,
जीवन मन का विकास,
मानवीय भू निवास!
बरस रहा जन मंगल!

(तानपूरे के स्वर)

सन् इक्यावन

उतर रही अधिमन के नभ से नव्य चेतना
स्वर्ण शुभ्र ऊषा सी, जन मानस धरणी पर,
चीर रहे हैं रश्मि तीर शत ज्वाल स्पर्श से
भू जीवन के जड़ तम को, स्वर्णिम चेतन कर!

उतर रह स्वदूतो-से स्मित पख खोलकर
नव आशा उल्लास, ज्योति सौन्दय, प्रीति सुख।
वरस रही है रजत मौन स्मित शान्ति चतुर्दिक,
जन मगल, श्रद्धा विश्वास,—शुभ्र पावनता,
मानव भू पर,—देवा के आशीर्वाद - सी।
आज प्रसन्न हुआ घटवासी मानव ईश्वर
मानव कर्मो स, जग जीवन व्यापारो से।

(प्रसन्न गभीर वाद्य सगीत)

यह परिवतनशील जगत है लीला का स्थल
दिव्य चेतना का, जो अन्तरतम म निवसित,
मन, जीवन, जड भूत अश हैं उसके निश्चय,—
वह सबम है व्याप्त और सबसे है ऊपर!—
वाह्य उपकरण उपादान ये मात्र प्रकृति के
चिर विकास क्रम मे है, सभी परस्पर आश्रित,
एक दूसरे के पूरक, पोपक, उद्धारक।

जड चेतन की इस विराट क्रीडा के स्वामी
मानव के घटवासी भी है रे नि सशय,
प्रस्तुत होता लोक पात्र जव धारण के हित
अन्तस्तल से उठता ज्वार नवल वैभव का,
चेतन कर जो मन के जीवन के सक्रिय स्तर
मज्जित करता भूत सष्टि को नव कल्पित कर।
भूता की अन्तर पुकार से सहज विद्रवित
उन्ह उठाता आत्मिक मन के सोपानो पर
अभिनव जीवन सम्बन्धो मन के माना म
उन्हे पुन परिवर्तित, परिवर्धित, विकसित कर।
धन्य अमेय रहस्य सजन का! विश शती भी
महाकाल के अतन्न वक्ष स्पन्दन से प्रेरित
उठ उत्ताल क्षितिज चुम्बी भूधर तरग सी,
प्लावित करती जीण धरित्री के विपण्ण तट
जन युग की अदभुत विराट जीवन शोभा म—
सिन्धु-मग्न कर विगत युगो के मान चित्र को।

(युग परिवतन सगीत)

मगलमय है जीवन की केन्द्रीय चेतना,
जन मगल का धाम वन यह मानव धरणी।
सजनशील हो मानव मन,—स्रष्टा निश्चय ही
निर्माता स है महान्, जो सूक्ष्म द्रव्य स
वुनता नव सौन्दय प्रीति आनन्द क वसन
मानव आत्मा क हित,—शिल्पी स्वग का अमर।
सयोजित हो मानव क आदश कम नित,
सयोजित वाणी विचार आचरण जना क,

अत संयोजित व्यक्तित्व बने मानव का,
श्री शोभा का अमर धाम हो मनुज लोक यह !

(मंगल संगीत समवेत गान)

मंगल, जन मंगल हो !
मंगल मय का निवास
मानव हृत शतदल हो !

प्रीति ग्रथित हो जन-जन,
ज्योति द्रवित जनगण मन,
वभव नत जन जीवन,
शोभा स्मित भूतल हो !

नारी नर हो समान
श्रम निरत, लोक प्राण,
जग को दें आत्म दान
जन हित जनश्रम फल हो !

शांत हो समर प्रमाद,
शांत रिक्त तर्कवाद,
जय जीवन हो निनाद,
मुखरित दिङ मण्डल हो !

(३१ दिसम्बर, १९५०)

शुभ्र पुरुष

'शुभ्र पुरुष' महात्माजी के तपपूत व्यक्तित्व का शुभ्र प्रतीक है। महात्माजी भारतीय चेतना के आधुनिकतम रजत संस्करण हैं। प्रस्तुत रूपक उनकी जन्मतिथि के अवसर पर लिखा गया था। यह जनगण मन अधिनायक गांधीजी के राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक व्यक्तित्व के प्रति युग की विनम्र श्रद्धांजलि है।

स्त्री-पुरुष स्वर
जनगण

(उत्सव वाद्य संगीत)

पुरुष स्वर

राजहंस भरते उडान शुचि शुभ्र चतुर्दिक
श्वेत कमल की पखड़ियाँ बरसा जन पथ पर,
स्वर्णिम पखों की शत उज्ज्वल आभाओं से
नव स्वप्नों की दिव्य सृष्टि कर भू मानस में।
विचरण करतीं व्योम कक्ष में सुर बालाएँ
ज्योत्स्ना का रुपहला रेशमी अंचल फहरा,
हँसता शारद चन्द्र घनों के अंतराल से
शुभ्र चेतना ज्वार उठा जीवन सागर में।

रजत घण्टियाँ बजती अम्बर में कलध्वनि भर
भरते अश्रुत स्वर तारों की वीणा से।
हिम शिखरों पर शशि किरणों की छायाएँ कँप
फहराती शत रंग ग्रथित बन्दनवारों - सी।
आज चिर स्मरणीय दिवस है शुभ्र पुरुष की
वर्षगाँठ का धरती पर अवतरित हुआ जो
नव युग की आत्मा बनकर जन मंगल के हित।
सदाचार के शुभ्र चरण धर जिसने भू को
फिर चिर पावन किया अमर पद चिह्नों से निज।
जन्मोत्सव है आज मनाते हर्षित सुर नर
विश्व प्रकृति के प्रांगण में स्मित पुष्प वृष्टि कर।
जय निनाद से मुखरित है जन भारत का नभ,
फहराता है मुक्त तिरंगा रंग तरंगित,—
मंगल गायन वादन से गुंजित है भू तल।

(मंगल वाद्य ध्वनि समवेत गान)

जय जय हे, युग मानव, जय हे।
स्वर्ग शिखर से विचर भू पर
आत्मतजमय तुम चिन्मय हे।

कोटि जनों के कण्ठ गान बन
कोटि मनों के मर्म प्राण बन
जन जीवन प्रांगण में लाये
तुम नव अरुणोदय हे।

सत्य खोजने आये जग मे
स्वर्ग लुटाने जन के मग मे,
देवो का बल लाये सँग मे
जय चिर मगलमय हे!
तप से पावन स्वर्ण शुभ्र तन
सत्य शुभ्र सत्कर्म वचन मन,
स्वर्ग धरा का करने आये
शुभ्र पुरुष, परिणय हे!

(हर्ष वादन)

स्त्री स्वर

पराधीन थी सदियो से जब स्वर्ण धरा यह
दैन्य दासता के शृखल जकडे थे तन को,
घोर अविद्या के तम से पीडित थे जनगण,
रूढि रीति के प्रेत युद्ध करते थे मन मे!

घेरे थे विश्वास अध आकाश बेलि-से,
मुण्ड मुण्ड मे थी विभक्त लघु लोक चेतना
स्वार्थों मे रत वर्ग क्षुधित शोषित थी जनता,
पद लुण्ठित जीवन गौरव, मृत मानव आत्मा!
छायी थी जब विकट निराशा की निष्क्रियता,
वीर्यहीन थी भारत भू भूपति विलास रत,—
प्रकट हुए थे लोक पुरुष तुम आत्म तेजमय
अधकार को चीर हुआ हो नव स्वर्णोदय!

देख धरा को तमोग्रस्त, तुम करुणा विगलित,
जीवन रण मे बन दिव्य सारथि फिर जन के,
महा जागरण मन्त्र उच्चरित कर श्री मुख से
युग युग से निद्रित, जीवन्मृत महाजाति को
जागृत तुमने किया पुन निज रहस शक्ति से!
स्वाभिमान भर जन मे क्षण मे किया सगठित
नव्य राष्ट्र मे उन्हे, स्वर्गवत मातृभूमि के
प्रीति पाश मे बाँध, विरत कर लघु स्वार्थों से!
महापुरुष, निज अभय दान से नव्य प्राण भर
ककालो को दिया मनुज का गौरव तुमने,
युग-युग के घन अधकार से बाहर लाकर
मृत्युभीत जनगण को दिखलाया प्रकाश नव!
और एक दिन प्राणोद्वेलित जन समुद्र को
मुक्त तिरगे के नीचे समवेत कर पुन
उन्हे अहिंसात्मक अद्भुत रण कौशल सिखला
छिन्न कर दिये तुमने युग के पाश पुरातन!
एक रात मे मौन गगन हो उठा निनादित
अगणित कण्ठ रटित वन्देमातरम् मन्त्र मे!

धन्य सिद्ध जन नायक, तुम कर गये पराजित
चिर अजेय साम्राज्यवाद की लौह शक्ति को
क्षण में, सौम्य अहिंसा के मंगलमय बल से,—
प्रेमामृत से गरल घृणा का अपहृत करके।
सिन्धु तरंगों से, गर्जन भर भारत के जन
आज तुम्हारा गौरव गाते हृष उच्छ्वसित।

(स्तवन वाद्य समवेत गान)

जय जन भारत भाग्य विधाता,
लोक मुक्ति वर दाता।
प्रजातन्त्र भारत के जनगण
गाते गौरव गाथा।
जय स्वतन्त्रता के रण नायक,
महाजाति के नव उन्नायक,
भू गौरव, जन राष्ट्र विधायक
जय युग मन के त्राता।
वीर, अहिंसा रत, व्रतधारी,
धीर, सत्य के असि पथ चारी,
दैन्य दासता के भय हारी
जग जीवन तम त्राता।
श्रद्धांजलि देते नर - नारी
जय - जय राष्ट्र पिता बलिहारी,
तप पूत मन, जन हितकारी,
नव जीवन निर्माता।

(अभिवादन संगीत)

पुरुष स्वर

धन्य हुई यह मात धरा युग लक्ष्मी फिर से
आज इसे अभिषेकित करती जनगण मन के
सिंहासन पर अभिनन्दित करती नव युग की
ऊषा, इसके गौरव दीपित रजत भाल पर
स्वर्ण शुभ्र किरणों का जगमग ज्योति मुकुट धर।
वृद्ध देश, हिम श्वेत श्मश्रु स्मित, शोभित जो नित
पुरुष पुरातन-सा विकास प्रिय इस पृथ्वी पर,
संजीवन पा आज जनों का यौवन उसके
मूर्तिमान हो रहा पुन नव लोक तन्त्र में।
जय निनाद करता जन सागर उमड चतुर्दिक
हृष तरंगित अपने शत - शत शीश उठाये,
फहराता विजयी तिरंग ध्वज इन्द्रधनुष - सा
दिग् दिगन्त में रंग छटाएँ बरसा अगणित,—
पुष्प वृष्टि करते हों ज्यों नभ से फिर सुरगण।
महाभूमि यह, जिसके श्री विराट् प्रांगण में
प्रथम सभ्यता विहँसी भू पर भू प्रकाश सी,

जिसकी निभृत गुहाओ मे पहिले मनुष्य को
आत्मोन्मेष हुआ युग द्रष्टा ऋषिगण विचरे
स्वग शिखा ले जहाँ सत्य की अमर खोज मे
जिसके ज्योतिमय मानस पलने मे पलकर
धम ज्ञान सस्कृतियाँ शतश फैली जग मे,
जिसके दशन के स्फटिकोज्ज्वल शुभ्र सौध मे
स्वत अवतरित हो मगलमय पुरुष परात्पर
वास कर रह मूत सत्य से जन - मन नभ म
राम कृष्ण गौतम लोट जिसकी शुचि रज पर,—
अभिवादन करते जनगण उस दिव्य भूमि का
आज पुन दिक प्रतिध्वनित उल्लसित स्वरो मे—
वन्दे मातरम्
सुजला सुफला मलयज शीतलाम् !

तपोभूमि यह, राजतन्त्र के युग म जिसने
राम राज्य का पूर्णादश दिया जगती को,
आज असख्य विमुग्ध लोक नयनो से निर्मित
नव युग तोरण से प्रवेश कर रही पुन वह
जन मन दीपित धरा चेतना के प्रागण मे
लोक साम्य के द्यौ चुम्बी प्रासाद मे महत्,
सवमत म फिर अपने को अनुभव करते !

स्वग खण्ड यह, हाय, शम्भु सा समाधिस्थ हो
विचरण करता रहा कहाँ तब मध्य युगो मे
आत्मा के सोपानो मे खो ऊध्व ऊध्वतर
आत्मोल्लास प्रमत्त, जगत के प्रति विरक्त हो ?
जीवन मन के सकल कम व्यापार त्यागकर
यह नि स्पृह निश्चेष्ट, शून्य, नि सज्ञ बन गया
स्थाणु सदृशवयो ? बाह्य अचेतन स्थिति मे अपनी
दैन्य दासता दुख अविद्या के बन्धन से
वेष्टित, सहता रहा आत्मपीडन क्या केवल
जन भू का विष धारण करने नीलकण्ठ मे ?

(कालयापन-सूचक सगीत)

स्त्री स्वर

जाग रहा फिर राष्ट्रपिता के मन का भारत,
जाग रही फिर आत्मभूमि, अन्त प्रकाश से
अपने संग सोयी धरती को चेतन करने !
जन हिताय निर्माण कर रही वह नव जीवन
लोक तन्त्र की सुदृढ़ नीव रख अन्तरैक्य पर,
स्वग ज्योति चुम्बी धर शिर कलश सत्य का !

विचरण करे प्रजा युग अभिनव जन भारत म
दूर-दूर तक शिक्षा सस्कृति का प्रकाश भर,

सुख वैभव की स्वर्णिम किरणा से कर मण्डित
झाड फूंस के भग्न घरौंदा को, युग-युग स
दैन्य अविद्या के तम से जो त्रस्त ग्रस्त हैं !
नगे भूखे रुग्ण अस्थि पजर गत युग के
जहाँ रेंगता भार ढो रहे भू जीवन का
वग सभ्यता के उस निचल नरक मे, जहाँ
अन्न वस्त्र का घोर अभाव रहा अनादि से,
और सभ्यता सस्कृति की स्वग-स्मित किरणे
पैठ न सकी जहाँ, जीवन आह्लाद कभी भी
पहुँच नही पाया, जन-मन का नीरव रोदन
मात्र हृदय सगीत रहा उच्छ्वसित, अतद्रित !

आज तुम्हारा नव भारत निज रक्त दान से
पुण्य स्नात कर धरती क जन का विषण्ण मुख
सवप्रथम सौदय प्रसन्न कर मानव को !
उसकी चिर वसुधव कुटुम्बक मात क्रोड म
एक अहिंसक मानवता ले जन्म आत्म स्मित,
नयी चेतना की प्रतिनिधि हो जो भू के हित !
विविध मतो, वर्गों, राष्ट्रो मे बिखरे जन को
मनुष्यत्व मे बाध नवल भू स्वग रचे वह !
जावन का ऐश्वय प्रेम आनन्द उतरकर
अन्तर्मानस से, महिमा मूर्तित हो जिसमे
युद्ध दग्ध जन भू पर व्यापक लोक तन्त्र का
नव आदश करे स्थापित वह सब समन्वित,
अभिनव मानव लोक सृजन कर नर देवो हित !
युग-युग तक गावे भारत जन एक कण्ठ हो
जनगण मन अधिनायक जय ह
भारत भाग्य विधाता !

(स्तवन सगीत भारत वन्दना)

जयति जयति ज्योति भूमि,
जय भारत ज्योति देश !

ज्योति शिखर हिमवत मन,
ज्योति द्रवित सुरसरि तन,
ज्योतित कर धरणि सकल
हरे विश्व तमस क्लेश !

उठो, उठो, नवल तरु
तिमिर चीर जगो अरुण
भेद भीति तजो, बँधो
लोक प्रीति मे अशेष !

ज्योति पुरुष खडे द्वार
तुम्हे फिर रहे पुकार,

स्वर्ग हव्य करो दान
उत्सुक जग के प्रदेश !

(तानपूरे के स्वर)

पुरुष स्वर

नग्न नृत्य करती थी हिंसा जब पृथ्वी पर
भौतिकता से जर्जर था जन भू का जीवन,
महानाश का पावक बरसाता था अम्बर,
तुमुल रणध्वनि से कँपता था दीर्ण दिगन्तर !

राष्ट्रों के कटु स्वार्थों से, स्पर्धा लिप्सा से
दुर्वह था जब जन धरणी में जीवन यापन,
घोर अनैतिकता छायी थी मनोजगत् में,
बिखर रहे थे शिखर सनातन आदर्शों के,—

सदाचार की रजत शिखा ले, आये थे तुम
युग प्रतीक बन भारतीय चेतना के पुन,
सत्य साम्य में मार्ग प्रदर्शन करने जन का,
अमृत स्पर्श से आहत जगती के व्रण भरने,—
मधुर अहिंसा का सन्देश सुनाने भू को !
धन्य मर्त्य के अमर पान्थ, तुम निखिल धरा को
बाँध गये नव मनुष्यत्व के स्वर्णपाश में !

(आवाहन संगीत समवेत गान)

शुभ्र चरण धरो पान्थ,
शुभ्र चरण धरो !
अंकित कर ज्योति चिह्न
जीवन तम हरो !

विश्व वारि हैं अशान्त
जन जीवन ध्येय भ्रान्त,
कर्णधार बनो, धीर,
क्षुब्ध नीर तरो !

आर पार अन्धकार,
रुद्ध आज हृदय द्वार,
व्यथा भार हरो देव,
भेद अमिट भरो !

मंगलमय तुम उदार,
सुनो आत जन पुकार,
पावक की अंजलि भर
वितरण हवि करो !

(तानपूरे के स्वर)

स्त्री स्वर

धन्य हुई जन धरणी यह, अवतरित हुए तुम
मत्यलोक मे फिर देवोपम गरिमा लेकर,
विचरे मेरु शिखर से नव किरणो से भूषित
शुभ्र काय मन, नव्य चेतना की ज्वाला को
जन मन मे दीपित करने, करुणा प्रेरित हो !

बाँध गये नव सस्कृति म तुम विश्व जनो को
मनुष्यता का मुख नव महिमा से मण्डित कर,
नर चरित्र का रूपान्तर कर, जन गण मन को
श्रद्धा से पावन, धरणी को स्वग स्नात कर !

किन शब्दा मे श्रद्धाजलि दें आज हृदय की,
देव, महामानव, हे राष्ट्रपिता हम तुमको !
वाष्पाकुल है नयन, हप श्रद्धा गद्गद स्वर,
प्रीति प्रणत शत शत प्रणाम हो स्वीकृत जन के !

(स्तव सगीत समवेत गान)

जय नव मानव, जय भव मानव !
स्वग दूत नव मानवता के,
विचरो ज्योति शिखा ले अभिनव !

प्रीति पाश म बाँधो जन - मन,
श्रद्धा पावन हो जन जीवन,
बनो शुभ्र विश्वास सेतु तुम,
शान्त सकल हो भव के विप्लव !

स्वग हृदय हो जन मे स्पदित
स्वण चेतना से भू मण्डित,
अमृत स्पश ने हरो मृत्यु तम,
जन मगल हो, जीवन उत्सव !

शुभ्र सत्य का हो जन-मन पथ,
शुभ्र अहिंसा का जीवन व्रत,
विश्व ग्लानि मे नव प्रकाश बन
निखरो, शुभ्र पुरुष, युग सम्भव !

(२ अक्तूबर, १९५०)

विद्युत् वसना

विद्युत वसना स्वाधीनता की चेतना का रूपक है, जो स्वाधीनता दिवस के अवसर पर लिखा गया था। स्वाधीनता ध्येय नही, साधन मात्र है ध्येय है अन्तरनिर्भरता तथा एकता। इस युग मे जन स्वतन्त्रता की उपयोगिता लोक एकता तथा विश्व मानवता के निर्माण ही मे चरितार्थ हो सकती है यही इस रूपक का सन्देश है।

स्त्री-पुरुष स्वर
विद्युत् वसना
जनगण

(मेघ घोष के साथ तुमुल वाद्य ध्वनि)

पुरुष स्वर

यह विद्युत वसना का रूपक है सांकेतिक,
नव युग का सन्देश भरा जिसमे ज्योतिमय,
स्वतन्त्रता की अमृत चेतना, जो मेघो के
रन्ध्रा से है फूट रही जन मनोगगन में,
आज उतरने को वह आतुर, जन धरणी के
जीवन के प्रागण मे, विद्युत निर्झरिणी-सी,—
अधकार से भरे गह्वरा को पृथ्वी के
नव प्रकाश रेखाओ से आदोलित करने।

आज टूटने को है युग की दुर्धर ज्वाला
जन - मन के शृगो पर पावक के प्रवाह-सी,
जाग रहे भू-रज म सोये अग्नि बीज फिर
अभिनव इच्छाओ के ज्योति प्ररोहा मे हँस।
उद्वेलित धरणी का उर, युग की आभा का
अभिवादन करने को, जय नादा से मुखरित।

(जय निनाद)

अपनी शुभ्र छटा के अचल मे लपेटकर
अमर सँदेशा लायी है स्वाधीन चेतना
ज्वलित स्वर्ण शोभा से मण्डित, जनगण के हित,—
सावधान हो सुनें मर्त्य भू के वासी जन।

(उद्बोधन वाद्य सगीत के साथ दूर से आते हुए करुण समवेत गीत के स्वर)

गीत

घोर तमिस्रा छायी,
कौन सँदेशा लायी ?

घुमड घटाएँ घिरती प्रतिक्षण
गगन क्रुद्ध हो भरता गर्जन,
अन्तरिक्ष के उर म विरती
रक्त ज्वाल गृध्रगायीं।

झिल्ली क्या बज उठती झन-झन
जगा गुहाग्रा म युग रोदन,
गूढ़ घाटियो म जीवन की
अँधियाली गहरायी !

बिजली रह-रह करती नतन
ज्योति अध कर जन के लोचन,
फिरती उर म भावशा की
उठ काली परछाईं !

बदल रहे जन, बदल रहा मन,
बदल रहा युग औ' युग जीवन,
प्रलय सृजन की उमद वेला
अब अकूल लहराई !

(तानपूरे के प्रशान्त स्वर)

स्त्री स्वर

हृप रुदन करता धरती का कातर अन्तर,
उमड रहे हैं महा वलाहक सजन छटा स्मित,
ककालो की पग ध्वनि स कँप उठता भू तल,
जीर्ण अस्थि पजर बढ़ता है विजय ध्वजा ले !

महानाश के खँडहर पर जन मन उमादिनि
नाच रही है विद्युत वसना लोक चेतना
अट्टहास भर, गत स्फुलिंग बरसा अम्बर से,
नव जीवन के अग्नि प्ररोहो मे रोमाचित !
गाती है उमत्त गीत वह मद्र स्तनित भर !

(मेघ गजन तथा मद्र गभीर वाद्य ध्वनि)

विद्युत वसना

जन आकाक्षा के शिखरा पर
पग धर मैं युग ताण्डव करती,
चिर अधकार से ज्योति खीच
युग अधकार का भय हरती !

मैं वाष्प धूम के अणुओ को
निज स्पश ज्वाल से चटकाती
शत बाधा बधन के शृखल
उमत्त हृप से तडकाती !

मैं प्रलय ज्वार-सी उठती हूँ
धरती स्वतत्रता म न्हाती,
मैं नाश सजन के पखा म
आँधी-सी उड, आती-जाती !

(झंझासूचक ध्वनि प्रभाव)

जन स्वर

तुम आओ, शत बलिदान यहाँ
अभिवादन के हित तत्पर हैं
तुम आओ, शत शत प्राण यहाँ
अभिलाषाओं से जर्जर हैं!

तुम उतरो, नव आदर्शों के
शिखरों पर किरणें बरसाओ,
उतरो उर्वर तलहटियों में
फिर ज्योति बीज नव बिखराओ!

आओ हे तुम जन संस्कृति के
पथ को दिग् विस्तृत कर जाओ,
युग-युग से पंक भरी भू को
सौन्दर्य ज्वार में नहलाओ!

विद्युत वसना

मदिरा की ज्वाला सी मादक
मैं जाग्रत् विस्मृति लाती हूँ,
महलों को खँडहर, खँडहर को
फिर उठते महल बनाती हूँ!

पतझर के वन का मांसल कर
नव रूप रंग भर जाती हूँ
मूकों को कर वाचाल,
पंगुओं को चढ़ना सिखलाती हूँ!

जन स्वर

तुम आओ, मन के धनी यहाँ
तन के भूखे करते स्वागत
तुम देखो, युग-युग से सोये
रज के सपने होते जाग्रत्!

देखो हे तन-मन के शापित
अब तोड़ रहे दुख के बंधन,
नव मानवता में जाग रहे
मिट्टी के पुतले नव चेतन!

(वाद्य स्वर परिवर्तन)

पुरुष स्वर

अंधकार बढ़ता जाता है युग प्रभात है
होने को निश्चय! सहसा मर्मर हरहर् ध्वनि
फूट पड़ी है नग्न डालियों में जन वन की!
मलय पवन तूफान बन रहा! सर् मर चर मर्

टूट रहे हैं जीण खोखले वृक्ष ठूठ अब
भूमिसात हो! नाच रहे झर-झर कर पत्ते
शुष्क पीत मृत, घूम घूम शत आवर्तों मे!
धूलि कणो के भँवर उठ रहे, लोट-लोट कर
धूसर भुजगो-से झझा कम्पित धरती पर!

(ध्वनि प्रभाव)

अ धड आया, अ धड आया, घोर बवण्डर!
कोलाहल से बधिर हो रहे विश्व के श्रवण!
भूमि कम्प यह, हिल हिल उठती भू की जडता,
काप रहे पवत, टकराते शृग अग्नि मुख!
स्फीत तरगा पर चढ रही तरगें उन्मद,
फेनो के क्षण अट्टहास्य म उबल रहा जल!
आधि व्याधि कटु द य दु ख का फटता कदम,
टूट कगार रहे, छितराते वालू के कण!

धूल धु ध! उड रह युगा के द्वन्द्व पराजय,
हानि लाभ, शत जन्म मरण! छा गया चतुर्दिक
मिट्टी का बादल! धरती हो नयी वन रही
नाच-नाच नव युग परिवतन के इगित पर!
निखर रही है नयी चोटिया, नयी तलहटियाँ
दिग् विस्तत, जीवन किटाणुओ से नव उवर!

(युग परिवतन सूचक घोर तुमुल सगीत दूर स आते हुए समवेत स्वर)

दिग हसने, अयि विद्युत वसने!
अटटहास से चकित दिगतर,
शत प्रलयकर दशन!
विद्युत वसन!

अग्नि वृष्टि करता युग अम्बर,
रक्त तरगित जन मन सागर,
नाच रही तुम निमम ताण्डव
जन मद झकृत रसने!
विद्युत् वसने!

स्वार्थों मे छिड रहा तुमुल रण
आज खुल रह युग-युग के व्रण,
उमड उठा भू का अवचेतन
अयि जीवन तम अशने!
विद्युत् वसने!

(तानपूरे के स्वर)

विद्युत वसना

प्राणा के नीरद स आवत
जगती का अम्बर दिशा हीन,

मैं मुक्त चेतना हूँ उसकी
सघर्षों से दीपित नवीन !
वह सतरँग शोभा मे हँसता
शत आकाक्षाओ से मथित,
नव जीवन की हरियाली म
भरता रहता करुणा विगलित !

मैं उसकी आभा की अप्सरि
युग शिखरो पर नत्तन करती,
बजती चल पावक की पायल
जन-मन मे रण गजन भरती !

मैं अग्नि बीज बोती भास्वर
उपजाती लपटो की खेती
मैं महा प्रलय के पखो की
छाया मे सजन को सेती !

(मेघ गजन, झझा का शब्द और कोलाहल)

स्त्री स्वर

हहर रही है जन स्वतत्रता की खर झझा,
बीज बो रही जो पतझर मे नव वसन्त के
क्या है इसका ध्येय ? गरजती हुई घटा यह
सतरगी ले विजय ध्वजा किस मनोल्लास की
उमड-घुमड घिर रही जना के मनोगगन मे ?
कौन महत् उद्देश्य, कौन प्रेरणा हृदय की,
जीवन की कल्पना कौन, अगणित जनगण को
एक प्राण कर चला रही है आज अतद्रित ?
बढते अडिग चरण असख्य, निनय अमोघ, दृढ,
पदाघात से कम्पित कर धरणी का प्रागण,—
कँप कँप उठती युग युग की शका, कायरता,
हिल-हिल पडते मनोलोक, गत आदर्शों के
शिखर बिखरते, धँसती भू मे रूढि रीतियाँ
शत कृमि कीटो से जजर, स्वार्थों से स्थापित ?

(उत्तेजनाद्योतक ध्वनि प्रभाव)

दुर्निवार कामना ! कौन सी महाशक्ति यह
जन समुद्र को है ढकेलती युग तारण से
नव प्रभात के सद्य प्रज्वलित नव प्रदेश मे ?—
जीवन का सौन्दय, धरा का स्वर्णिम वैभव
जहाँ हँस रहा दिग् दिगन्त मे जन-जन के हित !
कौन दिशा है वह ? मजिल है कौन वह नयी ?
क्या आशय है लोक जागरण, लोक मुक्ति का ?
गाओ युग की वीणे, पावक के तारो से
नव ज्योतिमय, शान्त, मधुर, स्वर सगति बरसा!

(मंगलवादन आकाशवाणी)

इस युग की स्वाधीन चेतना अभय बढ रही
लोक एकता, विश्व एकता के मंदिर को!
साधन केवल जन स्वतन्त्रता,—मनुज एकता
लोक साम्य औ' विश्व प्रेम ही प्राप्य ध्येय है!
जनता का बल युग सम्बल है! मनुष्यत्व ही
जन बल की महिमा, जन गौरव का किरीट है!
जन स्वतन्त्रता नही,—लौह संगठित जनो की
अन्तर् निर्भरता ही युग का परम लक्ष्य है!
बोलो जनता की जय, नव मानवता की जय!

(हर्ष वाद्य ध्वनि समवेत गीत)

बरसो हे जन मन के बादल!
नव जीवन की हरियाली मे
हरसो हे नव स्वर्णिम उज्ज्वल!

उमडो, श्यामल दृग हो अम्बर
घुमडो, विद्युत प्रभ हो अंतर,
गरजो हे, जय हर्षध्वनि भर
नव प्ररोह पुलकित हो भूतल!

सतरँग विजय ध्वजा धर छहरो
भू को बाहो मे भर घहरो,
श्री शोभा के शस्य हास्य से
भरसे जन भू म जन मंगल!

(तानपूरे के स्वर)

पुरुष स्वर

मत्त लास्य कर रही गगन मे विद्युत हासिनि
मत्त हास्य भर रही हृदय म अन्तर्वासिनि,
उतर रही है ज्योति जाह्नवी नव्य चेतना
उभर रहा धरती का मन ग्रावत शिखर बन,—

स्वागत देने नव्य प्रभा को,
धारण करने दिव्य विभा को!

(अभिवादन वाद्य संगीत जन गीत)

ज्योति शिखावाही (जन)
प्रीति शिखावाही!

बादल दल गये बिखर
नवल क्षितिज रहा निखर,
विहग उठा हृदय शिखर
ऊषा मुसकायी!

ज्वाला के बढते पग
हँसता जन जीवन मग,

जग का प्रांगण जगमग
देता दिखलायी !

अंधकार रहा भाग, रहा भाग
ज्योतिमय उठे जाग, उठे जाग,
मर्त्योर्माऽमृत गमय
जन चिर अनुयायी !

(१५ अगस्त, १९५०)

शरद चेतना

शरद चेतना प्रकृति सौन्दय का कल्पना प्रधान रूपक है। इसमे धरती की ऋतुएँ, हेमन्त, शिशिर, वसन्त आदि, आकाश-वासिनी शरद ऋतु का अभिवादन करती हैं, जो पृथ्वी पर उतरकर चारो ओर श्री सुख शान्ति का सचार करती है। फूल, मुकुल आदि धरती के चराचर आनन्द उत्सव मनाते हैं।

वाचक वाचिका
वर्षा, हेमन्त
ग्रीष्म, वसंत, शिशिर
प्रकृति, फूल

(वाद्य संगीत)

[आकाश गीत]

शरद चेतना!
प्रीति द्रवित अमृत स्रवित
शुचि हिम हसना!

चन्द्र वदन, कुन्द दशन,
उडु स्मित सर उर चेतन,
स्वप्न पलक पद्म नयन,
निःस्वर चरणा!

सौम्य स्निग्ध वयस कान्ति,
मूर्तिमती खड़ी शांति,
मिटी विश्व जनित क्लान्ति,
भू तम अशना!

स्वर्ग स्नात भू रज तन,
कौश शुभ्र कास वसन,
निखर उठा उर यौवन,
अंतवचना!

धुल निखिल रूप रंग,
धुने मधुर प्राण अंग,
निर्मल जीवन तरंग,
कल्मष शमना!

गंध अनिल रजत श्वास,
तृण तरु पर मुक्त हास,
लहरों पर ज्योति लास,
सारस रसना!

वाचक

अब वर्षा का व्योम, झरा रिमझिम झड़ियों में,
कोमल हरियाली में हँस, बिछ गया धरा पर,
जो गेहूँ के नवल प्ररोहों में रोमांचित
कँप कँप उठती भू छायातप की लहरों में!

रंग-रंग के फूलों की हँसमुख उड़ती चितवन
इंद्रधनुष छायाएँ बरसाती दिशि दिशि में,
धरती की सोंधी सुगंध से जिनकी सौरभ
प्राण शक्ति से मम भावना-सी घुल मिलकर
समुच्छ्वसित कर देती मुग्ध हृदय को बरबस !

स्वर्ण कणों के शालि झूम झुक नयन लुभाते
सहज सुहाते स्वच्छ रुपहले कासों के वन,
मलिन वासना धुल सी गयी सरित धारा की,
सरसी जल में घुल-सी गयी नवल उज्ज्वलता !

कुमुदों में केंद्रित हो निशि का अपलक विस्मय
कमलों में घुल सौम्य दिवस के अन्तर्लोचन,
फुल्ल चंद्र का, स्निग्ध सूर्य का स्वागत करते !
चल खंजन नयनों से, कल चातक पुकार से
भू का सद्य स्नात मनोरथ प्रकट हो रहा !

मौन मधुर लग रहा धूप का सुघर धुला मुख
अंगों से लावण्य फूट - सा पड़ता निश्छल,
डूब भावना में नव यौवन की निर्ममता
कोमल-सी पड़ गयी,—मध्य वय के आग्रह से
मादकता आ गयी मनोरम मातृ प्रकृति में !

वाचिका

चिर रहस्यमय ताराओं का छाया पथ नभ
निज असंख्य नयनों के विस्मय से हरता मन,
स्वप्नों के स्मित ज्योति प्ररोहों से दिक् पुलकित
व्योम हँस रहा दीप्त दिवौषधियों के वन-सा !

निखर उठी नीलिमा, नयनिमा सी अनन्त की,
निखर उठी नीहार कान्ति निर्वाक शान्ति में,
वृष्टि धौत नीलिमा रहस आभा से गुम्फित
महाजागरण - सी सोयी स्मित अन्तरिक्ष में
निविड़ अकम्पित जल-सी निस्तल निश्चेतन की
महा चेतना के पावक से लगती गर्भित !

वाचक

चंद्रकला का मुकुट धरे निज ज्योति भाल पर
हीरक कनियों की शत ज्वालाओं से जगमग
तारक लड़ियाँ गूँथ नील लहरी वेणी में
रजत वाष्प जलदों के सतरँग पंख खोल स्मित,
नवल शारदीया, सुंदर सुरबाला-सी हँस,
उतर रही, स्वर्गंगा-सी साकार गगन से !

व्योम वासिनी, सूक्ष्म स्वप्न देही आभा वह,
—दिव्य अदिति-सी अन्तमन के रजत गगन में,—

उतर रही भू पलको पर अनिमेष स्वप्न-सी
शब्द स्वर रहित अन्तरतम की तन्मय लय म !
ज्योति द्रवित वह, जिसके स्वप्निल गीलेपन से
भीग रहे मन प्राण मौन शोभा म मज्जित,
अमृत चेतना वह, जिसके अन्त प्रवाह म
डूब रह उर के तट, भाव तरग ध्वनित हो,
नीरव कलरव से गुजित हर्षातिरेक के !

(वाद्य सगीत)

याचिका

फूलो की पखडियो, कोमल रँग बरसाओ,
लोल लहरियो, सरसी उर म लय हो जाओ,
तरु ममर, निज अस्फुट कम्पन म खो जाओ,
तारामो की पलको, झिलमिल कर सो जाओ !
प्रिय चकोर, तुम पृथ्वी के अँगार चुग जाओ,
शुभ्र हस पखो, उडान बनकर रह जाओ—

शरद चन्दिरा उतर रही धीरे धरती पर
भारहीन सुकुमार अगभगी म ओझल,
निज अदृश्य पग, धरती पखुरियो, लहरो पर,
स्वप्न स्पर्श सी पलका पर, स्मिति-सी अधरा पर !
देखो, फूला पर हँसते अब रजत तुहिन कण
लहरो के अधरो को चूम रहे स्मित उडुगण,
झलक उठे पत्तो के करतल मे मुक्ताकण,
ज्योत्स्ना के पद चिह्नो से अब अकित भूतल !

भौतिक ज्योति नही है केवल शरद चादनी,
आत्म लीन वह अमर चेतना स्वग लोक की,
अतिक्रम कर सब दिशा काल, तन मन के बन्धन,
आत्मोल्लास प्रदीप्त, हुई परिव्याप्त चतुर्दिक !
मधुर प्रणय का स्वप्न हृदय की पलको मे ज्या
प्रथम बार मुसकाया सदयोज्ज्वल विस्मय मे
नही भूमिजा वह, वैदेही भाव शरीरी,
उसके अचल की पावन छाया मे आओ,
फूलो की मदु पलको, स्वप्ना से भर जाओ,
लोल लहरियो, नव लीला लावण्य दिखाओ !

याचक

स्यात् हृदय की वीणा होती, तार प्रणय के,
कोमलता का स्पर्श, रुपहली गूजा म जग
सुन्दरता झकृत हो उठती निस्वर लय म,
स्वर्गिक स्वर सगति बन उर के श्रवणो के हित,
मनोनयन तब कही देख पाते उस छवि को
शरद चन्द्रिका मे अरूप साकार हुई जो,

प्रीति ज्योति-सी, स्वप्नों के अंगों में मूर्तित,
स्वर्ग धरा के भावों की सुषमा से भूषित !

(वाद्य संगीत)

वाचिका

परिक्रमा करती भू, ऋतुएँ शरद विभा की,
बारी-बारी से हेमन्त शिशिर वसन्त आ,
ग्रीष्म और वर्षा, रंगों से, धूप-छाँह से
जल बूँदों से, हिम फुहार से करते स्वागत
पिक चातक के, नृत्य-मयूरों के कण्ठों से
अभिनन्दन गा, शत नव लघ्रो, कमल दल बरसा !

वाचक

सर्व प्रथम हेमन्त कर रहा आत्म निवेदन,
भरा झुर्रियों से आनन, सकुचाया-सा मन
काँप रहे मृदु अधर, वाष्प से आर्द्र हैं नयन,
घने कुहासे में-सा लिपटा उसका जीवन !
ठण्डा हो पड़ गया सकल उत्साह, क्लान्त मन,—
ठिठका सा लगता नभ, ठिठुरा-सा भू प्रांगण !

(हेमन्त का गीत)

जीर्ण पलित पीत पात,
कम्पित हेमन्त गात !

हैम धवल पक्व केश
क्षीण काय, सौम्य वेश,
मंथर गति, मन्द कान्ति,
नतदृग मुख वारिजात !

रजत धूम भरे अंग,
फूलों के उड़े रंग,
सरसि मन अब तरंग,
शीत भीत श्वास वात !

मौन स्वल्प दिवस मान,
रवि में ज्यों चन्द्र भान,
मुक्त अब न विहग गान,
अश्रु सजल हिम प्रभात !

सिमटे मन देह प्राण,
अधरों का राग म्लान,
प्राणों के निकट प्राप्त
दीर्घ स्वप्न भरी रात !

(वाद्य संगीत)

याचिका

छोड़ श्वास फूत्कार धूलि के साँप नचाता
जरा जीर्ण जगती के पीले पात उडाता,
ध्वस भ्रदा करता मा क्रुद्ध शिशिर अब आता
झंझा पर चढ़, थर थर कँपता, ओठ चबाता !
सी-सी सीटी बजा, रुदन म भरता गायन,
समदर्शिनी शरद का वह करता अभिवादन !

शिशिर का गीत

सन् - सन् वहता समीर,
वेधते सहस्र तीर !
शिशिर सीत्कार भीत
कँपता रज का शरीर !

झरते मर शीर्ण पत्र,
गिरते कँप विटप छत्र,
विचर रहा दुर्निवार
भ्रान्ति दूत सा अधीर !

बो रहा प्रचण्ड बीज
जडता पर खीझ-खीझ,
जीवन के नव प्ररोह
विहँसे भू गभ चीर !

सिहर रहे तृण तरु खग,
सिहर रहा धूसर जग,
सिहर उठे भूधर पग,
सिहर रहा लहर नीर !

नग्न भग्न विश्व डाल,
सृजन ध्वस रे कराल,
सुलगें स्वर्णिम प्रवाल
मिटे निखिल दैन्य पीर !

वाचक

नव वसन्त आता अब अधरो मे भर गुजन,
सौरभ से पुलकित मन, फूलो से रजित तन,
नव भू यौवन - सा, स्वप्नो से अपलक लोचन,
कुहू कुहू गा, प्राणो का सुख करता वपण !
शरद चेतना म परिणत अब रगो के क्षण
फूल बने फल, पण काँस, परभृत मरालगण !

(वसन्त का गीत)

नव वसन्त आया !
कोयल ने उल्लसित कण्ठ से
अभिवादन गाया !

रगो से भर उर की डाली
अधर पल्लवो म रच लाली,
पखडियो के पख खोल स्मित
गृह वन म छाया !

सोरभ की चल अलकें मादन,
फूल धूलि म लिपटा मृदु तन,
नव किशोर वय, क्रीडा चचल,
अग-जग का भाया !

मधुपो क सँग कर मधु गुजन
मजरियो म पिरो स्वणवण,
दिशि-दिशि म नवफूल बाण भर
मन्मथ मुसकाया !

धरा पुत्र यह, फूलो के अँग
प्राणो मे इच्छाओ क रँग,
जीवन के श्री सुरा वैभव म
ऋतुपति कहलाया !

वाचक

अह, निदाघ बरसाता चितवन के पावक कण,
जग के प्राण तपाता भुलसाता भू जीवन !
भू लुण्ठित छाया, कुम्हलाया लतिका-सा तन,
प्यासा जल अब, उडा भाप बनकर गीलापन,
प्रतिक्षण तपकर, जीवन से कर कटु सघषण
समदर्शी बन ग्रीष्म शरद का करता वन्दन !

(ग्रीष्म का गीत)

तरुण तापस वीर,
उग्ररूप, प्रचण्ड त्रिनयन सा
निदाघ गभीर !

धूलि से धूसर जटा घन,
मौन वचन, मुदे विलोचन
रुद्ध श्वास, सुखद तृणासन,
वस्त्र विरत शरीर !

तप रहे क्या व्योम भूतल
वह्नि लगती दाह शीतल,
तप्त काचन देह निश्चल
ध्यान मे रत धीर !

दौडता पागल प्रभजन
अग्नि के बरसा ज्वलित कण,
म्लान फूलो का लता तन
शेष तट अब नीर !

रुद्र चक्षु कराल अम्बर
कृश सरित, पंकिल सरोवर,
तड़पते खग मृग, अगोचर
चुभ गया हो तीर।

वाचक

लो, वर्षा की घनश्यामल वेणी लहरायी,
धरती को रोमांच हुआ, हरियाली छायी।
प्राणों में अब जगा गहन जीवन उद्वेलन,
अम्बर में गर्जन, दिशि-दिशि में विद्युत् नर्तन।
इन्द्रधनुष में हँसा गगन का सूना प्रांगण
वह भार में खुला रंग चंचल भू जीवन।
स्निग्ध शरद का आँगन धो, निज दृग का अंजन,
सोन बलाक स्वरों में वर्षा करती वन्दन।

वर्षा का गीत

नीलांजन नयना,
उन्मद सिन्धु सुता वर्षा यह
चातक प्रिय वयना।

नभ में श्यामल कुन्तल छहरा
क्षिति में चंचल हरितांचल फहरा,
लेटी क्षितिज तले, अर्धोत्थित
शैल माल जघना।

इच्छाएँ करती उर मंथन
चिर अतृप्ति भरती गुरु गर्जन,
मुक्त विहँसती मत्त यौवना
स्फुरित तड़ित दशना।

रजत बिंदु चल नूपुर झंकृत
मन्द्र मुरज रव नव घन घोषित,
मुग्ध नृत्य करती वहस्मित,
कल बलाक रसना।

बकुल मुकुल से कबरी गुम्फित
श्वास केतकी रज से सुरभित,
भू नभ को बाहों में बाँधे
इन्द्रधनुष वसना।

वाचिका

धरती की ऋतुएँ मिलकर करतीं अभिवादन
चन्द्रमुखी नभ की ऋतु का अनिमेष नयन हो,
विहगों के स्वर, सर के कमल, घनों का वादन,
भू के रंगों का वैभव अर्पण कर उसको।
रक्त जवा फूलों से रँगकर उसके पदतल

आम्र मौर का मुकुट, कुई के कर्ण फूल रच,
हर सिंगार वेणी, बेला कलियों की माला
मधुपों से गुंजित कदम्ब मेखला बाँधकर,
करती मानस पूजन वे स्वर्गीय विभा का!
हंसों के चल पंखों से भल मन्द मृदु व्यजन,
ज्योतिरिंगणों से जगमग द्युति नीराजन कर
मधुर स्तवन गाती वे ऋतुओं की रानी का,—
किरणोज्ज्वल लहरों के पायल बजा रजत रव,
शिखी पिच्छस्मित परिक्रमा कर नृत्य मत्त हो!

शरद का गीत

अब शुभ्र गगन में शुभ्र चन्द्र
नव कुन्द धवल तारावलि री,
अब शुभ्र अवनि में शुभ्र सरसि,
सरसी में श्वेत कमल दल री।
भू वासिनि ऋतुएँ अन्य सभी,
तुम नभ वासिनि चिर निर्मल री,
वे धरती की रज में लिपटी,
तुम स्वगंगा सी उज्ज्वल री।
अब काम हास से श्वेत धरा,
सरसिज से सित सरिता जल री,
चल हंस पाँति से शुभ्र पवन,
शशि मुख से स्मित नभ मण्डल री!
बेला जूही के फूल धवल,
हिम धवल कुन्द कलियाँ कल री,
तुम चन्द्र शिखा की स्नेह विभा
जो स्वर्ण शुभ्र चिर शीतल री!
आती - जाती ऋतुएँ जग में
कर जाती भू उर चचल री,
तुम शरद चेतना स्वर्गोज्ज्वल
बरसाती नित जन मगल री!
वे जीवन रंगों का मोहक
फैलाती छाया अचल री,
तुम प्रीति द्रवित स्वर्गाभा - सी
पावन कर जाती भूतल री!
तुम पारदर्शिनी, ज्योतिर्मयि,
अन्त शोभा मयि निश्छल री,
अस्पृश्य अदृश्य विभा उर की,
वे रूपमयी रज मासल री!

वाचक

रजत नील जल सी अम्बर सरसी की निर्मल
जिसमें स्वप्नों की अप्सरियाँ तिरती रहती,

अपनी ही आभा में ओझल शरद चंद्रिका
कोमलता - सी, तन्मयता - सी, दिव्य दया - सी
विचर रही धरती पर सस्मित स्वप्न चरण धर,
शोभा के स्वर्गीय ज्वार में डुबा दृष्टि तट।
मुग्ध धरा उर के भावों-से फूलों के शिशु
रंग रंग की स्मिति बरसा, गाते शरद वंदना!

फूलों का गीत

आओ हे हँसमुख फूलो, हिलमिलकर हम सब गावें
शरद चेतना के आँगन में उत्सव मधुर मनावें!
रंग पँखड़ियों के पर फैला अम्बर में उड़ जावें,
रजत सुरभि के अलक जाल में मारुत को उलझावें!
अपलक चितवन के स्मित चंचल वंदनवार बँधावें
जन भू के पथ पर हँस हँस शत इंद्रचाप बरसावें!
तुहिनों के मोती किरणों में पोकर हार बनावें,
डाल डाल पर उर स्वप्नों के मोहक जाल बिछावें!
फूलों का तन फूलों की बाँहों में भर सुख पावें,
स्नेही मधुपों की मधु गुंजन सुनकर प्राण जुड़ावें!

वाचिका

डूब रहा नभ, डूब रही दिशि, डूब रही भू
एक अनिर्वचनीय महत् आनंद में अमित,
द्रवित हो गयी निखिल रूप रेखा धरणी की,
लीन हो गयी अखिल असंगतियाँ जड़ता की,
विस्मय से अभिभूत प्रकृति के उर से उठता
जिज्ञासा से भरा मौन संगीत गगन को!

प्रकृति का गीत

क्यों हँसते रहते फूल मधुर, क्यों लहरें नित नाचा करतीं,
क्यों इंद्रधनुष छायांचल में किरणें छिप छिप सतरँग भरतीं?
क्यों उषा लालिमा मौन सलज नव मुग्धा-सी मन को हरती,
क्यों कुहू-कुहू गाती रहती कोयल चिर मर्म व्यथा सहती?
क्यों अपलक तकते रे तारे, सपने देखा करती धरती,
क्यों शशि को बाँहों में भरने सागरवेला उठती गिरती?
निज सुख-दुख की ही चिन्ता में क्या डूबी रहती है जगती
क्यों स्वप्नों के पर खोल न वह प्रिय तितली सी उड़ती फिरती?
जो घृणा द्वेष की अँधियाली इस धरती में फैली रहती
तुम उर का प्यार उड़ेल उसे धो डालो हे, ज्योत्स्ना कहती!

वाचक

अंचल पकड़ प्रकृति का गात नवल मुकुल दल
अध खुले विस्मित नयनों से प्रथम बार ज्यों
निरख धरा की दुग्ध स्नात अन्त श्री उज्ज्वल!

हरित गौर भू उर पर सोया रजत नील नभ
स्वप्न देखता हो विराट् सौंदय के भ्रमर !

मुकुलों का गीत

हास लास हो हुलास,
सुरभित हो साँस साँस !

चाँदनी खिली अपार
स्वप्नों का उठा ज्वार,
मौन मुग्ध आर - पार
शोभा श्री का विलास !

प्रकृति कर रही विहार
उमड रहा अतल प्यार,
जगत रे नही असार
सुंदरता आस - पास !

चन्द्रमुख रहा निहार,
सिंधु उर रहा पुकार,
प्राणों का यह निखार
पान्थ, अब न रह उदास !

खोल रुद्ध हृदय द्वार,
गूंज उठे मूक तार,
जीवन रे वृथा भार
अन्तर मे जो न प्यास !

उच्च हो सदैव ध्येय
मन शक्ति हो अजेय,
शान्ति सौख्य अपरिमेय,
वरद शरद भू निवास !

वाचिका

दुग्ध फेन-सा, म्लान कमल-सा स्फटिक खण्ड-सा
पावस का शशि उज्ज्वल किरणों से मण्डित हो
दमक उठा अब रजत वह्नि के ज्योतिकुण्ड सा !
निखिल सृष्टि की शोभा का प्रतिमान रूप-सा,
विश्व प्रकृति के चन्द्रानन सा चारु सुधाकर
शरद चेतना के प्रेमोज्ज्वल आर्द्र हृदय सा
बरसा रहा धरा पर स्नेह सुधा के निर्झर !
शान्तगगन अब, सौम्यप्रकृति, स्मितस्निग्धदिशाएँ,
मुग्ध चराचर चन्द्र वन्दना करते नीरव !

(वन्दना गीत)

बरसो ज्योतिर्धाराओं मे
बरसो धरती के मानस धन,

अब निमल नभ, अब धुला धरा मुख,
खुले सरसि के कमल नयन !

मिट्टी के प्राण प्ररोह जगे,
सात्विक लगते कांसो के वन,
अब हसो के पखा मे उड
हँसता धरती का उर चेतन !

बरसाओ हे नव श्री शोभा
हो स्वप्नो से स्मित भू प्रागण,
लहरा म झलके रजत ज्वाल
फूलो की पलको मे हिमकण !

बरसो हे स्वण सुधा के घट,
बरसो हे रजत विभा के घन,
बरसो भू मानस के प्रतीक,
चेतना सिक्त हो सब भू-जन !

(१ सितम्बर, १६५१)

शिल्पी

[प्रथम प्रकाशन वर्ष १९५२]

डॉ० नगेन्द्र को
सस्नेह

विज्ञापन

'शिल्पी' मे मेरे तीन काव्य रूपक सगहीत है, जो अशत आकाश वाणी के विभिन्न केन्द्रो से प्रसारित हो चुके हैं। इन रूपको मे वर्तमान विश्व सघर्ष को वाणी देने के साथ ही नवीन जीवन-निर्माण की दिशा की ओर इगित करने का प्रयत्न किया गया है।

१५ सितम्बर ५२ — सुमित्रानन्दन पत

शिल्पी

(कलाकार का अन्त सघर्ष)

शिल्पी
शिष्या
दशकगण
आमिन्नत जन
जननायक

प्रथम दृश्य

[शिल्पी का कला कक्ष, जिसमे विविध आकार प्रकार की मूर्तियाँ रखी हैं। शिल्पी की शिष्या मूर्तियो को झाड पोछकर अलमारियो मे सजो रही है। वृद्ध शिल्पी पर्दे की आड म एक नवीन प्रतिमा के निर्माण से सलग्न है। वह दत्तचित्त होकर छेनी पर हथौडी चला रहा है और बीच मे गुनगुनाता जाता है।]

गीत

निमम हृदय शिला। (निश्चल)
कसे आकू प्रियतम की छवि
जड पापाण जिला।
मति की छेनी इन्द्रिय कुण्ठित
पौरुप घन तष्णा कर लुण्ठित,
कमे कटे अचेतन पाहन
उर से रिला-मिला।
दीप तले छाया अँधियाला
मन ने ममता का तम पाला,
अमर चेतना स्पश बिना कब
मानस कमल खिला।

शिल्पी (खीझकर)

यह पापाण नही मानेगा मेरा अकुश!
निष्ठुर प्राण नही पिघलेगा, इस पत्थर से
माथा पच्ची करना अपना सिर धुनना है।
वज्र मूढ, निष्ठुर, दुराग्रही धरा पुत्र। यह
सौम्य कला के स्पर्शों से कैसे चेतेगा,
रूढि ग्रस्त आत्मा के जड सस्कार बदलकर!
धरती के निश्चेतन का निश्चेष्ट तमस यह
अपना निष्क्रिय आलस सहज नही छोडेगा,
इसके अन्तस मे सोयी जो मूक चेतना
दुमति उस नही जगने देगा, बाधक बन।
लो छेनी भी टूट गयी। उँह, कुद पड गयी
मरी धार सिर खपा-खपाकर! सरला बेटी,
मुझ नया तुलसुम फुलना तो देना बेटा।
यह किर्रा बेकाम हो गया, फूल-पत्तियाँ
नही काटता तिलरा भी लेती आना। हाँ,

पहिले गोलाई ले लूँ! यह रहा घेरना!
ठोक-पीट, दखू, पत्थर मे फूल खिल उठें!

(फिर कार्य-व्यस्त हो जाता है)

गीत

आ जाता वसन्त पतझर मे
प्राणो का स्पदन प्रस्तर म,
जगती दिव्य ज्योति अन्तर म!
तम के मूल हिला!

दीपित होता अधकार नव,
जड म चेतन का निखार नव,
नाम रूपमय निराकार नव,
साधक सृजन कला!

जीवन सघपण होता लय
मिटता जरा मरण दुख का भय,
हँस उठता नव युग अरुणोदय
भव सग्राम झिला!

(छेनी रखकर मूर्ति का निरीक्षण करता है)

शिल्पी ईश्वर! अब जाकर पाषाण सजीव हुआ कुछ!
युग विप्लव की पृष्ठभूमि साकार हो गयी,—
प्रस्तर के उर मे युग जीवन का समुद्र ही
हिल्लोलित हो उठा, क्षुब्ध जन आवेशो मे!
मेघो मे विद्युत सी, तरुवन म झझा सी,
अधकार को चीर, नयी चेतना शिखा ज्यो
दौड रही जन मन मे, दीपित कर शत आनन!
गर्वोन्नत मस्तक, विस्मय से खुले हुए मुह,
विस्फारित लोचन, विस्तृत उर, उठी भुजाएँ—
सागर लहरो से, दावा लपटो-से जनगण
जीवन आकाक्षा से लगते स्पदित-कम्पित,—
मधु ज्वाला से वेष्टित नव तरु शाखाओ से!

निखिल दृश्य पट आदोलित है नव भावो से!
एक बहत् चट्टान फलक ही नव चेतन हो
जीवन की गति से हो उठा अवाक गुजरित!
रेखाओ मे ध्वनित हो उठा मूक अचेतन,
प्राणो के स्पर्शों से जाग उठी चिर निद्रा!
आ, अनन्त यौवन अब फूट पडा पाहन मे!
भगुर जीवन को बदी कर शिलाखण्ड ने
अमर कर दिया, कालचक्र की गति स्तम्भित कर!
मूत हो उठा नव युग का इतिहास वत्त ही!
सीमा मे नि सीम, अमरता को मृण्मय मे,

बाँध दिया शाश्वत को क्षण मे, रहस शिल्प ने !
रूप बढ गया है अरूप से, स्थूल सूक्ष्म से !
(ध्वनि प्रभाव द्वारा आशा का निराशा मे परिणत होना)
किन्तु नही, यह मात्र भावना का प्रमाद है !
आत्म मुग्धता है, भावुक मन वहक रहा है !
कलाकार के अहकार, तू वाधक मत वन,
तेरा यह शिशुओ का-सा उल्लास व्यर्थ है !
हाय, अभी तो तू छाया ही पकड सका है,
अभी स्वर्ग-सोपान पार करना है तुझको !
विना शिखर के पर्वत कैसा ? वह गौरवमय
शिखर अभी ओझल है तुझसे! आवृत है मन!
उसके विना प्रभाव शून्य है दृश्यपटी यह !
युग की आत्मा को, युग जीवन के प्रतीक को
मुझे प्रतिष्ठित करना होगा मानव मन की
युग निर्मम पाषाण शिला पर, कला स्पर्श से !
तभी सफल होगा मेरा यह स्वप्न शिल्प का !
किन्तु अभी कल्पना चक्षुओ के सम्मुख भी
पूर्ण अवतरित नही हो सका महत सत्य वह,
जिसमे जीवन के विरोध हो सकें समन्वित,
जिसमे जन आकाक्षाएँ हो सकें प्रतिफलित,—
मूर्तिमान हो सके निखिल चेतन युग वैभव !
मुझे खोजना है अनेक के गुह्य एक को,
अभी दूर है साध्य, अभी निष्प्राण है शिला !

शिष्या दादा इधर न जाने क्या हो गया आपको,
आप सदा चिन्तित से, खोये-से रहते हैं !
बार बार इन अनगढ पाषाणो को गढकर,
उनमे जीवित रेखाएँ, उर की धडकन भर
तोड-फोड देते फिर उनको निर्ममता से,
ऊब-खीझकर, उन्हें अधूरा छोड सदा को !
कितने ही सुन्दर मुख, कितने ही सुडौल धड,
हँसमुख, अकलुष आकृतियाँ, निरुपम मुद्राएँ,
सुघर बोलती सी प्रतिमाएँ, जिन्हें देखकर,
मैं अवाक रहती विस्मय से,—उन्हें भ्रूण में
आप नष्ट कर देते है अपना अमूल्य श्रम
व्यर्थ गँवाकर !

शिल्पी ठीक कह रही हो तुम बेटी,
किन्तु मुझे सन्तोष नही अपनी कृतियो से !
नित्य नये रूपो रेखाओ मे जगती जो
दिव्य मूर्ति मेरे मन की आखो के सम्मुख
उसे अभी मैं बाँध नही पाया हूँ अपनी
शिल्प कला मे! जब तक उसको जड प्रस्तर मे

अंकित करने की चेष्टा करता प्रयत्न से
उसका रूप बदल जाता कल्पना क्षितिज में !
आँखमिचौनी खेला करती वह नित मुझसे—
धूपछाँह के पट में ओझल हो रहस्य-सी !
नहीं जानता, कैसे इस संक्रान्ति काल की
नित्य बदलती हुई वास्तविकता के पट में
मूर्तित करूँ चिरन्तन सत्य मनुज आत्मा का !
परिवर्तित होती जग की वास्तवता प्रतिदिन,
किन्तु नहीं आदर्श बदलता है उस गति से,
उसका दिन, कहते हैं, ब्रह्मा का दिन होता !
बाह्य क्रांति ही मात्र नहीं यह भौतिक युग की,
बदल रहा अन्तर का भी आदर्श साथ ही,
आज कला को अभिनव को कल्पित करना है,
मिट्टी की जड़ता में फूँक सके जो जीवन !
हार गया मैं छाँट-छाँट पाषाण शिला को
पर आदर्श नहीं अँट पाता रेखाओं में,
सूक्ष्म सत्य, छाया सा खिसक दूर हट जाता !
विस्मित हूँ मैं !

(अन्त सघषद्योतक ध्वनि प्रभाव)

शिष्या — बाहर कुछ दर्शक आये हैं !

शिल्पी — उनका स्वागत कर, अन्दर ले आओ बेटी !

(दर्शकों का प्रवेश)

कुछ दर्शक — हम विश्रुत शिल्पी का अभिवादन करते हैं !

शिल्पी — कलाप्रेमियों का सविनय स्वागत करता हूँ !

शिष्या — कलाकक्ष का अनुशीलन करने आये हैं !

शिल्पी — इनको कक्ष दिखाओ बेटी !

शिष्या — बड़े हर्ष से !

शिल्पी — उधर शिल्प के कुछ विशिष्ट प्रतिमान पड़े हैं,
जो नवीन हैं सम्भव, इनकी मार्जित रुचि को
उनसे कुछ परितोष मिले !

एक दर्शक — निश्चय ही, ऐसे
निरुपम कला प्रतीकों का अवलोकन करके
किसकी आँखें तृप्त न होंगी !

दूसरा — अद्भुत कृति हैं !

तीसरा — चलो, इधर ही से देखें यह गांधीजी की
प्रतिमा है !

शिष्या — जी, यह प्रसिद्ध दाण्डी यात्रा के
जननायक गांधीजी हैं !

एक — उन्नत मस्तक पर
रोली चन्दन का, जन श्रद्धा का प्रतीक सा,
मंगल तिलक सुशोभित है, दक्षिण कर में स्थित

उनकी चिर परिचित लाठी है, जो बापू के
दृढ निश्चय सी आगे बढने को उद्यत है।
दायाँ पैर उठाये, स्थिर निर्भय मुद्रा मे
खडे हुए वे, युग प्रभात किरणो से मण्डित
मेरु शिखर से सुदर लगते,—दीपित आनन,
लोक जागरण की उज्ज्वल चेतना शिखा-से।
आत्मत्याग के शुभ्र चिह्न सी घुटनो तक की
लुगी पहने भारतीय जन निधनता की
मित भूषा-सी,—तप पूत कृश स्वर्णिम तन पर
खादी की प्रिय चादर ओढे, सात्विकता की
रजत चद्रिका-सी दुग्धोज्ज्वल,—शान्त सौम्य वे
देवपुन से निरुपम लगते, स्निग्ध हास्यमय।

दूसरा
शत प्रणाम इस महापुरुष को।

तीसरा
जीवित कृति है।

शिष्या
चिन्तन की मुद्रा म बैठे हैं बापूजी
इस प्रतिमा मे।

एक
बडी लोकप्रिय मुद्रा है यह।
कलायास म, टाँगा को घुटना से मोडे,
ध्यान मौन, अन्त स्थित हैं कमठ युगद्रष्टा,
तजोमय, निर्वात अकम्प शिखा सी लगती
ऊर्ध्व देह, अधरो के सम्मुख दक्षिण कर की
मुटठी बँधी हुई, निमम सकल्प से भरी!
निश्चल पलको पर केद्रित एकाग्र दष्टि म
स्वर्णिम छाया झलक रही सक्रिय चिन्तन की,—
अधकार को भेद युगो के ज्यो भारत की
उज्ज्वल भावी देख रहे हो उदय शिखर पर।
मानव जीवन के शिल्पी से लगते शोभित।

दूसरा
बडी भावव्यजक प्रतिमा है! मुखमण्डल की
मौन कान्ति गम्भीर मेघ से चद्रबिम्ब-सी
फूट रही है,—चिता से आशा किरणा सी।

शिष्या
विश्व वद्य गाधीजी का यह अधकाय है।

तीसरा
अनुपम है! मुख पर चिरपरिचित हास्य रेख है!—
'शान्ति हिमाचल की चोटी पर नही मिलेगी,
उसे प्राप्त करना होगा मानव समाज मे,
प्रतिदिन के कर्मों म, जीवन सघषण म',—
ऐसा कहनेवाले, कर्मनिरत बापूजी
सौम्य हास्य बरसाते रहे विपण्ण धरा पर
अनासक्त उर का सुख वितरण कर जनगण म।

दूसरा
नि सशय, आदश वस्तुवादी थे बापू।

शिष्या
इधर खडे गाधीजी सविनय हाथ जोडकर!

तीसरा
विविध रूप म ज्यो सवत्र विराजमान हा।

एक
अभिवादन करते हैं इसम वे जनगण का।

यह प्रसिद्ध प्रतिकृति है उनकी भारतजन के
प्रिय प्रधिनायक जिस विनम्रता की प्रतिमा थे
यह कृति उसकी सुस्मृति चिर जीवित रखेगी।
जहाँ अन्य देश के जननायक इस युग मे
अगरक्षका से बद्ध रहते घिर निरन्तर,
वहाँ अहिंसक बापू निर्भय स्वर्ग दूत से
मुक्त विचरते रहे सतत जनगण समूह मे,—
सागर लहरा-से जो, जय घोषो स मुखरित,
उन्हे सुरक्षित रखते थे श्रद्धावेष्टित कर।

दूसरा अपराजित व्यक्तित्व रहा उनका दवोपम।
पावन वे कर गये धरा को चरण प्रणत कर,
गौतम ईसा-से, जग को सन्देश दे अमर।

शिष्या गौतम बुद्ध उधर शोभित हैं ध्यानावस्थित।

एक आत्मवृन्त पर, अन्त स्मित हो मानस शतदल।
प्रस्तर का जड माध्यम भी अन्तश्चेतन हो
समाधिस्थ हो उठा, शान्ति-सा मूर्तिमान बन।
पद्मासन मे लीन,—अधस्फुट युगल कर कमल
स्वर्ग दया के अर्घ्यपात्र-से शोभित स्वर्णिम,
विश्व प्रीति शाखाओ सी आजानु बाहुएँ,
करुणा स्पन्दित वक्ष, रश्मि गुम्फित सागर-सा,—
अन्तर्लोचन, ज्योति शिखर-से ऊर्ध्व अतन्द्रित।

शिष्या ये मसीह हैं।

दूसरा दिव्य हृदय, साकार प्रेम स।
स्वर्ग राज्य के अग्रदूत, भगवत् जीवन की
महिमा गरिमा के अन्तद्रष्टा, पृथ्वी पर
विचरे जो, उर की पलको पर अमर स्वप्न ले।
जन भू के कलुषो को स्वर्गिक रुधिर दान से
पुण्यस्नात कर गये, क्षमा से प्रीति द्रवित कर
हिंस्र धरा उर की निर्ममता की सूली को।

तीसरा गौतम से गाधी तक भू जीवन विकास क्रम
विचरण करता स्वप्न चरण धर कला कक्ष म।
भू जीवी को पुन स्वर्ग चेतना शिखा का
वाहक बनना होगा, उसको उठा उच्चतर।

शिष्या यह कवीन्द्र का अर्धकाय है।

कला सृष्टि है।

एक पूर्ण साम्य है मुखमण्डल की रेखाओ मे।
शान्त, श्मश्रु युत मुख श्री जैसे स्वय काव्य है।

दूसरा अद्वितीय गायक थे निश्चय कवियो के कवि
गुरु रवीन्द्र, नव युग द्रष्टा, नव जीवन स्रष्टा,
अमर कल्पना पख खोल, रत्नच्छाया स्मित
सेतु बाँध जो गये धरा को मिला स्वर्ग से —
स्वप्न मुखर भावो की नि स्वर पद चापो से

झंकृत कर मानव आत्मा के नील मौन को !

तीसरा — अदभुत प्रतिभा थे रवीन्द्र इस युग की निश्चय,
उदबोधन के गान छेड, निद्रित वसुधा को
नव जीवन शोभा म जो कर गय जागरित ।
मेघ मन्द्र गजन भर, मधुपा सा गुजन कर
नव वाणी दे गय, सजगत मनुष्यत्व को ।
राष्ट्र प्रेम का मन्त्र फूक, जनमन समुद्र को
मात भूमि के गौरव से कर गये उच्छवसित ।

एक शिष्या — जीवित कला मूर्ति थे कविवर ।

उधर देखिए,

एक — लौह पुरुष सरदार पटेल विराजमान है ।
कमनिष्ठ बापू के सनिक । भव्य मूर्ति है ।
दढ प्रतिज्ञ मुख मुद्रा, अविचल गठित कलेवर,
उत्तरीय चिर परिचित झूल रहा क धा पर,
विस्तत वक्ष, विशाल स्कन्ध, ज्यो पुरपसिंह हो
खडे सामने । स्मित नयनो म करुणा ममता
झलक रही उर की, अम्बर मे रजत वाष्प सी ।

दूसरा — वह गवाक्ष पर गौरीशकर शोभत हैं क्या ?

शिल्पी (पास जाकर) — वे मेरे अभिनव प्रयोग हैं शिल्पकला १,—
चन्द्र कौमुदी की प्रतिमा यह श्वेत स्फटिक पर ।

तीसरा — ओह रजत निर्झरिणी सी उन्मुक्त छटा म
उमड रही जो प्राणो की चचल छाया सी
अपनी ही शोभा म तन्मय, तुहिन फेन का
झीना आचल फहराय, यह शिल्प स्वप्न-सी
शरद चन्द्रिका है शायद ।

एक — स्वर्गीय कान्ति है ।

दूसरा — कूई के अपलक विस्मय से स्मित वक्ष स्थल
मम प्रीति के मदु भावो से लगता स्पदित,
वायवीय कल्पना मूत हो उठी शिला म,
स्फटिक पाश म बन्दी, स्वप्नो की उडान हो !

तीसरा — मुक्त कौमुदी को निज पुलकित बाहु परिधि मे
भरने को उत्सुक यह हँसमुख चन्द्रदेव है ।
लगता है मानो नव आकाक्षा का तन धर
मूत हो उठा हो अनग सद्य यौवन म ।
अधमुदे नयनो म स्वप्नो का सम्मोहन,
स्पदित वक्षस्थल मे तारापथ का वैभव,
अगो मे विजडित हो तन्मय मौन पूर्णिमा,—
आभा असि सी कला सुहाती प्रिय मस्तक पर ।
गौरीशकर ही जसे नव कला स्पश से
चन्द्र कौमुदी के प्रतीक बन गये हो अमर !
दिव्य सष्टि है ।

एक — वह क्या राधाकृष्ण है युगल ?

शिल्पी आप ठीक कहते हैं, दोनों प्रथम दृष्टि में
राधाकृष्ण सदृश लगते हैं, वरा मैंने
मेघ दामिनी की मोहक पावस शोभा को
मूर्तित करने का प्रयास है किया शिल्प में !
दूसरा मौलिक, नित्य-नवीन कल्पना है यह निश्चय !
मौन विद्रवित मेघ कृष्ण-सा लगता सुदर,
वाष्पों की लहरायी रेखा पीत वसन-सी,
इन्द्रचाप का अश दीखता मोर मुकुट-सा
मस्तक पर शोभित ! गम्भीर उदार मेघ छवि
भाव साम्य रखती है अद्भुत घनश्याम से !
अर्ध निमीलित लोचन, कुचित उलझी अलकें,
करुणा विगलित अन्तर, शोभा निर्झर बाँहे,
नील गगन की पृष्ठभूमि में उभरी आकृति
अनुपम लगती है !
तीसरा वारिद के उर से लिपटी
पुलक लता सी आभा देही अतनु दामिनी
श्री राधा सी तन्मय लगती कृष्ण प्रेम में !
चचल अचल खिसक उच्छवसित वक्षस्थल से
छाया सा लिपटा है घन के कटि प्रदेश में !
एक स्वप्न सृष्टि है !
दूसरा शिल्पकला का चमत्कार है !
शिल्पी पूर्ण चन्द्र सागर वेला की प्रतिमा है वह,
वाम पार्श्व में !
एक मूर्तिमान प्रेमाकर्षण है !
उमड रही उद्दाम मौन सागर की वेला
नव यौवन की चचल शोभा में हिल्लोलित,
आकुल, बाहु उठी मुक्त भावना ज्वार-सी
पूर्ण चन्द्र को बन्दी करने बाहुपाश में !
पृष्ठदेश पर लहराये घन कोमल कुन्तल
फेनों के स्मित फूलों की माला गुम्फित,
जलप्रसार सा फैला चल अचल अकूल ज्यों
अम्बर तट छूने की आशा से उद्वेलित !
अर्धखुले आकर्ण मीन लोचन हैं अपलक,
भ्रू रेखा में चपल मगियाँ मानो स्तम्भित,—
स्फीत वक्ष में अतल सिन्धु ही प्रीति उच्छ्वसित!
पूर्ण चन्द्र मुसकुरा रहा है विजय दर्प से
रश्मिपाश में बाँधे उन्मद रूप ज्वार को,
उन्मुख अधरों पर नीरव चुम्बन अकित कर !
दूसरा शक्ति स्फूर्ति की द्योतक है सप्राण मूर्ति यह !
तीसरा वह कोने में एकदन्त हैं विघ्न विनाशन !
दूसरा परिचय देता स्वत गजवदन प्रणव रूप सा !
एक अहा, इधर शोभित हैं मनमोहन मुरलीधर,

मैं इनको ही खोज रहा था। कैसी स्वर्गिक
भव्य मूर्ति है। शिल्पकला भी धन्य हो उठी।
मोर मुकुट मस्तक पर, श्रवणो मे मकराकृत
प्रिय कुण्डल, जो झाक रहे कुचित अलको से
सुघर नासिका, अधर मधुर स्मिति रेख से खिचे,
वृषभ स्कन्ध, पीताम्बर से भूषित नीरद तन।
करुणा विस्तत उर म झूल रही वनमाला,
मधु ज्वाला ने रोमाचित गलबाही दी हो।
केहरि कटि, स्थित अध ऊर्ध्व त्रिदलो के तट पर
महर्लोक सी, शोभा स्तम्भो सी जघाएँ,—
चरणो म बज उठती स्वर्णिम पायल नि स्वर।
भुवन मोहिनी है त्रिभग मुद्रा त्रिलोकमय,
ज्यो अरूप चेतना हो उठी मूर्तिमान हो।
प्रीतिपाश सी बाहे तियक मुख के स मुख
उठी हुई प्रिय वलयो से वेष्टित प्रकोष्ठ मृदु,
नव कमलो स युगल करो के अर्ध प्रस्फुटित
अगुलि दल म थामे नीरव मोहक मुरली—
मोहन मुरली, जिसके गोपन सकेतो पर
मुग्ध प्रकृति सजन करती गतिलय म नतित।

दूसरा मोहन की मुरली प्रतीक है अमर राग की—
वह सम्मोहन चराचरो को वाधे है जो
अपने निमम स्वणपाश म, विवश मुग्ध कर।

एक मैं क्रय करना चाहूँगा इस भव्य मूर्ति को।

दूसरा श्रेष्ठिपुन हैं आप।

शिल्पी प्रसन्न हुआ मैं मिलकर।

तीसरा पथ्वी के पुण्यो के फल - सा शुभ्र स्फटिक का
एक मनोरम देवालय, सक्षिप्त स्वग सा,
श्रेष्ठिपुत्र ने वनवाया है इस प्रदेश म,
अमरा के आरोहण पथ सा, स्वण कलश स्मित,—
कीर्ति स्तम्भ सा स्थापित जो भगवत महिमा का।
मुरलीधर की दिव्य मूर्ति की, शुभ मुहूत म,
प्राण प्रतिष्ठा होगी उसमे समारोह से—

एक मैं सविनय आमन्त्रित करता वहा आपको,
शिला कोष से प्रकट किया जिसने ईश्वर को।

शिल्पी मैं सहष आऊँगा उस मगल अवसर पर।

एक प्रभु की इच्छा से प्रेरित हो, और आपकी
शुभ्र कीर्ति से आकर्षित, मैं पुण्य घडी म
गृह से निकला मुरलीधर की मूर्ति खोजने।
धन्य हो उठा आज आपकी अमर कला की
स्वप्न सृष्टि को अर्जित कर इस कला कक्ष मे।
स्वीकृत करें कृपापूवक लघु नम्र भेंट यह
इस अमूल्य निधि के बदले—

शिल्पी कृतकृत्य हुआ मैं
आज आपके श्रद्धासिक्त मधुर वचनों से !

एक नत मस्तक मेरा प्रणाम लें !

शिल्पी चिर मंगल हो !

दूसरा हमको भी आशीर्वाद दें !—कष्ट के लिए
क्षमा करें इस कला वक्ष का अनुशीलन कर
आज महत् प्रेरणा मिली !—हम चिर कृतज्ञ हैं !
शिल्प कला की अतुल धरोहर हैं ये कृतियाँ,
श्री अकलुष सौंदर्य आपने सृजन किया है
इस छोटे से निभृत कुंज में—निखिल विश्व के
अन्तर का अक्षय वैभव संचित कर श्रम से !
निर्मम पाषाणों के उर को प्राणवान कर
उनमें जीवन फूंक दिया जादू के बल से,—
शिला हृदय में स्पर्श चेतना का कर जाग्रत !

तीसरा मूर्त कर दिया भाव स्वप्न प्रस्तर पलकों पर
रूप चेतना से झंकृत कर निःस्वर जड़ को
धन्य आपके अमर शिल्प को !

शिल्पी (हाथ जोड़कर) उपकृत हूँ मैं !

(दर्शकों का प्रस्थान)

द्वितीय दृश्य

[विशाल मनोरम देवालय का दृश्य मुरलीधर की मूर्ति की प्राण-प्रतिष्ठा सम्पन्न हो चुकी है। संध्या का समय, मंदिर आरती के समारोह से जगमगा रहा है, बाहर का प्रांगण अतिथियों से खचाखच भरा हुआ है, मंगल वाद्यों के साथ कीर्तन चल रहा है।]

गीत

जय मुरलीधर, जय राधावर,
जय गिरिधर वनमाली,
जय जन-मन वनमाली !
गुंजित नीरव मुरली के स्वर
कम्पित थर थर अम्बर सागर,
नृत्य निरत सब मुग्ध चराचर
तृण तरु देते ताली,
मनमोहन वनमाली !
स्वप्न मंजरित जन-मन मधुवन,
अपलक लोचन के वातायन,
मम प्रीति मर्मर से अनुक्षण
रोमांचित उर डाली,
रहस मिलन वनमाली !

निस्तल प्राणो का यमुना जल
इच्छाओ की लहरें उच्छल,
डूबा मन का कंदुक चचल
मथो वासना कालिय,
मेघ वरण वनमाली !

पीताम्बर छवि श्यामल तन पर
स्वर्ण रेख - सी कसी निकष पर
नील गगन से लिपटी सुदर
प्रथम उषा की लाली,
पीत वसन वनमाली !

जय अनत, जय शाश्वत, अक्षर,
जय जलधर कोमल करुणाकर
बरस रहे अक्षय रस निर्झर,
जय अतुलित बलशाली,
दैत्य दलन वनमाली !

एक अतिथि जैसा भव्य प्रयोग कला का देवद्वार यह,
मौन प्रार्थना सा पृथ्वी की उठा गगन को,—
वैसी ही जीवन्त मूर्ति है मुरलीधर की !
जिनके पावन दर्शन से इस महाभूमि का
जीवन का गौरव सहसा आखो के सम्मुख
पुन उदय हो उठता, चिर प्राचीन अनश्वर !
वह वैभव का युग होगा निश्चय भारत का,
जिसमे कल्पित हुआ पूर्ण व्यक्तित्व कृष्ण से
महापुरुष का ! उस युग की समस्त श्री शोभा,
भक्ति ज्ञान दर्शन की अद्भुत महिमा गरिमा
निखिल रहस भावना, कला कौशल का वैभव
मूर्तिमान हो उठा कृष्ण के दिव्य रूप म !

दूसरा अभी सुनायी पडती जैसे वह वशी ध्वनि
निभृत निकुजो, गिरि गहनो मे मर्मर भरती,
यमुना की आकुल लहरो मे मधु मुखरित हो
निर्जन छाया वीथी पथ स जन-मन हरती !
रहस प्रीति की निश्छल धारा बहती होगी
तब इस भू पर, उर मे रस के अमर स्रोत शत
झरते होगे, जन-मन को विस्मित विमुग्ध कर !
पूर्ण समन्वित होगा उस युग का भू-जीवन,
विशद सतुलन होगा भावो मे कर्मो म !
विश्व विमोहन मुरलीधर की अमर कल्पना
लोकचेतना की शाश्वत प्रतिनिधि है निश्चय !

तीसरा काम क्रोध से कुण्ठित भवतृष्णा से लुण्ठित
आत्मा को कर मोहमुक्त मुरली की मधु ध्वनि
जो नित अन्तरतम मे नि स्वर गुजित रहती,—
निज गोपन आकर्षण से मानव आत्मा को

सतत उठाती रहती स्वर्गिक सोपानो पर
सूक्ष्म भावना के नभ में सच्चिदानन्दमय !
मुरलीधर के श्रीचरणो पर आत्मार्पण कर
शान्त वृत्तियाँ हो जाती, कालिय - सी मर्दित,
ज्ञान दग्ध हो जाता सचित कर्मों का फल,
मलिन वासना से विमुक्त हो उठता अन्तर !
चौथा मनोभूमि पर उतरे थे श्री राम, मनुज की
मनश्चेतना को विदह कर देह नीति से,
मर्यादाएँ बाँध नीति की, सदाचार की
पथ प्रशस्त कर गये जनो का मोह निशा में
इन्द्रिय ग्रस्त तमस की,—जीवन की छाया को
ऊर्ध्व मनुज के चरणो पर कर दप विलुण्ठित !
जन के प्राणो के स्तर पर अवतरित हुए थे
लीलामय श्रीकृष्ण, भावना के समुद्र को
मथित कर, लालसा चपल मानस पुलिनो को
निस्तल मज्जित कर, ऊर्ध्वग जीवन शोभा का
नव प्लावन भर गये धरा में,—मधुर भाव में
भक्ति द्रवित कर, रस प्रवाह से डुबा जगत को !
योगेश्वर थे निश्चय पुरुषोत्तम रहस्यमय !

(भीतर के आँगन से संगीत के स्वर आते हैं)

भाव गीत

यमुना तट पर नट नागर ने
कैसी वेणु बजायी,
प्राणो मे ध्वनि छायी !

धेनु चराने मैं वन आयी,
मुरली की धुन सुन अकुलायी,
डूबे री मानस यमुना तट,
प्रीतिधार लहरायी, प्राणो०

मधु मजरित हुई उर डाली,
कूक उठी कोयल मतवाली,
सिहरी देह लता स्मति पुलकित
प्रिय छवि री मन भाई, प्राणो०

जाने कब भर आये लोचन,
बिसर गया सुधि बुधि उन्मन मन
घिरे श्याम घन, यमुना जल मे
छाया - सी गहरायी, प्राणो०

हिले न जड पग, भूल गया मग,
क्या जाने, क्या सोचेगा जग,
मुरली के स्वर मे थी निस्वर
निस्तल व्यथा समायी, प्राणो०

वशी की ध्वनि का सम्मोहन
समझ गयी आली मन ही मन,
यमुना तट की प्रिय घटना सुन
मन्द मधुर मुसकायी, प्राणो।
जन - मन मोहन री मुरलीधर,
मम प्रीतिमय मधु मुरली स्वर,
शाश्वत यमुना तट, वशी वट,
भेद न कुछ कह पायी, प्राणो।

पांचवां आज एक पखवारे से इस देवालय म
गायन, वादन, कीतन है चल रहा निरतर,
एकत्रित हो रहे उमड अविराम स्रोत म
भक्ति प्राण जन, पुण्य स्नान करने उत्सव म।
श्रद्धा से प्रेरित हो भावो से उद्वेलित,
सस्मित आनन, स्पदित अतर, हर्पित लोचन,
मुरलीधर के दशन से पावन कर निज मन
डुवा रहे सुख दुख उर-उर के रहस मिलन म।
निश्चय, जन-मन म अजेय विश्वास शक्ति है
नत मस्तक हो उठते जिसके सम्मुख पवत,
दुस्तर भवसागर म जिसका सेतु बाधकर
पार मनुज होते, विघ्ना के शृग लाघकर।

छठा युग - युग से करते आये जन कीतन वदन,
युग-युग से सुनते आये मुनियो के प्रवचन,—
चिर रहस्य म लिपटे धार्मिक उपदेशो के।
किन्तु नही कुछ वदल सका जनगण का जीवन,
दैन्य, अविद्या, अधकार के अतल गत म
वसा ही डूवा है जन मन—अधनियति का
दास वना, निमम विधि की इच्छा पर निभर।
लगता है, प्रतिमा पूजन मत आदर्शों का
पूजन भर है, धम भीरु दुवल जन जिनको
उर से चिपकाये है, स्वग नरक के भय से।
सम्कृति और कला के जीण प्रतीक मात्र जो
उन प्रतिमाओ के सम्मुख नत मस्तक होना
अपमानित करना है मानव की आत्मा को,—
अपने घटवासी ईश्वर के प्रति सशक हो।
कोई भी आदश नही, जो पूण चिरन्तन
इस परिवतन शील जगत मे, जहाँ निरन्तर
मनुज चेतना विकसित वद्धित होती रहती,
प्रति युग म, अपन गत जीवन को अतिक्रम कर।

सातवां वस्तु परिस्थितियो की ही सगठित चेतना,
जिस पर जीवन मूल्य निखिल अवलम्बित रहते,
और प्रतिफलित होती जो सौदय कला मे,—

वह मानव के अन्तर मे आदर्शो का भी
रूप ग्रहण कर लेती अन्त सयोजित हो।
बाह्य परिस्थितियो मे जब परिवतन आता
जीवन मन के मान बदलते रहत युगपत्,
इसीलिए आदश, जो कि नैतिक सत्यो के
मूत रूप हैं, परिवर्धित होते रहत नित।

पाँचवाँ अध सत्य यह वस्तु पक्ष ही नही, प्रबल है
भाव पक्ष भी, —जिससे आवृत है समस्त जड।
अपने ही उर की आकृति म ठोक पीटकर
मानव ने ढाला है इस जड वस्तु जगत् को,
उसको निज अन्त प्रकाश मे भाव द्रवित कर,
आकाक्षा के स्पर्शो से शोभा कल्पित कर।
पर, घट घट वासी उस सूक्ष्म अमूर्त सत्य को
ग्रहण नही कर पाता जन साधारण का मन,
प्रतिमा पूजन का महत्त्व इसलिए सदा ही
बना रहेगा जन मन मे, जग के जीवन म।
विशद दृष्टि स, नतिक आध्यात्मिक सत्य भी
प्रतिमाएँ ही हैं, सापेक्ष सिद्ध होने से।

छठा आप मौन क्या? इस स्वर्गीय मूर्ति के स्रष्टा,—
प्रतिमा पूजन के महत्त्व पर अपना मत दे
स्वण समापन करें आप ही इस विवाद को।

शिल्पी जड प्रतिमा तो मात्र भाव का कला रूप है।
जीवन के प्रति श्रद्धा, मानव के प्रति आदर,
जीवो के प्रति स्नेह यही प्रभु का पूजन है।
यह समस्त ससति ही ईश्वर की प्रतिमा ह,
सार रूप मे वही व्याप्त है निखिल जगत म
मानव का मन ही उसका पावन मदिर है।
उसे स्वच्छ सुदर रखना, उन्नत भावो के
सुमनो से भूषित करना, उर की इच्छा को
प्रभु को अर्पित करना ही मानस पूजन है।
परा शक्ति की ही प्रतिमा है मूत प्रकृति भी,
सूय - चद्र - तारे जिसका नीराजन करते,
सागर जिसके पावन पद प्रक्षालित करता,
गध समीरण जिसे डुलाता मद व्यजन नित
षड् ऋतुए जिसकी परिक्रमा करती सतत
रँग - रँग के फूलो की अजलि स्नेह भेंट कर,
ध्यान मौन रहते गिरि नदियाँ गाती महिमा,—
उस निसग की मधुर मूर्ति म दिव्य शक्ति के
नित्य रूप के दशन करना ही पूजन है।
एक चेतना शक्ति व्याप्त जड जीवन मन मे,
विविध लोक आदश उसी के महत् गुणो के
मूत रूप हैं,—जग-जीवन के पोषक पूरक।

श्री शोभा आनन्दमयी वह सृजन शक्ति ही
नित्य प्रवर्तरत होती रहती नव रूपो म—
विश्व विधात्री, मगलमयी, अनन्त चेतना।

पाँचवाँ
यही सत्य है युग-परिवतन की क्रीडा का,
यही सत्य, जीवन की नित अभिनव लीला का।
चिर विकास प्रिय, चिर सक्रिय है जग जीवन की
अमर चेतना, जो युग-युग म नव रूपो मे
अभिव्यक्ति पाती जगती के व्यापारो मे।
देश जाति गत मूल प्रकृति का अनुशीलन कर,
वस्तु परिस्थिति के अनुरूप हमे नव युग के
आदर्शों की प्रतिमा निर्मित करनी होगी
वाह्य विरोधो म भर अन्त साम्य, समन्वय।
ध्वस हो रही आज मान्यताएँ युग-युग की,
निखर रहे फिर सूक्ष्म शिखर नव आदर्शों के,
सजन प्राण मानव मन को उनके प्रकाश को
मूर्तिमान करना होगा नव युग जीवन म,—
मानवीय सस्कृति म सयोजित कर उनको
युग विप्लव म नव्य सचरण को सचेष्ट कर।

शिल्पी
यही प्रश्न है आज कला के सम्मुख निश्चय,
जो दुसाध्य प्रतीत हो रहा कलाकार को
वहिरन्तर की जटिल विषमताओ म उसको
नव समत्व भरना होगा, सौन्दय सन्तुलित।—
मानव उर की वशी म नव स्वर सगति भर,
भावपूर्ण कर निखिल अभावो के जीवन को।
नव्य सजन की कृच्छ् व्यथा से पीडित कब से
कलाकार का हृदय विकल है नव जीवन की
प्रतिमा अकित करने को सर्वांग पूर्णतम—
जनयुग की निमम पाषाण शिला के उर मे।—
महत प्रेरणा का आकाक्षी है युग मानव।

पाचवाँ
कलाकार के योग्य महत्त्वाकाक्षा है यह।
आज विश्व के कोने-कोने म जागृति की
सूक्ष्म शक्तिया काय कर रही जन के मन मे,
जो प्रच्छन्न अभी है निश्चय ही भविष्य मे
नव्य चेतना विचर सकेगी जन धरणी पर
नव जीवन की शोभा गरिमा मे मूर्तित हो।
व्यथ मनुज बाहर के मरु मे उसे खोजता
अन्तरतम मे स्रोत छिपा जो अमृत सत्य का,
अन्त सलिला धारा ही मे अवगाहन कर
युग मरीचिका से विमुक्त होगा मानव-मन —
आवाहन करती युग आत्मा नव प्रकाश का।

(नेपथ्य से वाद्दित सगीत के स्वर)

गीत

नव प्रकाश बन आओ !
जीवन के घन अंधकार को
ज्योति द्रवित कर जाओ !

अंत स्मित हो मानव का मन
शांत विश्व जीवन संघर्षण,
नव स्वर लहरी में जन भू का
क्रन्दन करुण डुबाओ !

छाया मृत आदर्शों का तम,
छाया जड़ भौतिकता का भ्रम,
अंध वीथियों में जन मन की
नव किरणें बरसाओ !

घृणा द्वेष को प्रीति ग्रथित कर
महानाश में अमृत स्रवित कर
अविश्वास को चिर प्रतीति में
परिणत कर मुसकाओ !

विश्व ग्लानि में नव्य रूप धर
श्री शोभा स्वर्णिम समत्व भर
जन धरणी में, जन जीवन में
मन का स्वर्ग बसाओ !

शून्य वेणु उर में नव स्वर भर
मूक व्यथा हर, नव मुरली धर
अभिनव श्री सुषमा गरिमा में
धरणी को लिपटाओ !

तृतीय दृश्य

[शिल्पी का कला कक्ष शिल्पी पर्दे की ओट में अपनी अधूरी प्रतिमा का निर्माण करने में संलग्न है। उसकी शिष्या एक ओर बैठी हुई हथियारों में धार चढ़ा रही है।]

शिल्पी (प्रतिमा का निरीक्षण करते हुए)
नयी सभ्यता जन्म ले रही आज धरा पर,
क्षुद्र विभेदों, घृणित निषेधों की जगती के
पुन संगठित संयोजित कर जन मंगल हित
नव भू जीवन के मांसल शोभा सौष्ठव में !
उद्वेलित हो रहा धरित्री का उपचेतन
गरज रहा युग आंदोलित जन जीवन सागर
नव आशाऽकांक्षा के शिखरों में लहराकर,—
अतल मग्न करने जड़ धरणी के पुलिनों को !

दौड रहा भूकम्प चेतना के भुवनो मे,
घ्वस हो रहा विगत मन सगठन मनुज का,
भू लुण्ठित हो रहे सौध गत आदर्शों के
छिन्न-भिन्न हो रही रीति नीतियाँ युगो की
टूट रहे विश्वास ग्रथ तारो-से हतप्रभ
विगत युगो के मान चित्र को मिटा धरा के !

ऐसे विश्वक्रान्ति के युग मे अन्तनभ मे
ज्योतिमय किरणो की रेखाग्रो से मण्डित
एक मनोरम दिव्य मूर्ति प्रस्फुटित हो रही
नव भावो की स्वर्ण शुभ्र शोभा म वेष्टित !
जन मन के स्वप्नो से कल्पित उसके अवयव,
निखिल विश्व की आकाक्षाग्रो से स्पदित उर,
प्रीति मौन निस्तल करुणा से द्रवित विलोचन,
गात, सौम्य आनन श्री,—जिसकी पावनता के
अमृत स्पर्श से दीपित हो उठता जीवन-तम !
चिर कल्याणमयी, आभादेही वह धीरे
प्रकट हो रही अन्तरिक्ष मे अतमन के,
नव जीवन की महत् कल्पना सी मूर्तित हो,—
निखिल विषमताग्रो म भरने स्वर्ण समन्वय !
शिला फलक म अकित करना आज शिल्प को
रश्मि रेख उस नव्य चेतना की प्रतिमा को,
मृण्मय अगो मे सँवार दग सूक्ष्म स्वप्न को !
किंतु हाय, भू जीवन की निमम वास्तवता
बाँध नही पा रही मनुज आत्मा का वैभव,
मिट्टी की जडता विरोध करती प्रति पग पर
नव प्रकाश क शोभा स्पर्शों के प्रति निष्क्रिय !
कुण्ठित हो उठती फिर फिर उदभ्रान्त कल्पना !

शिष्या आप व्यग्र उद्विग्न हो रहे अपने मन मे,—
भला कौन-सी वह विदग्ध कल्पना रही है
जिसे आप साकार नही कर सके शिल्प म
अपने कला कुशल हाथो से? सदा सूक्ष्म से
सूक्ष्म भाव भी झलक उठे प्रस्तर के मुख पर !
मैं कहती हू, आप हृदय की धडकन को भी
प्रस्तुत कर सकते पाहन म, प्राण फूककर !

शिल्पी एक बार फिर प्रयत्न कर देखू बेटी,
वज्रप्राण पाहन यह सम्भव, द्रवित हो उठे !
युग युग के जड सस्कारो मे जडीभूत जो
जन भू के निश्चेतन का निष्प्राण शिला तट,
जिसके अणु परमाणु बँधे निमम घनत्व म
गत अभ्यासो के निष्क्रिय आलस से कुण्ठित,—

नव्य चेतना के सक्रिय स्पर्शों से उसको
पुनरुज्जीवित करना है नव मनुष्यत्व में।
(छेनी लेकर शिला को गढ़ने मे व्यस्त हो जाता है)

गीत

जन भू पर उतरो!
युग मन की पाषाण शिला को
करुणा द्रवित करो!

घृणा द्वेष से पीड़ित भू जन,
दैन्य निराशा से कुण्ठित मन,
युग विषाद को चीर, किरणमयि,
अन्तर में निखरो!

स्वप्नमयी, विहँसो पलको पर,
भावमयी, विलसो नव तन धर,
नव श्री सुषमा में मूर्तित हो
चिन्मयि अयि, विचरो!

जगती मन में छवि रेखाएँ
कँपती ज्यो शत दीप शिखाएँ,
जग जीवन की बाहो में बँध
उर का शून्य भरो!

खोलो हे, मुख का अवगुण्ठन
कब से अपलक तकते लोचन,
अन्धकारमय पथ ज्योतित कर
नव पदचिह्न धरो!

नव प्रतीति में कर उर गुम्फित,
नव आशा से जन मन कुसुमित,
भू की जड़ता को चेतन कर
जग का त्रास हरो!

शिल्पी (प्रतिमा को ध्यानपूर्वक देखते हुए)

आह, अन्त मे दृष्टि शून्य पाहन पलको पर
मूर्त हो उठा स्वर्ण स्वप्न मानव अन्तर का!
अवयव की रेखाओ मे साकार हो उठा
मानव आत्मा का अवाक् सौन्दर्य अकलुषित!
झलक उठी जन मानवता की भव्य कल्पना
विस्मय अपलक दृश्यपटी मे मूर्तिमान हो!
भू जन का उज्ज्वल भविष्य आँखो के सम्मुख
उदय हो उठा चीर युगो का अन्ध आवरण!
स्वर्गिक श्री सुषमा मे ही अवतरित शिला पर
मातृ कल्पना ने सजीव कर दिया दृश्य को!
ईश्वर, मेरा स्वप्न मनोरथ पूर्ण हो गया!

शिष्या (मूर्ति को देखकर साह्लाद)

जाग उठा पाषाण हृदय जीवन-चेतन हो,
युग-युग का जड मौन हो उठा गति से मुखरित!
कैसी जीवित भावपूर्ण प्रतिकृति उतरी है,
दर्पण पर बिम्बित हो तद्वत निखिल दृश्यपट!
शिल्पकला निज चरम शिखा पर पहुँच गयी है,
प्रस्तुत यह आदर्श निदर्शन मूर्तिकरण का!
पट का जड व्यवधान हटा दूँ अब प्रतिमा से!

(पर्दे को हटाती है)

कलाकक्ष हो उठा नवल गौरव से मण्डित!
लो, मुहूर्त ज्यों देख, आ रहे दर्शकगण भी!

(दर्शकों का प्रवेश)

एक अभिवादन! क्या पूर्ण हो गयी कला सृष्टि वह?

शिष्या उधर देखिए, कलाकक्ष के मध्य भाग मे
शैल शिखर ही शिल्पकला के पंख मारकर
उडने को उद्यत है नव चेतना स्वर्ग मे!
मैं अब तक संवरण न कर पायी निज विस्मय!

दूसरा आप सत्य कहती हैं यह आश्चर्य है महत्
शिल्पकला का! मुग्ध दृष्टि अनिमेष हो उठी!
जन मन का सागर हो जीवन हिल्लोलित हो
घनीभूत हो गया अलौकिक दृश्यपटी मे!
गति से, अविरत गति से स्पन्दित लगता पाहन,
अविरत गति ही सूक्ष्म रूप हो जैसे जड का!
मौन हाथ लग रहा मुखर जीवन शोभा का,
युग आवेशो से आन्दोलित लगती प्रतिमा!
दीप्त मुखो पर खेल रहे शत भाव हृदय के,
दृढ अंगो मे फलीभूत-सी शक्ति स्फूर्ति नव!
फूट रही युग जीवन की आशाऽकांक्षाएँ
जनगण के आनन से, नव गरिमा मण्डित हो!

(जनरव)

शिष्या अरे, कौन आ रहे इधर श्रमिको कृषको के
जननायक से? हृदय शान्ति का कम्पित करते
क्रुद्ध पुकारो से—

शिल्पी उनको आने दो बेटी!

(जन-समूह का प्रवेश)

एक स्वर हम भू की संगठित शक्ति है, हम धरती की
क्रान्ति भरी उठती पुकार हैं हम देखेंगे,
आप यहाँ स्वप्नो के सुन्दर नीड मे छिपे
कौन महत निर्माण कर रहे जनगण के हित!

दूसरा स्वर मध्य वर्ग की या अतृप्त वासना पूर्ति के

अध नग्न, कुत्सित, शृंगारिक चित्र गढ रहे ?,

तीसरा स्वर दु ख दैन्य से जजर जव जनगण का जीवन,—
कलाकक्ष मे बैठ, निभृत कल्पना स्वग मे,
आप व्यस्त हैं, यश की लिप्सा से प्रेरित हो,
निदय जड पापाणो को कल्पित करने मे,
आत्म भाव रत, जीवित जनता से विरक्त हो!
मधुर व्यजनो से कर अपनी उदर तप्ति नित
आत्मा के हित खाद्य खोजते आप निरन्तर,
ललित कलाओ से पोषण कर अपने मन का,
सस्कारो की शोभा मे उसको लपेटकर!

दूसरा स्वर किन्तु, अन्न न उपजाते जो हम धरती से लड,
गढते बहु प्रासाद, भवन, कदम मे सनकर,
हमे चाहिए क्या न मधुर आत्मा का भोजन?
क्षुधापूर्ति करते है यदि हम सभ्य जनो की,
उन्हे चाहिए, भाव पूर्ति वे करे हमारी,—
हमे सभ्यता दें बदले म, और कला को
जन उपयोगी मधुर देन से जन के मन को
नव जीवन शोभा मे वेष्टित करें! किन्तु उफ,
अन्न वस्त्र का भी अभाव है हमको! यद्यपि
हम ही अपने भुजबल से उत्पादन करते,
श्रान्ति स्वेद मे लथपथ, पालन करते जग का!
यही सभ्यता क्या इस युग की? यही न्याय है?

चौथा स्वर कहाँ खोजते न्याय यहाँ? हम जो धरती के
प्राकृत शिल्पी हैं, जो भू के निमम उर को
जीवन हरियाली मे प्राण प्ररोहित करत,
अपने अनगढ कर कौशल से,—कल को हम ही
जन मन के शोभा शिल्पी भी होगे निश्चय,—
हम म उपजेंगे भावी स्वप्नो के स्रष्टा,
नवल प्रेरणा स्पर्शों से रोमाचित अन्तर,—
नव विकसित मस्तिष्को हृदयो के वैभव स
धरा चेतना को उवर करने मे सक्षम!
लोक नियति निमायक, जाग्रत् कलाकार बन
हम दरिद्रता को कर देंगे भू निर्वासित!

शिल्पी यही जनोचित स्वाभिमान है कला चेतना
लोक जागरण की कब से कर रही प्रतीक्षा!
कला अभी तक सकेतो का सृजन कर सकी,
उसे वास्तविकता बनना है भू पर व्यापक!
स्वागत करता हूँ मैं जन का! आप देखिए,
मेरी नूतन प्रतिमा जन मन की दपण है!

दशक इधर किसान खडे हैं, धरती के प्रतिनिधि-स,
स्वण शस्य डाली सिर पर धर उधर श्रमिक हैं
नवयुग जीवन के निर्माता, हृष्ट पुष्ट तन,—

निज बाँहा में भूगोलक को लिये गेंद-सा।
पैरो के नीचे उद्वेलित जीवन सागर
युग सघपण, जन आकाक्षा का द्योतक है !
ऊपर जैसे नव आशा का क्षितिज खुल रहा
मौन ममरित पल्लव दल के अतराल से।

जननायक चमत्कार है निश्चय अद्भुत शिल्पकला का।

दर्शक ये अजेय हल बैल, लोक जीवन के सम्बल,
जो धरती की निमम जडता को विदीण कर
प्राण प्ररोहो मे पुलकित करते भू का उर !
यत्र शक्ति है उधर, प्रगति सूचक नव युग की,
इधर हथौडा विश्व विपमता चूण कर निखिल
नव समत्व भर रहा विरोधो म जीवन के।

जन गीत

जन धरणी का बल है हल,
जन - मन का सम्बल है हल।
साथी सजग हथौडे हँसिया
जिसके कमठ कला कुशल।
पृथ्वी का पैगम्बर बन हल आया,
नवल सभ्यता का प्रभात सँग लाया,
हल ने चीर जमी का सीना
मानव का घर - द्वार बसाया।
स्वण धरा का बल है हल
जनता का सम्बल है हल,
साथी सबल हथौडे हँसिया
जिसके कमठ, कला कुशल।
लौह नियति को ठोक-पीटकर प्रतिक्षण
घन ने निर्मित किया महत जग जीवन,
लुन-लुनकर नित शस्यो के स्वर्णिम कण
हँसिये ने हस भरा भाड म भूधन।
कठिन तपा का फल है हल,
प्रथम कलो की कल है हल,
जीवन की रोटी, धरती का
राजा, अटल अचल है हल।
मातभूमि का बल है हल,
जनगण का सम्बल है हल,
भाई सगे हथौड़े हँसिया
जिसके कमठ कला कुशल।

दर्शक धय हो उठा कला कक्ष इस जन उत्सव से।

(प्रतिमा को लक्षित कर)

काल चक्र यह घूम, नव्य युग परिवतन को
सूचित करता अन्तरिक्ष मे नव युग का रवि

उदय हो रहा जिसकी स्मित किरणो से मण्डित
धरा स्वर्ग के मध्य खडी गोलार्ध सेतु पर
नव्य चेतना की प्रतिमा शोभित है निरुपम !
स्वर्ण शालि वह लिये वाम कर म, दक्षिण कर
अभय दान दे रहा वरद मुद्रा मे उठकर,—
विजय ध्वजा-सा अचल फहरा रहा क्षितिज म !
नीरव करुणा ममता से स्पदित वक्षस्थल
दिव्य शान्ति है बरस रही स्मित मुख मण्डल से,
ध्वस भ्रश हो रूढि रीतियो के जड बधन
चरणो पर हैं पडे छिन्न शृखला कडी-से !

शिल्पी लोक मोहिनी विश्व शान्ति की मनोमूर्ति यह
अभिनव श्री शोभा गरिमा म जाग रही जो
धरा क्षितिज पर, जग जीवन के वपम्यो को
निखिल समन्वित करने निज निसीम वक्ष मे !
शाश्वत करुणा यह, जिसके प्रिय सकेतो पर
अमर प्रेरणाएँ झरती रहती धरती पर,
नव नव आदर्शों म, मूल्यो म कल्पित हो !
आज बहिर्मुख बिखरे जन - भू के जीवन को
अत केंद्रित, अन्त सयोजित कर फिर से
नव समत्व मे बाँध रही वह जीवन मासल
ऊर्ध्वग व्यापक लोक - चेतना म विकसित हो !
मानव केंद्रिक है जीवन का सत्य चिरतन,
मानवीय महिमा मे मूर्तित हो स्वर्गोपम,
युग जीवन के अधकार को अमृत स्पर्श से
नव प्रभात म बदल रही वह स्वर्णिम चेतन !

कुछ स्वर निश्चय, यह जन के मन मन्दिर की प्रतिमा है,
जन आकाक्षा की प्रतीक, जन जीवनमय है !
सामूहिक चेतना हो उठी मूर्तित इसमे,
शक्ति स्फूर्ति विश्वास भरेगी यह जन मन म !
हम इसके हित प्राणो का बलिदान करेंगे,
भू जीवन मे प्राण प्रतिष्ठित कर इसकी छवि
निज कर्मों मे मूर्त करेंगे इसका वैभव !—
युग-युग तक गायेंगे जनगण इसकी महिमा !

वक्ता विश्व शान्ति की अमर चेतना की चिर जय हो !

कुछ स्वर नव युग जीवन की शोभा प्रतिमा की जय हो !

वक्ता युग निर्मम पाषाण शिला म जिसने अभिनव
प्राण भर दिये निज शाश्वत अन्त प्रकाश से,—
जग जीवन की मात चेतना की चिर जय हो !

कुछ स्वर लोक शक्ति की जय हो, नवयुग श्री की जय हो !

समवेत गीत

जयति जयति मातृ मूर्ति,
शान्ति चेतन !

जयति लोक शक्ति, लोक
मुक्ति केतन !
नव युग जीवन प्रभात
निखरी तुम ज्योति स्नात,
स्वर्ण रश्मि स्फुरित गात,
भास्वर वदने !
धरा रुदन बना गान
हृदय स्वप्न मूर्तिमान,
गूंज उठे मूक प्राण
जन दुख शमन !
सफल हुए योग ध्यान
सफल भक्ति कर्म ज्ञान
खिले मनस् कमल म्लान
भव तम प्रशन !
रुद्ध भाव हुए मुक्त
मानव मन प्रीति युक्त
शान्त रक्त पंक युद्ध
गति प्रिय चरणे !
बरस हिम शुभ्र शान्ति
निखरे फिर दिव्य कान्ति,
भू - मन की मिटे भ्रान्ति
जनगण शरणे !

ध्वस-शेप
(नव जीवन-निर्माण का स्वप्न)

वृद्ध
युवती
पुरुष
प्रकृति
नागरिक
सैनिक
द्रष्टा
प्रतिनिधि

प्रथम दृश्य

[विस्तृत राजमार्ग डके की चोट के साथ ध्वनिपूरकों (लाउड-स्पीकर) द्वारा राजघोषणा हो रही है। एक ओर से कलावृद्ध का प्रवेश, जो शांति का-सा प्रतीक लगता है। वृद्ध, ध्वनिपूरकों के घोष से त्रस्त होकर, कानों पर हथेली दिये, राजमार्ग के किनारे एक बडी-सी कोठी के अहाते मे घुस जाता है।]

(राजघोषणा)

शान्त रहो हे भू-जन, व्यर्थ न धैर्य गँवाओ,
विश्व युद्ध की आशंका मन म मत लाओ!
आतंकित मत हो जो जन मे भूठा रण भय
मिथ्या जनरव फैलायेंगे, राजाज्ञा से
दण्डित होंगे सावधान सब जन हो जाओ!
शान्त रहो हे, थोथी अफवाहे न उडाओ
राजाज्ञा यह, सब जन सावधान हो जाओ!

(डके की चोट)

वृद्ध (कमरे मे प्रवेश कर)
कहाँ आ गया हाय, न जान, राह भूलकर
भटक गया बाहर के जग मे! ठीक कहा है,
भूल भुलय्या यह दुनिया! धोखे की टट्टी
नयी सभ्यता! इह ससारे खलु दुस्तारे
कृपया पारे पाहि मुरारे! भज गोविन्द,
भज गोविन्द, गोविन्द भज मूढमते! अह,
जाने कैसी धूम मची है राजमार्ग म!
बहरा हो जाऊँगा मैं, इन ध्वनि-यन्त्रो के
विकट नाद से, विस्फोटक से फूट रहे जो!

युवती (उठकर)
शान्ति! युद्ध का भय फैलाते आप नगर मे
विस्फोटक के फटने का मिथ्या प्रचार कर
दण्डनीय अपराध हो चुका है यह घोषित
राजाज्ञा से!

वृद्ध (घबराकर)
क्षमा करें अपराध देवि, मैं
बाहर के कोलाहल से मन मे घबडाकर
अनुमति लिये बिना ही अन्दर घुस आया हूँ!

धक्-धक् करता हृदय नगर की रेल-पेल सा!
उफ, कैसा जन आन्दोलन, कैसी हलचल है!
यही हाय, नागरिका का सस्कृत जीवन है?

युवती (सहास्य)
वयोवृद्ध हैं आप, व्यथ या विचलित मत हो,
शान्त, सुस्थ हो, उधर बैठ जायें आसन पर!

वृद्ध (स्वस्थ होकर)
आप कौन हैं देवि, यहाँ मैं कहाँ आ गया?
समाचार पत्रो का कार्यालय है यह क्या?

युवती नहीं पिता, यह युग का मन है! वैसे इसको
कार्यालय ही समझें!

वृद्ध (साश्चय)
ईश्वर!

युवती विश शती की
नयी सभ्यता हूँ मैं, जिसके सकेतो पर
निखिल विश्व जन नाच रहे हैं मन्त्रमुग्ध हो!

वृद्ध (विस्मय विमूढ़)
क्या कहती हो बेटी, यह क्या युग का मन है?
टूट फूटे, दीमक के खाये खाना का,
धूल भरे गन्दे कागज पत्रो मे लिपटा,
कटे-छँटे अखबारो के पन्नो-सा बिखरा,
बडे-बडे खातो, भारी भरकम पोथो से
भरा ठसाठस, युग का मन है? रीढ झुकाये
जीर्ण पुलिन्दो के बोझा से!! सच कहती हो?
अस्तव्यस्त, कूडा कचरा यह युग का मन है?

युवती पिता, यही युग का मन, युग मानव का मन है!
आप वृथा आश्चय मत करें!

वृद्ध (सिर हिलाकर) सवनाश है!!

युवती इसे अजायबघर समझें या चिडियाखाना!
इसके सँकरे खाना मे प्रतिदिन की चौडी
घटनाएँ हैं ठुसी हुई, सब छोटी-मोटी
देश विदेशो की,—धरती, आकाश, सिन्धु की!
जग के क्रिया कलापो का भण्डार यह वृहद्—
आप इसे गोदाम कहे या कूडाखाना!

(वृद्ध सिर हिलाता है)

पर, म जीवन की कुरूप कटु वास्तवता का
इसमे निमम परिचय सचित है दिग व्यापक!
जीवन सघषण का तीखा कडुआ अनुभव,
रूढि वृद्ध युग युग का पथराया विस्मृत मन
बडे यत्नपूवक सरक्षित किया गया है

इन विपण्ण खानो मे जड श्रवसाद से भरे!
वृद्ध कैसा रिक्त प्रदर्शन थोथी बौद्धिकता का!!
युवती श्राग भयानक गूंज यहाँ जो सुनते प्रतिक्षण
समाचार यन्त्रों के हलचल की ध्वनि हैं वह,
वहन कर रहे जो सम्वाद विविध देशों के,
मनुज नियति पर दाँत किटकिटा क्रोध खीझ से!
वायु मार्ग से, सिंधु मार्ग से, भूमि मार्ग से
निखिल विश्व जीवन का मन का स्पन्दन कम्पन
अविरत वाहित हो, आन्दोलित करता रहता
आज पराजीवी मनुष्य के आहत मन को,—
जर्जर जो हो रहा सतत विद्युत दंशन से!
वृद्ध (रुआँसे स्वर मे)
हाय, अभागे मानव की ऐसी विडम्बना!!
युवती भू विस्तृत हो गया, पिता, मानव का अन्तर,
उसे ज्ञात अब रूस, चीन, जापान मे कहाँ
क्या क्या है हो रहा, विविध भू के भागों मे!
अब लन्दन, यूयार्क पैठ खानों के भीतर
भनभन करते रहते बर्रों के छत्तों से,—
पेकिंग मास्को सब ओठों पर हैं जन जन के—
धरा आमलक-सी करतल मे सभ्य मनुज के!
वृद्ध क्या कहती, बेटी, ये दुमुख कलें निरंतर
घृणित जन्तुओं-सी विषमय फुफकार छोड़ती?
भुनगों-सी भुनभुना दादुरों-सी टर्रा कर!
युवती विद्ध पक्षियों-सी ये अपने पंख छटपटा
आर्तनाद करती सब माथा ठोक-पीटकर—
कँप-कँप मन मे मानव मन की निर्दयता से!
ये कहती हैं पिता, आज सब देश धरा के
लोक सभ्यता की, संस्कृति की, मानवता की
उच्च पुकारें लगा, लौह आवरण डालकर
शुभ्र शान्ति की छद्म ओट में महाप्रलय का
खर ताण्डव रच रहे भयंकर अणु दानव को
पाल-पोसकर, समर संगठित कर जन-बल को!
वृद्ध (अनुताप से)
अहा, आसुरी हाथों मे पड गयी शक्ति फिर!!
युवती विगत युद्ध मे प्रजातन्त्र की रक्षा के हित
जूझे थे नृ राष्ट्र, रक्त मे ध्वजा डुबाकर,
दर्प दलित करने दुर्मद फासिस्त शक्ति को,
और सदा के लिए समापन करने रण को!
किन्तु आज सब जन मंगल के आकांक्षी बन
विश्व शान्ति के हेतु दीखते आकुल उद्यत,
और बढाते जाते सैनिक शस्त्रों का बल,—
अणुबम के, अतिबम के बिना विजय मोदक वह!

आज शान्ति के पीछे पागल है अशान्त जग ।।

वृद्ध देख रहा हूँ बेटी, मैं मन की आखो से
अनति दूर, भीषण धूमिल दृग क्षितिज जगत का।
कृष्णकाय पखो में उडकर चला आ रहा
महानाश का घन भू पर शोणित बरसाता ।।
शात पाप हो जग के! मेरे वृद्ध उदर मे
अवचेतन का गह्वर कभी उमड उठता है।
पर मानव शासक है भू की अन्ध नियति का
पिघला सकता लौह वज्र की निममता वह
और बदल सकता भू पथ जीवन प्रवाह का।
देख रहा मैं, दैत्याकार प्रलय का बादल
उदय हो रहे स्वण बिम्ब पर मद मोहित हो
दौड रहा है उसे लीलने, किन्तु साथ ही
उसकी स्वणिम आभा मे चेतना द्रवित हो
युग प्रभात की नव शोभा मे सुलग रहा है।
समझ रहा हूँ मैं युग के कटु सघषण को
ऊध्वग समदिक सचरणा के बीच छिडा जो
आज धरा मे, भौतिक आध्यात्मिक विप्लव बन।
ध्वस्त हो रही जीण मान्यताएँ जन मन की,
बदल रहा जग जीवन के प्रति दृष्टिकोण अब,
छँटता जाता भय सशय का घना कुहासा,
जन्म ले रहा मनुष्यत्व नव अन्तरिक्ष मे,—
मनुज जाति को भू जीवन का नव वर देने।
विजयी होगा मानव यान्त्रिक युग दानव पर,
नवल वास्तविकता निखरेगी भौतिकता से —
नव आध्यात्मिकता का स्वर्णिम सजीवन पा।

युवती पिता, आपके वचनो को सुन कँप उठता मन,
और हृय गदगद हो उठता कातर अन्तर।
रक्त स्वेद के पक म सनी आज मनुजता,
ज्ञात नहीं, कब होगा भू पर वह स्वर्णोदय।

वृद्ध नियत समय पर सब कुछ हो जायेगा बिटिया,
निकट आ रही धीरे अब निर्दिष्ट घडी वह,
जो मानव अन्तर म कब की जन्म ले चुकी
धय धरो, सब मगल होगा। अच्छा, बेटी,
अब मैं जाता हूँ, थोडा विश्राम करूँगा।
(वृद्ध का प्रस्थान)

(राजमाग पर नगाडे की चोट के साथ दूर स आते हुए राज घोषणा के स्वर सुनायी देते हैं।)

शान्त रहो हे भू-जन, व्यथ न धैय गँवाओ,
विश्व युद्ध की आशका मन मे मत लाओ।
शान्त रहो सब, झूठी अफवाह न उडाओ,
राजाज्ञा यह सब जन सावधान हो जाओ!

१४

द्वितीय दृश्य

[विप्लवसूचक भीम करुण वाद्य सगीत एक विशाल नगर का खंडहर नेपथ्य मे अणु विस्फोटको के फटने की भयानक ध्वनि पृष्ठभूमि के पट पर महाध्वस की विकराल छाया पडी है अग्नि की लपटो मे लिपटे रगीन धुएँ के बादल उमड रहे हैं सुदूर से वाहित गीत के समवेत स्वर, धीरे धीरे स्पष्ट होकर, सुनायी देते हैं।]

गीत

प्रलयकर हे,
डम डम डम डमित डमरु
दुदम स्वर हे!
दहक उठी नेत्र ज्वाल,
फुहुँक उठा उरस व्याल,
लहक रहा विष कराल,
भव भय हर हे!
उगल रहा अग्नि व्योम
रच रहा विनाश होम,
घुमड रहा तिमिर तोम
लहर हहर हे!
ध्वस शेष भू दिगन्त,
एक वत्त हुआ अन्त,
भार मुक्त अब अनन्त,
जग जित्वर हे!
भस्म स्वाथ कलुष शोक,
ध्वस्त नगर ग्राम ओक,
निखर रहे नव्य लोक
विश्वम्भर हे!
भौतिक मद हुआ चूर,
मानस भ्रम हुआ दूर,
चेतन म उठा पूर
शिव शिवतर हे!

(अन्तरिक्ष मे पुरुष और प्रकृति का प्रवेश पुरुष ज्योति रश्मियों से आवृत, प्रकृति इन्द्रधनुषी छाया से वेष्टित है।)

प्रकृति देख रहा दु स्वप्न हाय क्या धरती का मन!
महाध्वस-सा छाया कैसा घोर चतुर्दिक् ?
गहरा रही प्रलय की छाया जन धरणी पर
अँधियाली के डाल भयानक अध आवरण!
उद्वेलित हो उठा धरा चेतना सिंधु क्यो
प्लावित करने मन्न प्राण मन के पुलिनों को?
नील सरोरुह-सी कुम्हलाकर म्लान दिशाएँ
महाशून्य की पलका-सी मुद रही तमस म!

लील रहा घन अंधकार भयभीत ज्योति को,
छिन्न भिन्न कर किरणों के भीने सतरँग पट
धुँधली सी पड रही रूप रेखाएँ जग की
ढाँप रहा क्या विश्व ग्लानि से निज विपण्ण मुख ?
ध्वस भ्रष्ट हो रहे सघटन जड भूतो के
समाधिस्थ-सा आज हो रहा स्थूल जगत क्यो ।

(विप्लव सूचक वाद्य सगीत)

प्रलय बलाहक सा घिर घिर कर विश्व क्षितिज मे
गरज रहा सहार घोर मथित कर नभ को,
महाकाल का वक्ष चीर निज अट्टहास्य से
शत शत मारण निर्घोषो म प्रतिध्वनित हो ।
अगणित भीषण वज्र कडक उठत अम्बर मे
लप लप तडित शिखाएँ टूट रही धरती पर,
महानाश स्फिटिका रहा कटु लौह दन्त निज
विकट धूम्र वाष्पो के श्वासोच्छ्वास छोडकर ।
रँग रँग के लपटो की जिह्वाएँ लपकाकर
हरित पीत, आरक्त नील ज्वालाओ के घर
घुमड रहे विद्युत घोषो के पख मारकर
ज्वलित द्रवो के निर्झर बरसा अग्नि स्तम्भ म ।
धू धू करता ताम्र व्योम, धू धू जलती भू,
धू धू बलती दिशा, उबलता धू-धू सागर,
भभक रही भू की रज, दहक रहे गल प्रस्तर,
सुलग रहे वन विटपी, धधक रहा समस्त जग ।

(महाविध्वससूचक वाद्य सगीत)

अग्नि प्रलय क्या हाय, भस्म कर देगा मनु की
इस सुन्दर मानसी सृष्टि को, जिसे जल प्रलय
मग्न नही कर पाया दुस्तर महा ज्वार मे ।
विचर रही छायाकृतियाँ - सी कैसी भू पर ?
प्रेत लोक खुल गया आज क्या मर्त्य लोक मे ।
स्वप्न दृश्य से ओझल होते ग्राम पुर नगर,
चित्रित हो यह माया जग चल छाया पट पर ।
भूतो का पिण्डित घनत्व गल तडित स्पर्श स
धूम वाष्प बनकर विलीन हो रहा निमिष म ।
क्या स्मृति म ही शेष रहेगी ध्वस सृष्टि अब
दृश्य, स्पर्श, रस, गन्ध, शब्द गुण से विहीन हो ?
कसे आया महानाश इस प्रबल वेग स ?
हाय, कौन - सा महादस्य वह छूट नरक से
नष्ट भ्रष्ट करता निसर्ग को पदाघात स ।।

पुरुष महिषासुर तारक, वत्रासुर स भी भीषण
महाकाय यह अणु दानव उड रहा गगन म,
धूमिल देह फुला प्रचण्ड जलते वाष्पो की

किमाकार पावक के पवत - सी रोमाचक !
जड भूता की मूल शक्ति से अनुप्राणित हो
उगल रहा वह गलते द्रव्या के जलते घन !
निगत कर नथुनो से शत विषमय फूत्कारे
दारुण गजन स दिक् कम्पित कर अनन्त को !
शत शत तडित प्रपातो सा वह टूट व्योम से
रौद रहा जन भू को निमम लौह पदा से,
स्रस्त ध्वस्त कर क्षण मे जडभूतो के अवयव
चूण चूण कर अडिग भूधरो के दढ पजर !
मदोमत्त वह, विकट हास्य भरता दिग्दारक
महानाश का खर ताण्डव रच त्रस्त भुवन मे,—
विद्युत शूला स विदीण कर धरा वक्ष को
ध्वस भ्र श कर निखिल सृष्टि को महावेग स !
त्राहि त्राहि मच रही अवनि मे, गगन पवन मे,
त्राहि त्राहि कर रहे सकल जल थलचर नभचर
रुँध रुँध जाती आत उरो की भग्न पुकारें,
ध्वनि की गति से कही प्रखर है वेग दैत्य का !

(विप्लव गजन)

प्रकृति क्या होगा तब दव, हाय, इस भूत सष्टि का,
रूप रग रेखामय मेरी निरुपम कृति का ?
मुग्ध प्रेम के पलको पर सौ दय स्वप्न - सी
मोहित करती रही सदा जो स्वग लोक को !
विश्व प्रभव के सृजन हष से पुलकित होकर
सूक्ष्म स्थूल के छायातप को गुम्फित कर नित
जिसमे मैने अपने रहस कला कौशल से
सीमा म नि सीम, अचिर म बाधा चिर को,
मृत्यु तमस मे गूथ अमरता के प्रकाश को
चेतनता को अथ ध्वनित है किया शब्द मे !
अपने उर के रक्त दान स जिस निसग को
युग युग से अविराम स्नह श्रम से सिंचित कर
विकसित मैंने किया नित्य नव श्री सुषमा म
रूप गुणो के सतरँग ताने-बाने भरकर !

(सृजन आन द द्योतक वाद्य सगीत)

कैसे प्रहसित हुई नीलिमा मौन गगन की,
धरती को रोमाच हुआ कब हरियाली म,
कैसे नाच उठी सागर उर म हिल्लोलें,
अवचनीय है मम कथा उस रहस सृजन की !
मुझे याद है सुधा कलश - सा पूर्ण चन्द्र जब
रजत हष स छलक उठा था प्रथम उषा के
मुख पर सहसा जब लज्जा की लाली दौडी,
इन्द्रधनुष का सेतु टगा जब फेनिल नभ म !

अभी-अभी तो फूलो के अपलक दृग अचल
आकाक्षा से रँगे स्वप्न भावनावेश म,
समा सकी प्राणा की आकुल सुरभि न उर म,
कोयल का आवेश स्वरा म फूट पडा दात।

(करुण वाद्य सगीत)

कैसे म अमरो की इस प्यारी ससति का
देख सकूगी करुण ध्वस आसुरी शक्ति से,
जिसको मन मा की मदु ममता क्षमता स
सतत सँवारा निज अ तर के निभृत कक्ष म।
तडित् कोप से विघटित हो भौतिक विधान सब
वाष्प धूम बन तितर बितर हो रहा शून्य मे,
खौल रहा अणु विगलित जड द्रव्यो का सागर
सूय खण्ड ज्यो टूट धँस गया हो धरती मे।
उमड रहे दुग ध पूर्ण उच्छवास विपले
धरा गभ की अग्नि फूट आयी है बाहर,
गूज रहा अह, महामृत्यु सगीत चतुर्दिक्
चकाचौध मे बिखर रहे नक्षत्र पुज हो।
उमड रहे दैत्यो - से भूधर धरा गभ से
हिल्लोलो से उठ गिर, क्षण भर मे विलीन हो।
महा प्रबल अणु के विघात से दीण धरित्री
खण्ड-खण्ड हो रही रिक्त मिट्टी के घट सी।

(विश्व प्रलयसूचक वाद्य सगीत)

कैस हाय, रहेगा विद्युत ताडित भू पर
कोमल मासल, शोभा देही दुबल जीवन,
जिसके मुख पर खेला करती मुकुलो की स्मिति,
चितवन मे पलती ओसो की मौन सजलता,
जिसके उर म स्वग धरा का चेतन वैभव
क्रीडा करता रहस भावनाओ मे दोलित।

ओ जीवन सौदय, जहा तरु के पत्ते भी
झरते नित शाश्वत सुख की नीरव गति लय मे,
निज नयना मे मूद विश्व की श्री सुदरता
स्वप्नालस पलका स झँप झँप, प्रम मग्न हो।
ओ विराट् सौदय, निभत जिसके अन्तर म
दात रवि शशि तारायह शोभा स्पदित रहते,
उषा झाँकती खोल स्वण वातायन नभ का,
रजत चद्रिका शुभ्र शाति बरसाती भू पर।
हाय, आज क्या विधि के निष्ठुर भ्रू विलास से
मुरभा जाओगे तुम अममय धूलिमात् हो ?
जीव जगत की, मनुज लोक की दुलभ शोभा
लुप्त निखिल हो जायगी कटु काल गभ म ?

जीवन की चेतना नष्ट हो जायेगी क्या
निश्चेतन के अप्रकेत तम म विकीर्ण हो ! !
किसने ज`म दिया इस दुमद अणु दानव को,
कौन वज्र की कोख रही वह विश्व घातिनी ?
किसने दिक सहार बुलाया जन धरणी पर,
कहो, कौन वह नारकीय, भू जीवन द्रोही ! !

पुरुष कातर मत हो प्रकृति, तुम्ह यह मर्त्यों की सी
करुण क्लीवता न`ी सुहाती, शा`त करो मन !
भूत प्रलय यह नही, मात्र यह मन क्रान्ति है,
आरोहण कर रही सभ्यता नव शिखरों पर !
अ`तमन की ही विभीपिका वाह्य जगत पर
प्रतिबिम्बित हो रही भयावह, भाव प्रताडित
भौतिक अणु यह नही, दलित मानव आत्मा का
`याय कोप ही टूट रहा पावक प्रपात सा
जीर्ण धरा मन के खँडहर पर, जो युग युग से
मनुज द्वेष की घृणित भित्तियो मे विभक्त है !
आज युगो के रुद्ध मूक मानव अ`तर का
विकट नाद ललकार रहा निज मनुष्यत्व का,
सघपण चल रहा घोर मानव के उर म
यह विराट् विस्फोट उसी का राम दूत है !

(स्वार्थ, लोभ आदि की बौनी कुरूप छायाकृतिया कुत्सित चेष्टाओ का अभिनय करती हैं जिनके ऊपर एक विराट् घन की छाया झूलकर, चोट करती है।)

मानव ही है सर्वाधिक मानव का भक्षक,
भौतिक मद से बुद्धि भ्रान्ति युगजीवी मानव
दानव बनकर आत्मघात कर रहा अ`ध हो !
`ोपक शोपित मे विभक्त अब युग मानवता,
जाति-पाँति मे, वग श्रेणि मे शतश खण्डित,
धनिको का श्रमिको का, धन वल का जन वल का
यह अन्तिम दुधप समर है विश्व विनाशक —
सामूहिक सहार तिक्त विपफल है जिसका !
जाग रहे है आज युगो के पीडित शोपित
`न्य दु`ख के जड पजर, नव युग चेतन हो
कम कुशल जग जीवन के श्रमजीवी शिल्पी
लोक साम्य निर्माण हेतु सब एक प्राण हो !
टूट रही वह लौह शृखलाएँ जनगण की
भू रज जीवी पावक कण हो रहे प्ररोहित,
आज रुद्र निज अग्नि चक्षु फिर खोल प्रज्वलित
भस्म कर रहे भू का कलमप दृष्टि ज्वाल से !
अवचेतन के मनोज्ञान से पीडित मानव
अवरोहण कर रहा तिमिर के अतल गत म,

यन्त्रो की आसुरी शक्ति से जन का अतर
बिखर रहा जीवन प्रमत्त हो बहिर्जगत मे।
रूढि रुग्ण नैतिकता से आक्रात चेतना
देख नही पा रही प्रगति का पथ दिग्भ्रम म
मानव का ही हृदय क्षोभ अणु विस्फोटक बन
महानाश का आवाहन कर रहा धरा पर।
सस्थाओ मे वज्र सगठित इधर क्षुधा है,
उगल रहा है उधर काम अवचेतन का तम,
क्षुधा काम से दीण शीण हो लोक चेतना
आरोहण के विमुख, भटकती अधोमुखी हो।

(सभ्यता का विनाशसूचक वाद्य सगीत)

देखो प्रिय, विराट भीष्म सौदर्य नाश का,
अद्भुत श्री शोभा है दारुण महाध्वस की
महा व्याल सा शत सहस्र फन तान गगन मे
महानाश फूत्कार भर रहा वज्र घोष कर।
गरल फेन के उगल लहकते धूमिल बादल
महामृत्यु के कुण्डल मार दिशाओ म वह
भाड रहा युग केंचुल भीषण अ धकार की।
शत शत दावाएँ बडवानल की ज्वालाए
चाट रही गह्वरो, गिरियो, सागर लहरो को,
सुरँग स्फुलिंगो की फुहार मे भू को विखरा,—
भर भर पडता तडित चकित हो तारापथ ज्यो।
घोर ववण्डर, प्रवल प्रभजन अट्टहास भर
पख अश्व दैत्यो से उडकर, निखिल भवन को
कुचल रहे निज नत्य मत्त उद्धत टापो से।
धुध धूल बन निखिल भून घूमते प्रलय के
विकट भँवर मे चक्राकार घुमड अम्बर म।
उछल रहे पवत क दुक से मूल भ्रष्ट हो,
कँपते अगद चरण, खिसकते गव शिखर गिर,
फूट रहे निर्भर निपात शत तडित ज्वलित हो,
विगलित प्रस्तर खण्डो के वाष्पो से फेनिल।
उमड रहा अम्बुधि शत फन जल स्तम्भो मे उठ,
हिल्लोलो पर कल्लोले करती आरोहण,
वाष्प धूम बन छिटक रहे सतरँग जल के कण
स्फीत सीकरो मे, सपक्ष सर्पों से लोडित।
भूमि कम्प शत दौड रहे क्षत धरा-वक्ष पर
शिला अस्थियो को, मासल रज को बखेरते,
फट फट पडती ज्वालामुखियाँ विकट घोष कर
द्रवित रक्त मज्जा उडेलती धरा उदर से—
हृदय क्षोभ ज्यो उगल उँवालो म, वमनो म
थूक रही हो नभ के मुख पर घोर घृणा स।

अणु लपटें फुफकार भरी जीभें चटकाकर
आत्मसात् कर रही पदार्थों के तत्वों को,
ज्वलित द्रवों से पर्वत टूट रहे पृथ्वी पर
गहरे गर्तों में विदीर्ण कर धरा वक्ष को।
सिंह गुहाओं में दहाड़ते महाआर्त से,
गज चिंघाड़ते जल सीकर बरसा सूंडों से,
दीप्त धूम्र शृंगों से आहत ऋक्ष कूदते,
गिर गिर पड़ते विहग, रुदन करते कपि कँप कँप।
विचलित मत हो प्रिये, संवरण करो दया को,
यह केवल दुःस्वप्न मात्र है युग के मन का,
तुम त्रिकाल दर्शिनी शक्ति हो मेरे उर की,
देख रही हो केवल सम्भावित भविष्य को।
अविनाशी हैं तत्व अखिल, अविनाशी है हम,
अविनाशी है अमर चेतना क्षर जीवों की,
नाश नहीं होता विकास प्रिय अमृत सत्य का
मिथ्या का संहार अवश्यम्भावी जग में।
पुनः निर्मल नेपथ्य लोक में निज कौशल से
नवल सृष्टि तुम सृजन करोगी महाकाश से,—
पराशक्ति के महानन्द से अभिप्रेरित हो।
आओ हम तुम लय हो जावें अब परोक्ष में।

(अस्त व्यस्त वेश में सहसा भयभीत नागरिकों का प्रवेश)

दौड़ रहे शत प्रलय धरा का वक्ष चीरते,
रौंद रही लपटें पावक के भूधर पग धर,
टूट पड़े शत नरक, बरसते रुण्ड मुण्ड हत,
छूट गये रौरव के भूत पिशाच प्रेत हो।
कड़ कड़ करते क्रुद्ध वज्र, फट फट पड़ते सिर,
रक्त मांस मज्जा उड़ते क्षण धूम भाप बन—
फूट गया पृथ्वी के भीषण पापों का घट।।

लुंज पुंज मांसल तन पल में होते ओझल,
चटक अस्थि पंजर क्षण में मिलते भू रज में।
तन्तु-जाल सी त्वचा सिहरती झुलस ताप से,
छिन्न पसलियाँ, छितर टहनियों-सी पतझर की,
चरमर जल उठती पल में शत मोम शिखा सी।
चीत्कारें करती चीत्कारें छूट कण्ठ से,
गूंज प्रतिध्वनियों-सी, तत्क्षण देह मुक्त हो,
बाल वृद्ध स्त्री पुरुष युवक अगणित निरीह जन
निर्मम वेदी पर चढ़ते दारुण विनाश की।

महामृत्यु मुंह फाड़ भयानक नरक गुहा सा
निगल रहा भू को, साँसों में खींच मशक-सी—
औंधे मुंह गिर नगर लोटते धरा गर्भ में,

गर्तों मे धँस, उछल स्फीत धूमिल शिखरो म !
छायाओ से कँपत उडत—दृश्य पुरा के,
भस्म शेष प्रासाद दीखते खडे यथावत्,—
घूम रहे भू प्रा त, भँवर मे पडी नाव से !
छायी घोर तुमुल विभीषिका जन धरणी पर
बरस रही पावक धाराएँ रक्त मूय स !
भय, विभीत हो रहा भयकरता से अपनी,
भगदड हो मच गयी प्रकृति के तत्वा म ज्यो—
भाग रहा जीवन अपनी ही छाया से डर,
निज अन्तिम चरणो पर लँगडाता, डगमग डग !

(तेजी से प्रस्थान)

(सैनिको तथा श्रमिको के वेश में कुछ लोगो का प्रवेश)

कुछ स्वर जूझ रहे अणु के दानव से भू के जनगण,
जूझ रहे हैं महानाश से अपराजित जन,
अब निसग के तत्वो ने अपना अदम्य बल
जन मन म भर दिया, मनुज की मास पेशियाँ
पवत-सी उठ रोक रही दुधप शत्रु को !
नाच रहा जन के शोणित म जीवन पावक
दौड रही उ मत्त शिराओ मे शत विद्युत,
बहते है उनचास पवन उनकी श्वासा में !
भीत नही होगा मानव इस महानाश से,
विश्व ध्वस से लोक करेंगे नव जग निर्मित,—
श्री समत्वमय मनुष्यत्व को नव्य ज म दे !

कुछ स्वर फिर से मानव शिशु खेलेंग भू श्मशान मे,
पुन बहेगी जग के मरु मे जीवन धारा,
मरुत भर रहे प्रबल शक्ति जन के प्राणा म,
विस्तत करता वरुण तरुण वक्ष स्थल उनका
भस्मसात क र रही अग्नि जीवन का कदम,
मुक्त हो रहा इ द्रासन फिर महा याल से,
शेष ऊर्ध्व फन खोल उठाता भू को ऊपर
फहराते दिड्नाग मनुज की विजय ध्वजा को !

तीसरा दृश्य

[काल यापन सूचक वाद्य सगीत दस वष के बाद का दृश्य अग्नि का प्रकोप शा त हो गया है, कुछ बलिष्ठ हाथ फावडे, कुदाल आदि लेकर ध्वस के ढेर को खोदते हुए बीच मे गा रहे हैं।]

गीत

खोद, खोद रे, न हार !

शान्त हुई अग्नि वष्टि
ध्वस शेष भग्न सष्टि,

खोज रही नग्न दृष्टि
आर पार, आर पार।

रत्न गर्भ धरा धूल
मिट्टी में छिपे मूल,
वही बीज वही फूल
छान बीन, कर विचार।

एक स्वर बीत गये दस वर्ष आज उस अग्नि प्रलय को,
ठण्ढी जीवन राख पड़ी, बुझ गये अँगारे,
कट छँट गये धुएँ के बादल, नये क्षितिज की
धुंधली रेखाएँ सुदूर दिखती विपण्ण सी।
रिक्त ताम्र का व्योम जल रहा युग सन्ध्या में,
झुलस रहे तन को झंझा के तप्त भभूके,
ध्वस्त पड़ा भू भाग, सभ्यता का गत खँडहर,
तृण तरु जन्तु रहित मिटटी के करुण दैन्य सा।
घोर निराशा का विषाद तम के कपाट-सा,
प्राणों को जकड़े है, क्रूर प्रलय प्रहरी बन,
महाश्मशान बना धरणी का जीवन प्रांगण,
जहाँ भयावहता विभीत निज भैरवता से,
मृत्यु शून्य कांपता निदारुण सूनपन से,
निर्जनता प्रतिफलित निबिड़ निर्जनताओं में।

दूसरा स्वर इधर-उधर हे, खोद खाद का ढेर हटाओ,
पूरे बल से खोदो, हां, कूड़े कचरे को
बाहर फेंको गड्ढे में, झुककर तो देखो,
यहीं कहीं पाषाण खण्ड से टकरा चटचट
उगल रहा चिनगारी क्रोध भरा कुदाल है।
कैसी है यह वज्र शिला, जो प्रलय अग्नि से
जल गल कर भी राख नहीं हो सकी जलमुही।
निश्चय, यह पाषाण हृदय प्रतिमा है कोई।
एक साथ वीरो, शाबाश। इसे सब मिलकर
नरक योनि से बाहर लाकर सीधा रख दो।
झाड़ पोछकर इसकी एक झलक तो देखें —
छि छि छि कैसा कुत्सित विकराल रूप है।
अह यह क्या यमराज स्वयं? या कोई दानव
काल ध्वंस से दबकर पथरा गया धरा में?

तीसरा स्वर अरे नहीं। — यह वज्रप्राण इतिहास मूर्ति है
रक्त पंक है इसके अवयव, दारुण आकृति,
दुःस्वप्नों से जड़े पलक, दुःस्मृति पीड़ित उर —
यह नृशंस आदिम बर्बरता का प्रतिनिधि है,
मानवता का निर्मम शिक्षक चिर अन्यायी।
इसे दबा दो, पुनः गाड़ दो, इसे अँधेरे
अतल गर्त में दफना दो। गत भू जीवन की
इस भीषण छाया को गहरे नरक कुण्ड में

दो धकेल इस बलि को फिर पाताल भेज दो !

(मूर्ति को लुढकाने का शब्द)

प्रस्तर युग से पूँजीवादी युग तक का यह
शोणित रंजित संग, मनुज की निममता का,
नयी पीढियाँ इसकी आकृति देख भयाक्रा
आँख फेरकर, विरत न हो जायें जीवन से !
एक वृत्त हो चुका समापन भू जीवन का,
बदल गया गत दृष्टिकोण जग जीवन के प्रति,
बदल रहा मानव मन, बदल गया भू आनन,
नया पृष्ठ खुल रहा चेतना का स्वर्णोज्वल,
गत दु स्मृति को निश्चेतन म मज्जित कर दो !
नया वस्तु उठ रहा, मात्र इतिहास नहीं जो,
नयी चेतना का प्रकाश, भू स्वर्ग विधायक !

गीत

खोद खोद, कर प्रहार !
दबी कहीं मिल आग,
चिनगी फिर उठे जाग,
आशा को तू न त्याग,
सोने को ले निखार !

भू के उर मे विलीन
युग अतक पुराचीन,
ध्वस यह नहीं नवीन,
सृजन प्रलय दुर्निवार !

एक स्वर रक्त मास के सडे पक से उमड रही है
महा घोर दुर्गंध, रुद्ध हो उठती श्वासा,
तैर रहे गत अस्थि खण्ड शत, रुण्डमुण्ड हुल,
कुत्सित कृमि सकुल कदम म महानाश के !
दिग्व्यापी सहार असख्य निरीह जनो का
मृत सभ्यता का दारुण उपहार है घृणित !!
अगणित मनुजो की देहो की मासल रज से
धरती की मिट्टी का नव निर्माण हो रहा,
कितने मन प्राणो हृदयो का भावुक स्पदन
कितने उवर मस्तिष्को का चेतन वैभव
धरा धूलि मे खोकर एकाकार हो गया !
क्या वह जाग सकेगा स्वप्न प्ररोहो म नव ?

दूसरा स्वर थू, यह कौन कराह रहा इस नरक कुण्ड म,
औंधे मुह गिरकर, आहत मन, क्षत विक्षत तन !
कोई अबला है यह क्या ? नागिन-सी वेणी
लोट रही है पृष्ठ देश पर बल खायी-सी !
इस खीच बाहर कर दूं इस पाप कुण्ड से !

महिमामयी किसी नारी की रम्य मूर्ति यह !
दप भरे दृग, रजित अधर, उरोज अधखुले,
अगो से लावण्य टपकता श्री ह्री कोमल
कुचित भ्रू लतिका, इगित पर नचा जगत को,
शात भगिमा स क्षण भर विश्राम ले रही !
मन मोहिनी रही होगी यह मुग्ध यौवना,
हाय, रुक गया सहमा क्या इसका उर स्पन्दन !

तीसरा स्वर देखू ? ओ, यह वग सभ्यता की अनुकृति है
शोभा सज्जा रूप मधुरिमा की प्रतिमा-सी !
फूलो के मृदु अग, हृदय पाषाण शिला सा,
इसके स्वर मे जादू अधरो म थी ज्वाला
अधिकारो की मदिरा स आरक्त युग नयन,
जन धन स स्वर्णिम झकृत चचल प्रिय अवयव,
भ्रू विलास से महा समर छिडते थे जग मे, —
निखिल धरा के कटु शोषण पीडन से पोषित
निखरी थी इसके अगो की मासल शोभा !
स्वाभाविक ही अत हुआ इसका युग भू पर
पक विषमता के फन सी गिर पडी स्वय यह !
ऐंठ रहा है तन मरकर भी लोक घृणा स !!

गीत

खोद, खोद रे उभार !
विश्व ध्वस का श्मशान,
शेष अत्र न गीध श्वान,
विजय भीत शून्य प्राण
भरते कातर पुकार !

काल रात्रि का प्रसार
छाया घन अ धकार,
निगल रहा निराकार
रुद्ध स्वग ज्योति द्वार !

एक स्वर फैल रहा कटु अनाचार अह, धरा नरक मे,
चूर्ण हो गया विगत सगठन मानव मन का,
नैतिकता चीत्कार भर रही, सदाचार अब
दृष्टि हीन, घन अधकार म राह टोहता !
बबर युग की ओर जा रहा फिर मानव पशु
धम नीति आदश निखिल म्रियमाण हैं पडे,
लूट पीट, हिंसा नृशसता अट्टहास भर
खर ताण्डव कर, रौद रहे मानव आत्मा को !
मर्माहत हो उठी मनुज की मूक चेतना
लोक विघातक विश्व युद्ध की निममता स,—
गहरे व्रण पड गये धरित्री के जीवन म,
वज्र क्रूर, कटु अध नियति निकली मानव की!!

अतल गर्त मे पडी, सीखती विश्व सभ्यता,
उमड रही खल हिंस्र वृत्तियाँ अवचेतन की,
मनुष्यत्व का खाल खसकर, कृमि-सा मानव
दानव बनकर रेंग रहा दिग भ्रष्ट रीढ पर !
अन्न वस्त्र, गृह, आवागमना के अभाव से
पुन अहेरी जीवन बिता रहे नारी नर,
आधि व्याधि बहु रोग टूटते क्षुधित गीध-से,
काम क्रोध मद लोभ घूमते नग्न नृत्य कर !
राग द्वेष, स्पर्धा घृणा, कटु कलह परस्पर
नोच रहे मानव का मुख पैने पजा से ! !

दूसरा स्वर देखो है, यह कैसी प्रतिमा यहाँ गडी है ?
मूर्छित सी लगती विष वाष्पो के प्रभाव से !
इस गर्त से बाहर ला, उपचार तो करो,
हिला-डुलाकर, सम्भव, यह प्रकृतिस्थ हो उठे !
हृष्ट-पुष्ट है इसके पुट्ठे, लौह कलेवर,
जटिल शिरा तन्त्री मे दौड रही गत विद्युत्,
टिक टिक करता हृदय पिण्ड लघु काल यन्त्र सा,
मन्द पड रहा धीरे जिसका यान्त्रिक स्पन्दन !
यह नवीनतम प्रतिकृति है कोई गत युग की,
किसी सर्वसम्पन्न व्यक्ति की कीर्ति चिह्न हो !
आओ, इसको खुली हवा मे रख दें क्षण भर
इसके मुरझाये मुख पर जल के छीटे दें !

तीसरा स्वर आ, यह तो भौतिक युग की विज्ञान मूर्ति है !
दूर, दूर हट जाओ, इसकी वज्र देह को
अणु विस्फूर्जित विद्युत् किरणें गला रही हैं !
दलथ नथुनो से निकल रही विष की निश्वासें,
वाम हस्त मे रुज् कृमियो से भरा पात्र है !
दक्षिण कर का सजीवन घट फूट गया है !
भस्मासुर सा अणु बम का वरदान प्राप्त कर
यह अपने ही वरद हस्त से भस्म हो गया !

एक स्वर नही, नही यह अधिक समय तक भस्मावृत हो
नहीं रहेगा ! यह अपने ही भस्म शेष से
नव्य जन्म ले, पुन जी उठेगा पृथ्वी पर !
इसके भीतर भूत सत्य का अमृत अश है,
इसको अपने ही विनाश से पाठ सीखकर
विध्वसक से निर्मायक बनकर जगने दो !

गीत

खोद, खाद रे सवार !
जीवन तम हो अछोर,
मन मे हो दूर भोर,
होगी फिर कृपा कोर
बीती को दे बिसार !

अतल उदधि म अकूल
खिला एक नित्य फूल
बिना नाल, बिना मूल
गध अतुल मुक्त भार।

एक स्वर इस मिट्टी की अध योनि मे जान कैसे
कब जीवन का बीज गिर पडा अक्षयवट से,
जो प्राणो की हरियाली मे रोमाचित हो
अग जग मे छा गया असख्य प्ररोहो म हँस।
सुनता हू, जो गहराई मे पैठ खोजते,
पाते वे नित गूढ रत्न, पर यह मानव मन
अतल अकूल गुहा है जिसके रहस मम को
भेद नही पायी मानव सभ्यता अभी तक।

दूसरा स्वर यहा कौन लेटा है यह कदम मे लिपटा,
जीवनश्रात पथिक सा, जगती से विरक्त मन?
काल स्थविर कोई ऋषि चिर निद्रा मे सोया
देख रहा है स्यात् स्वप्न वैकुण्ठ लोक के।
उन्नत, निष्प्रभ सा ललाट, श्रुति दीघ-से नयन,
भरा झुर्रियो से आनन, चन्दन चर्चित तन,
स्फटिक माल स्मित वक्ष, यन्त्र बाधे बाहो मे,
वृद्ध पुजारी सा लगता सूने मन्दिर का
दीपशिखा बुझ गयी आरती करते जिसकी।

तीसरा स्वर भाई, यह तो दारु मूर्ति है जीण धम की
जिसके सम्मुख प्रणत रहे युग-युग स भूजन,
तर्क जाल फैला जिसन आकाश बेलि-स,
पाप पुण्य म, स्वग नरक मे उलझाया मन।
रक्तपात बहु हुए धरा पर इसके कारण
जीवन से हो विमुख, बने जन निजन सेवी,
घोर अन्ध विश्वासो के कुहरे मे लिपटा,
रूढि रीतियो म जकडा इसने जीवन को।
राजनीति न सिंहासन च्युत कर फिर इसको
भौतिक बल से वशीभूत कर, किया पराजित,
गत युग की बौद्धिकता ने, जीवन दशन ने
चीर फाडकर, इसके शव का किया परीक्षण।
घनन घनन, बज रही घण्टियाँ अन्तरिक्ष म,
घनन घनन, हो रहा समापन एक महायुग।
स्वग लोक है मिले पलित इस पुण्य मूर्ति को,
जनगण सेवक महाप्राण युग वृद्ध धम को।
रणन झनन, मानव के अन्त स्मित शिखरो पर
नव आध्यात्मिकता विचरे नव जीवन चेतन,
खन खन खन बज रजत घण्टियाँ अन्तमन म
नव्य चेतना का आवाहन करती नू पर।

गीत

खोद, खोद, खोज सार !
चूण चूण मनुज मान,
खण्ड खण्ड बहिर्ज्ञान,
योग भ्रष्ट आत्मध्यान,
बहिरन्तर कर सुधार !
बाहर ही तू न दौड
भीतर ही दृग न मोड,
दोनो के सूत्र जोड
दोनो को ले उबार !

एक स्वर चितन ही दशन विज्ञान गढे मनुष्य न,
गीति नीतियो की बाँधी गत मर्यादाएँ,
नगर तन्त्र से राजतन्त्र औ' प्रजातन्त्र बहु
परिचालित नित करते रहे मनुज समाज को !
पर मिट्टी की अन्ध अहता का मानव मन
दीपित हाय, न कर पाया अन्त प्रकाश से,
उसकी जड निममता को कर प्रीति विद्रवित
सँजो नही पाया विस्तृत जीवन शोभा म !
जाति वण के, वग श्रेणि के अन्धकार को,
खण्ड युगो की सस्कृतियो के सस्कारो को,
राष्ट्रो की स्पर्धाओ, भिन्न मतो, वादो को
मनुष्यत्व म ढाल न वह पाया भू व्यापक !
सस्कृति का मुखडा पहने, छल सभ्य वेश म
प्रणत रीढ पशु मात्र रहा गत युग का मानव !!

दूसरा स्वर यह सिर के बल खडी मूर्ति है किस नर पशु की ?
मानव के पूवज सा लगता भाव मूढ जो !
पुच्छ विपाण विहीन, भरा बहु रोओ से तन,
दप्त महषी के से दृग, भोंडी मुख आकृति
मत्त वृपभ का मा मासल निचला तन इसका
कौन पडा यह गडढे म, कीचड मे डूबा !

तीसरा स्वर किसी मनोविश्लेषक की प्रतिमा लगती यह,—
सीढी सीढी उतर गहन वासना गत मे
अवचेतन के अन्धकार म भटक गया जो !
ऊध्व श्रेणियाँ छोड चेतना की, जो निम्नग
निश्चेतन म विचरा पशु मानस के स्तर पर,
उलझ ग्रन्थियो मे असत्य इन्द्रिय भ्रम पीडित
खोज न पाया आत्मशुद्धि का पथ अन्तर्मुख,—
उभरे मोटे ओठो म लालसा दबाये
कुण्ठाओ की रखाओ स जजर आनन !

एक स्वर और अनेको खण्डित चिह्न यहाँ गत युग के
पडे धूल मे,—अकित जिनम धुँधली स्मृतियाँ

प्राणि वनस्पति जग के जीवन वैचित्र्यो की ।
यह डार्विन है क्या ? जिसन जीवन विकास की
विस्मृत कडियाँ गुम्फित की निज जीवशास्त्र म,
वगचयन परिवश, परिस्थिति को महत्त्व दे
जल थल नभचर के विकास का क्रम सुलभा कर
सिद्ध किया मानव को वशज शाखा मग का,—
निष्क्रिय परवश मात्र मान जीवनी शक्ति को ।

दूसरा स्वर यह सम्भवत कालमाक्स । समदिक जीवन का
विश्लेषण सश्लेषण कर जिसन दिग्व्यापक
नव द्वद्वात्मक भूतवाद का युग दशन दे
आन्दोलित कर दिया लोक जीवन समुद्र को,—
अथशास्त्र का नव सजीवन पिला जना को ।
वग क्रान्ति का दूत, साम्य जन तन्त्र विधायक ।

तीसरा स्वर देखो ह, यह जुड वा सी म्रियमाण पडी ह
युगल मूर्तियाँ लुज पुज हो यहाँ घिनौनी
वबर गर्हित आकृति इनकी, बौना सा कद,
वक्र भृकुटि, दर्पोन्नत शिर, पद मद स्फारित दग
रक्त सिक्त पशु हस्त, क्रोध से फूले नथुने,
भारी भद्दे पर रौंदते हो ज्यो भू का ।।

दूसरा स्वर राजनीति औ' अथनीति की प्रतिमाएँ ये,
सँग सँग जो नित रही स्वाथ की गलबाँही द
दुरभिसन्धि करती, कुचक्र रचती जन भू पर,
आन्दोलन सग्राम छेडनी रही निरन्तर
जन सगठनो के मिस नव अधिकार भोगता ।
आकृति मे ठिगनी, क्षमता म महाकाय य
महाध्वस लायी भू पर अणुबल सग्रह कर ।
चूण चूण कर दो इनका स्मृति शेष रूप ह,
मिट्टी म मिलने दो मिट्टी के दैत्या का,
वहिजगत के अध तमस न रहें नक्षत्र
यमज प्रेत ये निमम, जग जीवन के घातक ।

गीत

खोज, खोज, उर उदार ।
तमस म छिपा प्रकाश,
प्रलय म सृजन विकास,
मृत्यु अमर का विलास
जाग र नहीं प्रसार ।
पतझर म नव वसन्त,
सीमा म चिर अनन्त,
खुल रहा नयन दिगन्त
दुख अभाव मुख निहार ।

एक स्वर तिमिर तान छँट रहा, कट रहे घूमिल पट

स्वण बिम्ब नव उदित हो रहा मनोगगन म,
विल चतना किरणा स दीपित आशाएँ,
उतर रही है दिव्य ज्योति प्रत शिखरा पर !
ध्वस्त विगत मानग का खंडहर पडा धरा पर,
भूमिगात् गत भेद भित्तिया व दुर्गम गढ़,
उडा नाग बन नू शावक भौतिक आडम्बर,
निखर रही नव भूता स सम्प्रा धरित्री !
ऊध्व पख उडती अभिनव प्राणा की शोभा,—
स्वण हस सी उतर रही नि स्वर जन-भू पर
ज्योतिमयी नवल आध्यात्मिकता व चलन !

दूसरा स्वर
यह किसकी प्रतिमा है स्वर्गिक आभा मण्डित ?
जीवन सुषमा स निर्मित जिसक प्रिय अवयव
विश्वप्रीति स स्पदित विस्तत कोमल अन्तर,
करुणा विगलित दृष्टि, ज्ञान स दीपित मस्तक,
दक्षिण कर म अभय, वाम म सजीवन ले
कौन उतर आयी भू तम म यह सुरबाला ?
धरती की रज को शोभित करता इसका तन
उमड रहा चतना सिधु नव, निस्तल घट म !

तीसरा स्वर
इसे दखत ही पहचान गया मेरा मन !
यह सस्कृति की प्रतिमा है नव आभा दही,
अपन ही उर के प्रकाश स, रहस नियम से,
जिनका रूपान्तर होता रहता युग युग म !
बाह्य शक्तियाँ जब अपने ही युग विप्लव म
ध्वस भ्रष्ट हो जाती, कटु सघष म निरत,
अन्तर के शाश्वत प्रकाश से यह नव जीवन,
नव मन निर्मित करती रहती नव चेतन हो !
समाधिस्थ सी यहाँ पडी यह आत्मलीन हो,—
इस देखकर नव जीवित हो उठी हृदय म
नव जीवन नव ज्योति प्रीति, श्री सुख की आशा !
जय हो नव मानवता की, जय नव सस्कृति की,—
जिसके पावन अमृत स्पश से, ध्वस शेष से
धरा स्वग नव निखर रहा जन मन क्षितिज म!
(आशा आनन्द उत्साह द्योतक वाद्य सगीत)

चतुर्थ दृश्य

[सिधु तट पर एक स्वच्छ सुन्दर आश्रम प्रभात का समय एक नवयुग द्रष्टा प्रौढ तापस, नवोदित सूय के स्वण बिम्ब को, आह्लाद पूवक, अधखिले रक्तश्वेत कमलो की अजलि अर्पित कर रहा है। आकाश से चतुर्दिक प्रकाश की रगीन पखडियाँ बरस रही हैं। नेपथ्य से प्रभात व दना के इलक्ष्ण मधुर स्वर प्रवाहित हो रहे हैं।]

स्तवन

स्वर्णोदय, जय हे, जय हे!
ज्योति तमस मिलन याम,
धन्य, रहस श्री ललाम,
जीवन मन पूर्ण काम,
जगत् द्वन्द्व लय हे!
कनक कलश धरा शिखर
प्राण उदधि उठा निखर,
संशय भय गये बिखर
सुर नर विस्मय हे!
मिले ऊर्ध्व स्वर्ग धरा
बुद्धि बनी ऋतभरा,
सिद्धि खडी स्वयंवरा
जड चित् परिणय हे!
देव दनुज भेद-मुक्त,
मनुज राग द्वेष मुक्त,
श्रेय प्रेय सहज युक्त
चिर मंगलमय हे!
अन्तनभ के प्रकाश
शाश्वत सुख के सुहास,
अति मानस के विलास
नित नव, अतिशय हे!

द्रष्टा नव ऊषा का ज्योति द्वार अब अन्तनभ में
धीरे धीरे खुल, दीपित करता दिगन्त को,
मन सिंधु की लहरों में शत स्वर्ण रश्मियाँ
खेल रही आलोक चूड, भावों से मुखरित!
उतर रही नव जीवन प्रतिमा आभा देही,
शोभा पंखों में उड, नव स्वप्नों में मूर्तित,
स्वर्ण शुभ्र कलहंस कपोत विचरते नभ में,
बरस रहा सौंदर्य अलौकिक धरा शिखर पर!
कुसुमित अब भू का प्रांगण जन गृह कुंजों में,
स्वप्न झरोखे खुले दीप्त शत अन्तनभ को,
विचर रहे हैं शान्त अभय नर अन्तर्लोचन
प्रीति ध्वनित कर भू का उर निज पद चापों से!
लुप्त हो गयी गत दुःस्वप्नों की छाया स्मृति
हृदय ग्रंथि खुल गयी, धुल गये भू के कल्मष,
अन्त सलिला नवल चेतना की धारा से
स्वप्न मुखर हो उठे मग्न मन जीवन के तट!
परिवर्तित जीवन के प्रति जन भाव कोण अब,
राग द्वेष हट गये, मिट गयी हिंसा स्पर्धा,
छायातप हो गये जगत के नव समोजित!

इन्द्रिय पीडित, बहिर्भूत, दिग्भ्रम कुण्ठित मन
आरोहण करता अन्तर्मुख सोपानो पर,
दिव्य मातृ चेतना बन गयी, प्रकृति चेतना,
व्यक्ति विश्व के कटु भेदा मे स्वर सगति भर!
धीरे-धीरे उपचेतन निश्चेतन का तम
आलोकित हो रहा ऊर्ध्व स्पर्शों से प्रेरित,
गत युग के समदिक् विरोध वैषम्य निखिल धुल
नवल सन्तुलन ग्रहण कर रहे अन्त पूरित!
स्वत दिव्य चेतना आज सचालित करती
मानव के जीवन के मन के व्यापारो को!
तर्कवाद मिट गये न अब बौद्धिकता का तम,
इच्छाओ का सघर्षण, प्राणा का विप्लव!
शिथिल वसन-सी खिसक देह से, जीवन तृष्णा
मानव के चरणो पर पडी प्रणत छाया सी!

क्या विरक्त हो गया मनुज मन जीवन के प्रति?
नही, क्षुद्रता सकल मिट गयी मानव मन की,
जिसस खण्डित, स्वार्थ विभक्त रहा जग जीवन!
अह भाव का स्थान ले लिया आत्म ऐक्य ने,
श्रद्धा ईडा सहज समन्वित आज हो गयी
अन्तरतम से योग युक्त हो चेतन मानव
मुक्त मधुर वचित्र्य भोगता विश्व प्रकृति का!
आत्म स्थित वह, जीवन की आकाक्षाओं का
दास न अब, स्वामी है वह, द्रष्टा, भोक्ता है!
जीवन की कल्पना निखिल अन्त परिणत हो
श्री शोभा आनन्दमयी बन गयी धरा पर
आज दिशाएँ मुखरित अतर झकारो से,
सस्मित धरणी का मुख अमर कला कौशल से
बाह्य योजनाओ से अब न हृदय आतकित,
अन्त शोभन नर, अन्तर्जीवन निर्माता!
शान्ति-बरसती, अतस का सौन्दर्य बरसता,
ज्योति प्रीति स्मित धरा मनाती जीवन उत्सव!

(आनन्द-मगलसूचक वाद्य सगीत जो बिगुलों के स्वरा तथा घोडो को टापों मे डूब जाता है।)

कौन आ रहे ये अश्वारोही सनिक-से,
शस्त्रो से सज्जित, प्रयाण का वाद्य बजाते,
आत्म पराजित, विश्व विजय के आकाक्षी जन,—
अभी शेष है भू पर क्या पशुता, बर्बरता?

(कुछ सनिकों का प्रवेश)

प्रतिनिधि अभिवादन, शत अभिवादन करते नत मस्तक
हम पृथ्वी के लोकतन्त्र सत्ता के प्रतिनिधि,

विश्व भ्रमण को निकला है यह सस्कृति मण्डल
सद्भावो से प्रेरित, मत्री स्थापित करने ।

द्रष्टा । सैनिक भूषा मे ?

प्रतिनिधि । धरती के रक्षक हैं हम !
महानाश म अक्षत रहा प्रदेश हमारा !
हाहाकार मचा था जब सारी धरती मे
नव जीवन निर्माण निरत था लोकतन्त्र तब ।
अधशती है बीत गयी उस विश्व ध्वस को,
लोकसभ्यता विद्युत् गति से आगे बढकर
विकसित अब हो उठी चरम सीमा मे अपनी
अन्न वस्त्र से चिर कृतार्थ भू जीवी जनगण
आज हमारे हास्य स्मित उस महादेश मे,
शिक्षा स सम्पन्न, कला कौशल मे दीक्षित,
सामूहिक जीवन शिल्पी जग के प्रसिद्ध वे ।
हमने विद्युत् वाप्प रश्मि अणु को वश म कर
उन्ह लोक जीवन रचना मे किया नियोजित,
सिन्धु गगन से खीच तरगित तडित शक्ति को
शत आविष्कारो से उवर किया धरा को ।
नये फूल फल, नयी वनस्पतियाँ उपजाकर,
नये जन्तु, नव अश्वशक्ति के प्रहरी रचकर
हमने बहु यान्त्रिक मन, यान्त्रिक जन निर्मित कर
विश्व प्रकृति को किया विजित मानवक्षमता से !
बरसाते अब कृत्रिम घन शतमुख जल सीकर,
मरुथल जीवन उवर अब, पवत नत मस्तक,
दीप्त निशा का तमस रसायन के जादू से,
स्वग बन गयी भू भौतिक विज्ञान स्पश स ।
महत् सभ्यता का निर्माण किया है हमन
शोषण पीडन से रक्षित कर जनगण का श्रम !

द्रष्टा चिर कृतार्थ हो उठा निभृत सागर प्रान्तर यह
आज आपके शुभागमन से प्राण प्रफुल्लित,
लोकतन्त्र के नागरिको के प्रतिनिधियो का
हम हार्दिक स्वागत करते है, उनके अतुलित
जीवन कौशल से विस्मित हो ।

प्रतिनिधि क्या यह कोई
नया तन्त्र है ?

द्रष्टा यह जीवन सस्थान मात्र है ।
जहा मनोयन्त्रो को विकसित कर साधकगण
नव प्रयोग कर रहे मनुज मन के विधान पर ।
औ' अन्तर्विज्ञान निहित नियमो पर आश्रित
सत्यो का अनुशीलन कर, मानव जीवन का
रूपान्तर कर रहे, अभीप्सा मे रत अविरत ।
अन्तमन की सुप्त शक्तियो को जाग्रत कर

दिव्य अवतरण को सचेष्ट करने के प्रार्थी,
आत्म समर्पण से, श्रद्धा, विश्वास, प्रीति से
आवाहन कर रहे महत् जीवन का भू पर!
मानव के अंत शिखरों पर नव्य चेतना
उतर सके जिससे ज्योतित स्वर्णिम प्रवाह-सी।
हास्यास्पद लग रहे भले हों आज आपके
समदिक् आदर्शों में निरत बहिर्गत मन को
ऊर्ध्वग जीवन आकांक्षा के स्वप्न हमारे,
किंतु साधकों का गंभीर अनुभव है निश्चित
भगवत जीवन ही भू जीवन का भविष्य है!

प्रतिनिधि आप वृथा संदेह मत करें अपने मन में,
महत् प्रभावित हुए आपकी वाणी से हम,—
सत्य जानिए, लोकतंत्र के महदाकांक्षी
जन का मन नव आदर्शों के प्रति जाग्रत है।
जीवन की इच्छाओं से परितृप्त प्राण वे
भौतिक सामाजिक साधारणता से अवगत,
बोझिल सामूहिकता से हो मर्म श्रान्त जन
अंत शिखरों पर आरोहण को उद्यत है।
दिव्य ज्ञान की दीक्षा के उपयुक्त पात्र वे
आप उन्हें कृतकृत्य करें अभिनव प्रकाश दे,
आत्मा का स्वर्णिम पावक वितरण कर जन में
गहन अनुभवों से पोषित कर उनके मन को।
गत युग के आदर्श वस्तु विषयक विभेद अब
हुए समापन—जड़ चेतन का कटु संघर्षण,
धर्म काम के बीच पट गयी दुर्गम खाई,
धरा स्वर्ग को मिला दिया नव ज्योति सेतु ने।
बाह्य विरोध मिटे सब, भू जीवन की लघुता
अपनी ही भंगुर सीमाओं से लज्जित है।
महत् प्रेरणा, दिव्य जागरण के हित उत्सुक
बहिर्गमन से श्रान्त, खोजते जन अन्त पथ।
सत्ताओं के कोलाहल से कम्पित अन्तर,
यान्त्रिकता के लौह पदों से जर्जर जीवन
समतल समता, प्रचलित परिचित मध्यमता से
चिर विरक्त हो, नव स्वप्नों का आकांक्षी अब।
जरा मरण को भुला अचिर ऐहिकता के हित
बहला सकता मनुज न मन को दीर्घकाल तक।
फिर इन्द्रिय शैथिल्य हृदय को मोह विरत कर
प्रेरित करता उसे तत्व की खोज के लिए।
लोकतंत्र का यह अनुभव अब, सामूहिकता
निगल नहीं सकती अन्त स्थित मनुज सत्य को।

(शांति, पावनता, आनंदद्योतक वाद्य संगीत)

ऐसी पावन शान्ति सहज जो व्याप्त है यहाँ
हमे नही अन्यत्र धरा मे मिली कही भी!
यह कैसा नीहार कान्ति का रजत लोक है?
विचरण करता हृदय यहाँ किन सोपानो से
अन्त सुरभित स्वप्नो के नव मुकुलित जग म!
कैसी स्वच्छ सरल जीवन चेतना यहाँ है,
एक अलौकिक आकर्षण है व्याप्त चतुर्दिक!
सिहर रही किस गोपन सुख से मन शिराएँ,
खुल पडते अन्त शोभा के पट पर नव पट
अपलक नयनो के सम्मुख,—मन को विमुग्ध कर!
जाग रही शत सूक्ष्म प्रेरणाएँ मानस म,
शिखरो पर नव शिखर उठ रहे स्वर्ग विभव के,
प्राण सिन्धु को नव स्पर्शो स आन्दोलित कर!
कौन देव ये स्वस्थ सौम्य, स्मित, मुखमण्डल से
शान्ति कान्ति चिरबरस रही किस अन्त सुख की?
दुर्लभ है यह ज्योति प्रीति आनन्द मधुरिमा,
दुर्लभ भू पर अमर चेतना का यह उत्सव!
युग-युग से मानव अन्तर इस अमृत स्पर्श की
नम मधुर अनुभूति के लिए उत्कण्ठित था!
लोकतन्त्र का जीवन वैभव इस जीवन की
छाया की छाया है, क्षर भू रज मे लुण्ठित!
आप हम चरितार्थ करें नव मान दृष्टि दे,
रिक्त धरा को पूर्ण करें निज अमर दान से!

द्रष्टा आज परम आनन्द मिला, जन प्रतिनिधियो के
उच्चाकाक्षा से प्रेरित वचनो को सुनकर!
यह ईश्वर की महत् कृपा है समतल जीवन
आज ऊर्ध्वमुख आरोहण के हित उद्यत है!
आज धरा के अन्धकार का गत भर गया
नव जीवन की आकाक्षा के नव प्रकाश से,
भू जीवन के क्लेश मिट गये, भेद भर गये,
रूपान्तर हो रहा प्रकृति का परम दया स!
आप सहज आतिथ्य करें स्वीकार हमारा
तापसगण को जनसेवा के हित अवसर दे!
भगवत् करुणा जनगण पर चरितार्थ हो रही
रूपान्तर का समय निकट अब भू जीवन का!

देख रहा मानव भविष्य मैं सूक्ष्म दृष्टि से,
विगत राजनीतिक आर्थिक तन्त्रो पर विजयी
भू पर मानव तन्त्र हो रहा प्राण प्रतिष्ठित
मनुष्यत्व के ऊर्ध्वग मूल्यो पर आधारित!
बौद्धिक वादो, स्थूल मतो से मुक्त धरा जन
स्वत खिल रहे पुष्पो से अन्त प्रतीति स्मित,

दिव्य अवतरण को सचेष्ट करने के प्रार्थी,
आत्म समर्पण से, श्रद्धा, विश्वास, प्रीति से
आवाहन कर रहे महत् जीवन का भू पर।
मानव के अंत शिखरों पर नव्य चेतना
उतर सके जिससे ज्योतित स्वर्णिम प्रवाह-सी।
हास्यास्पद लग रहे भले हों आज आपके
समदिक् आदर्शों में निरत बहिर्गत मन को
ऊर्ध्वग जीवन आकांक्षा के स्वप्न हमारे,
किंतु साधकों का गंभीर अनुभव है निश्चित
भगवत् जीवन ही भू जीवन का भविष्य है!

प्रतिनिधि आप वृथा सन्देह मत करें अपने मन में,
महत् प्रभावित हुए आपकी वाणी से हम,—
सत्य जानिए, लोकतन्त्र के महदाकांक्षी
जन का मन नव आदर्शों के प्रति जाग्रत् है।
जीवन की इच्छाओं से परितृप्त प्राण वे
भौतिक सामाजिक साधारणता से अवगत,
बोझिल सामूहिकता से हो मर्म श्रान्त जन
अंत शिखरों पर आरोहण को उद्यत हैं।
दिव्य ज्ञान की दीक्षा के उपयुक्त पात्र वे
आप उन्हें कृतकृत्य करें अभिनव प्रकाश दे,
आत्मा का स्वर्णिम पावक वितरण कर जन में
गहन अनुभवों से पोषित कर उनके मन को।
गत युग के आदर्श वस्तु विषयक विभेद अब
हुए समापन—जड़ चेतन का कटु संघर्षण,
धर्म काम के बीच पट गयी दुर्गम खाई,
धरा स्वर्ग को मिला दिया नव ज्योति सेतु ने।
बाह्य विरोध मिटे सब, भू जीवन की लघुता
अपनी ही भंगुर सीमाओं से लज्जित है!
महत् प्रेरणा, दिव्य जागरण के हित उत्सुक
बहिर्गमन से श्रान्त, खोजते जन अन्त पथ।
संघर्षों के कोलाहल से कम्पित अन्तर,
यान्त्रिकता के लौह पदों से जर्जर जीवन
समतल समता, प्रचलित, परिचित मध्यमता से
चिर विरक्त हो, नव स्वप्नों का आकांक्षी अब।
जरा मरण को भुला अचिर ऐहिकता के हित
बहला सकता मनुज न मन को दीर्घकाल तक।
फिर इन्द्रिय शैथिल्य हृदय को मोह विरत कर
प्रेरित करता उसे तत्व की खोज के लिए।
लोकतन्त्र का यह अनुभव अब, सामूहिकता
निगल नहीं सकती अन्त स्थित मनुज सत्य को।

(शांति, पावनता, आनन्दद्योतक वाद्य संगीत)

ऐसी पावन शान्ति सहज जो व्याप्त है यहाँ
हमे नही अन्यत्र धरा म मिली कही भी !
यह कैसा नीहार कान्ति का रजत लोक है ?
विचरण करता हृदय यहा किन सोपानो से
अन्त सुरभित स्वप्नो के नव मुकुलित जग मे !
कैसी स्वच्छ सरल जीवन चेतना यहा है,
एक अलौकिक आकषण है व्याप्त चतुर्दिक् !
सिहर रही किस गोपन सुख से मन शिराएँ,
खुल पडते अन्त शोभा के पट पर नव पट
अपलक नयनो के सम्मुख,—मन को विमुग्ध कर !
जाग रही शत सूक्ष्म प्रेरणाएँ मानस मे,
शिखरो पर नव शिखर उठ रहे स्वग विभव के,
प्राण सिन्धु को नव स्पर्शो से आन्दोलित कर !
कौन देव ये स्वस्थ सौम्य, स्मित, मुखमण्डल से
शान्ति कान्ति चिर बरस रही किस अन्त सुख की ?
दुलभ है यह ज्योति प्रीति आनन्द मधुरिमा,
दुलभ भू पर अमर चेतना का यह उत्सव !
युग-युग से मानव अन्तर इस अमत स्पश की
मम मधुर अनुभूति के लिए उत्कण्ठित था !
लोकतन्त्र का जीवन वैभव इस जीवन की
छाया की छाया है, क्षर भू रज मे लुण्ठित !
आप हम चरिताथ करें नव ज्ञान दृष्टि दे,
रिक्त धरा को पूण करें निज अमर दान से !

द्रष्टा आज परम आनन्द मिला, जन प्रतिनिधियो के
उच्चाकाक्षा से प्रेरित वचनो को सुनकर !
यह ईश्वर की महत् कृपा है समतल जीवन
आज ऊध्वमुख आरोहण के हित उद्यत है !
आज धरा के अन्धकार का गत भर गया
नव जीवन की आकाक्षा के नव प्रकाश से,
भू जीवन के क्लेश मिट गये, भेद भर गये,
रूपान्तर हो रहा प्रकृति का परम दया से !
आप सहज आतिथ्य करें स्वीकार हमारा
तापसगण को जनसेवा के हित अवसर दे !
भगवत करुणा जनगण पर चरिताथ हो रही
रूपान्तर का समय निकट अब भू जीवन का !

देख रहा मानव भविष्य मैं सूक्ष्म दृष्टि से,
विगत राजनीतिक आर्थिक तन्त्रो पर विजयी
भू पर मानव तन्त्र हो रहा प्राण प्रतिष्ठित
मनुष्यत्व के ऊध्वग मूल्यो पर आधारित !
बौद्धिक वादो, स्थूल मता से मुक्त धरा जन
स्वत खिल रहे पुष्पो-से अन्त प्रतीति स्मित,

उर के सौरभ मे मज्जित कर स्वर्ग लोक को !
आग्रो, वदन करें ग्राज उस परम शक्ति का
क्रीडानक यह विश्व महत् जिसकी इच्छा का !

गीत

ज्योति दायिनी,
ग्रमृत वाहिनी,
जगत पावनी !
उतरो भू पर निकाम
जन मन हो प्रीति धाम,
जीवन शोभा ललाम,
स्वप्न शायिनी !
मुक्त रजत उर प्रसार
चेतन म जगे ज्वार,
प्राणो मे नव निखार
कलुष दाहिनी !
कुसुमित भू वास द्वार
ग्रतर्मुख जन विचार,
भौतिक श्री सुख ग्रपार
स्वग भाविनी !
प्रभु पर श्रद्धा प्रतीति,
सस्कृत हो रीति नीति,
विजित जरा रोग भीति,
मृत्यु पायिनी !

अप्सरा

(सौन्दर्य चेतना का रूपक)

मणारा
रनकार
ध्वनियाँ
प्रतिध्वनियाँ

प्रथम दृश्य

(भावोद्वेलन)

[मन क्षितिज की द्वाभा चेतना मे, हृदय सरोवर के तट पर कलाकार ध्यान मौन बठा है। सामने भावनाम्रो की स्वण शुभ्र श्रेणियाँ, विचारो के रजत कुहासे को चीरकर, निखर रही हैं। आकाश से प्रेरणाम्रो की लहरियो द्वारा मन्द मधुर स्वप्नवाहक सगीत गुजरित हो रहा है।]

अप्सरा का गीत

छम छम चल कल पायल
बजती मेरी प्रतिपल,
नित नीरव नभ से रव
झरता मेरा अविकल।

ममर भर अस्फुट स्वर
गाते वन के तरुदल,
लहरो पर मदु पग धर
फिरती मैं रह ओझल।

ऊध्वग पथ सौरभ श्लथ
उडता मेरा अचल,
घूघट धर शशि मुख पर
हँसती मैं स्वर्णोज्वल।

जीवन के आगन मे
ऊषा की स्मिति निश्छल
छायातप मे कँप-कँप
सन्ध्या मे जाती ढल।

(सगीत लहरियाँ धीरे धीरे विलीन होती हैं)

कलाकार यह कसी सगीत वष्टि हो रही गगन से
या मेरा ही ध्यान मौन मन गा उठता है?
कैसा आकषण है यह, कैसा सम्मोहन,
यह सौन्दय मधुरिमा कोई मेर मन को
जसे बरबस खीच रहा हो! क्या है यह सब?
प्राणो की व्याकुलता, जीवन की व्याकुलता!
अह, अब तो मैं यौवन का रोमाच द्वार भी

पार कर चुका, जब मजरित दिगत धरा का
पागल कर देता था मन को।

यह मादकता,
यह सु दरता, यह सम्मोहन अकथनीय है,
अकथनीय। आश्चयचकित हूं। बाहर भीतर,
ऊपर नीचे,—नील व्योम पर, गिरि शिखरो पर,
हरित धरा पर,—वही मधुर सम्मोहन मुझको
बुला रहा है। सबने मुझको घेर लिया है।
बन्दी हूं म बन्दी। स मुख, रजत सरोवर
पवत की बाहो मे जैस बंधा हुआ है।
इन पाषाणो के भी क्या प्रेमार्द्र हृदय है?
ऐसा ही आकुल चचल हो मेरा मन भी
जीवन के पुलिनो से टकराता रहता है।
जसे कोई शोभा छाया मेरे मन से
लिपट गयी हो, और उसी के सकेतो पर
मेरा जीवन नाच रहा हो। विस्मित हूं मैं।
नही जानता, स्वग लोक की कौन अप्सरा
मेरे भीतर समा गयी है, जिसने मन को
निज स्वप्नो के फूल पाश मे बांध लिया है।
यह समस्त सौ दय मुझे लगता है जसे
उसका एक कटाक्ष पात है। मुख पर झिलमिल
किरणा का घूघट दे, स्वर्णिम छाया पट मे
आखमिचौनी खेला करती है वह मुझसे।
उसके रूपो के सौ सौ आवर्तों म पड
बहते हुए कमल सा मेरा मन जाने कब
एक लहर के बाहुपाश स छूट, दूसरी
लहरी के चचल अचल म बंध जाता है।
घोर अराजकता है प्राणा के प्रदेश मे।
दतकथा के राजकुवर मा मोहित हो मैं
भटक गया हूं किसी शप्त अप्सरा लोक मे।

अप्सरा का गीत

जब निभृत नीलिमा कुजो मे
ऊषाएं जगकर मुसकाती
मैं अध खुले वातायन स
अपना स्वर्गिक मुख दिखलाती।

जब कनक रश्मियां कलियो के
गोपन प्राणा को उकसाती
मैं सौरभ की चल अलका म
गुजरण रहस हूं उलझाती।

मैं शशि की रजत तरी पर चढ
तारापथ स आती - जाती,

मेघा के सतरँग शिखरो पर
स्वप्नो के केतन फहराती ।
मैं मन क्षितिज के पार जहाँ
स्वर्णिम आभाएँ मँडराती,
गत सन्ध्याओ के पलनो म
अभिनव प्रभात हैं विकसाती ।
केवल न प्रकृति ही का प्रागण
मैं रग वृष्टि म नहलाती,
मैं अन्तर जग को भी अपनी
स्वप्निल सुषमा म लिपटाती ।
(गीत के स्वर प्राणोन्मादक वाद्य ध्वनियो म डूब जाते हैं ।)

कलाकार हाय, कहाँ खो गया समस्त मनोबल जाने,
आज निखिल अध्ययन, मनन चिन्तन जीवन का
व्यर्थ हो गया ज्योतिरिंगणो-से जगमग कर
निष्प्रभ पडते जाते हैं आदर्श सुनहले,
ताराओ-से फीके पडकर बुझते जाते
दीप ज्ञान के, मेघा के घन अधकार म
ज्योतित कर पा रहे नही वे जीवन का पथ ।
किन अज्ञात गुहाओ से उन्मत्त तमस यह
आज न जाने उमड रहा, जीवन मूल्यो को
अतल निमज्जित करने निज उच्छल प्रवाह म ।।

चचल हो उठता फिर फिर मन । यह क्या केवल
प्राणो का उद्वेलन है ? या मन का भ्रम है ?
अथवा बदल रहा युग करवट ? मन के भीतर
नया सत्य या जन्म ले रहा ? महारात्रि है ।
यह कैसी ममर ध्वनि जग उठती प्राणो मे ?
जीवन के ठूठे पजर म नव स्पन्दन भर
एक नयी चेतना लपेट रही मानस को
अपनी स्वर्गिक शोभा के अभिनव वैभव म,—
पुलक पल्लवित हो उठता तन सूक्ष्म गन्ध से ।
स्वप्नो के रगो म वेष्टित कर प्राणो को
नव वसन्त हो फूट रहा अन्त शोभा स्मित ।
धुधला पडता जाता मन का पिछला सचय
उपचेतन के गहरे गर्तों की विस्मृति म,
एक नया सौन्दर्य ज्वार उठता अन्तर से
धरणी के जड पुलिनो को प्रक्षालित करने ।
(स्वप्नवाहक वाद्य सगीत और सहगान)

अप्सरा मैं स्वप्नो के दल उकसाती
अन्तर सौरभ बन छा जाती,
मैं रूपहीन, दृग विस्मित कर,
स्वर शब्द रहित लय म गाती ।

कलाकार तुम छाया-सी छिप बिलमाती
उर मे आकुलता उपजाती,
ओ रगमयी, तुम अन्तर को
शोभा ज्वारा मे नहलाती !

अप्सरा मैं मन के नयना मे आती,
उर के श्रवणो मे बतलाती,
मैं ध्यान मौन अन्तनभ मे
स्मित भावो के पर फैलाती !

कलाकार तुमको प्रतीति करता अर्पित
उर की श्रद्धा से अभिनन्दित,

अप्सरा मैं आत्म समपण के क्षण मे
निझर प्रकाश के बरसाती !

(आवाहनसूचक वाद्य सगीत जो मानसिक सघप द्योतक सगीत मे परिणत हो जाता है।)

द्वितीय दृश्य

(मानसिक सघप)

[जीवन की हरी-भरी घाटी पृष्ठभूमि मे आरोहण करता हुआ मन का सोपान रजत धूमिल गिरिशृग सा दिखायी दे रहा है । नीचे अतल अवचेतन अधकार म काली घटाएँ अनेक कुत्सित आकृतिया धरकर उमड रही हैं।]

कलाकार कौन पुकार रहा मुझको अज्ञात देश से
या यह मेरे ही अतरतम की पुकार है !
आरोहण कर रही भावना किन अनजाने
शोभा के सोपानो से किस नव्य लोक म,
जीवन के मन के स्वर्गों को पार कर निखिल !
नव मानवता के विकास का ज्योति शिखर उठ
दीख रहा सम्मुख स्वर्णिम पखो से स्पन्दित !
एकाकी विचरण कर अत स्मित व्योमो मे
स्वप्न क्लान्त चेतना उतरती जब धरती पर,
जहाँ तुमुल जन कोलाहल युग क्रन्दन छाया,—
तब जस लगता है वास्तवता स कटकर
वाष्प खण्ड-सा अपने ही कल्पना जगत मे
उडता फिरता है मन रिक्त कुहासा बनकर
अपने ही स्वप्नो क इन्द्रधनुष से रजित !
बादल भी जो नही बन सका, जिसके उर म
गजन है, तजन है, विद्युत् जल सीकर है !
बरस बरस जो धरती को नित उवर रखता

प्राणो की हँसमुख हरियाली मे पुलकित कर !
घोर असगति आज वाह्य भीतर के जग मे !!
अह, यह कसा सशय का तम घिरता मन मे
किमाकार शत छायाकृतियो मे कँप कप कर,
रेंग रही जो भग्न रीढ धरती की रज मे !
ऊपर के नीरव आकाशा मे मँडराकर
सृजन चेतना रुकी हुई है, लोक कम को
अनुप्राणित करने अपने अभिनव प्रकाश से !
नव्य सन्तुलन कब आयेगा जन धरणी के
ऊर्ध्वंग समतल जीवन को शोभा कल्पित कर !

(नैराश्यसूचक वाद्य सगीत)

युग-चेतना का गीत

युग-चेतना घुमड रहा अन्धकार, अन्धकार,
ह्रास नाश का तमिस्र दुर्निवार !
धरती की गुहाएँ रहीं पुकार
उमड रहा घोर सृजन प्रलय ज्वार !
प्रलय ज्वार !

पुरुष ध्वनियाँ

ये लुण्ठित कुण्ठित कायाएँ,
य लुजित पुजित छायाएँ,
धरती को दातो से पकडे
फिरती लोभी बाहे पसार !
ये जन धरणी के बुद्धिप्राण,
आहत जिनका मिथ्याभिमान
गत धरा चेतना के प्रतिनिधि
रोके जो मानव मुक्तिद्वार !

कोमल प्रतिध्वनियाँ ये महत् दिव्य के अवरोधक
अपनी सीमाओ के पोषक,
नव मनुष्यत्व के विद्वेषी
निज कुण्ठा का करते प्रचार !
रेती सी नीरस चमक भरी
बौद्धिकता के तट पर बिखरी
सिद्धान्तो की मग तृष्णा मे
य भटका करत वार - बार !

पुरुष ध्वनियाँ गिरगिट से रग बदल अगणित,
युग परिवेशा को कर बिम्बित,
ये शत प्रतिरोध खडे करते
युग जीवन धारा के सिवार !
निम्नग अवचेतन के पूजक,
अन्तश्चेतन के पथ कटक,
ये विद्रोही नर नही, तुच्छ
मानव द्रोही, युग के अंगार !

कोमल प्रतिध्वनियां जन जीवन मे जो उच्च महत्
वह इह नही होता दृगगत,
निज दमित लालसा का जन म
ये देखा करते रुद्ध भार !

इनको प्रिय नही उदात्त भाव,
लघु तुच्छ घृणित से विकृत चाव,
कुछ उलट गयी है ऐसी मति,
ये सिर के बल करते विहार !

पुरुष ध्वनियाँ युग जीवन कदम के दादुर
समवेत कण्ठ गाते बेसुर,
जनता, जनता रटते, उसका
मानवता से कर बहिष्कार !

ये जन धरणी के बुद्धिप्राण,
ग्राहत जिनका मिथ्याभिमान,
ये धरा चेतना के प्रतिनिधि
रोके मानव का मुक्ति द्वार !

युग चेतना घुमड रहा अधकार, अधकार,
नाश मे विकास पा रहा निखार,
अतरतम की गुहा रही पुकार
नव प्रकाश उठा रहा तिमिर ज्वार,
तिमिर ज्वार !

(युग विवतनसूचक वाद्य सगीत)

कलाकार बिखर रहा अब विगत मन सगठन मनुज का,
चूण हो रहा जीण अहता का विधान मित,
आज घोर अधिविश्व क्राति छायी जन भू पर
निगल रहा जीवन तष्णा का अवचेतन तम
मानव आत्मा के मूल्यो के ध्रुव प्रकाश को !
उतर नही पा रही नव्य सौदय चेतना
युग कल्मष से पकिल धरणी के प्रागण मे !
आज नया दायित्व भार है मध्यवग के
सृजन प्राण युग जीवन शिल्पी के कधे पर,
धरती की सौदय चेतना का प्रतिनिधि जो !
युग मन के बिखरे अनगढ उपकरणो को ले
मनुष्यत्व की नव प्रतिमा कल्पित कर उसको
प्राण प्रतिष्ठित करना है जन मन मन्दिर मे !
युग आवेशो के कटु कोलाहल म उसको
नव जीवन की स्वर सगति भरनी है व्यापक
वस्तु परिस्थितियो मे निश्चेतन पदाथ को
उसे ढालना है विकसित मानव चरित्र मे !

तृतीय दृश्य

(उन्मेष)

[सूक्ष्म वाष्पों का स्वर्णिम छाया सेतु इन्द्रधनुष की तरह धरती आकाश के बीच टँगा है, जिसके ऊपर खड़ा कलाकार ऊपर को देख रहा है।]

अप्सरा का गीत

मैं ही शिव हूँ, मैं ही सुंदर,
मैं अनंत सत्य अनश्वर,
मैं युग लांछन से मुक्त आज
फिर उतर रही वसुधा पर!

युग खँडहर पर जो मँडराते
पीले पत्रों के पतझर,
मैं उन्हें मिलाती मिट्टी में
नव मधु की खाद बनाकर!

जो युग प्रबुद्ध, जो नव जाग्रत,
श्रद्धारत सत्स्वप्नपर,
मैं उनके अंतर शिखरों को
छूती, फैला स्वर्गिक पर!

जो अहं मूढ़, कृमि साप
केंचुआ घावों पर न्योछावर
वे सरीसृपों का रूप बोध दे
रेंगा करते भू पर!

मैं मानवता की तप पूत
सौंदर्य चेतना भास्वर,
निज रहस स्पर्श से विकसाती
भावों का वैभव अक्षर!

कल्याण ज्योति, ऐश्वर्य शिखा,
आनंद सरित, रस निर्झर,
मैं निखर रही फिर प्राणों का
पहने स्वर्णिम छायाम्बर!

(वाद्य ध्वनि आरोहण करती हुई धीरे धीरे विलीन हो जाती है)

कलाकार 'एक नया चैतन्य, नया अध्यात्म धरा पर
जन्म ले रहा, मानव अंतर के शतदल में,
निज स्वर्णिम किरणों के वैभव में मज्जित कर
मनुज हृदय की निखिल क्षुद्रता, रुद्ध अहंता!
' एक महत् चैतन्य उदय हो, मानवता के
ऊर्ध्व भाल पर मुकुट रख रहा स्वर्ग ज्योति का!
एक महत् अध्यात्म, युगों की धार्मिक नैतिक

सीमाम्रो को अतिक्रम कर, मानव जीवन को
सँजो रहा फिर पूण समन्वय की सगति मे,
नव्य सन्तुलन भर भू की विशृङ्खलता मे,
आर्थिक समता वग हीनता के छोरो को
अन्तरैक्य के रश्मि सेतु म बाँध अलौकिक,
भौतिकता को, साम्यवाद को आत्मसात् कर!
महाउगमन की, दिव्य अवतरण की ममर ध्वनि
गूज रही अन्तरतम के गोपन गहना मे,
हिल्लोलित हो रहा धरा चेतना सिधु अब
नव आवेगा के प्रति गति झंझा प्रवग से,
सूक्ष्म भार से प्रणत दीखत धरा शिखर सब
नव प्रकाश के रहस स्पश से आन्दोलित हो!
उद्वेलित हो रहा गाढ तम अवचेतन का
शत विरोध की शिखर तरगो मे भुजग-सा
आलोडित हो, उद्धत फन, शत फूत्कारें भर,—
गरल फेन बहु उगल अचेतन के नरको का!
आज नये रावण उपजे हैं नये राम का
युग अभिवादन करने को शतमुख शीश से,
देवासुर सग्राम छिड रहा जन मन भू पर
अश्रुत चापा से गुजित जग जीवन प्रागण!
स्वयवरा वन खडी गुण्ठिता धरा चेतना
प्रकट हो रहे मनोनील मे लोक पुरुष नव,—
जीण मान्यताओ का जजर चाप तोडने
नव जीवन की श्री शोभा को वरने के हित
आकुल चचल आज पुन जन धरणी का मन!

(प्राणो मादक वाद्य सगीत)

धरा चेतना का गीत

मैं प्यासी की प्यासी!
धरती की चेतना मूक
जन मगल की अभिलाषी!

युग के कदम मे लिपटा तन
अवचेतन तम म भटका मन,
जीवन स्वग बसाने को
कब स आकुल घटवासी!

मैं उदात्त भावो की द्योतक
महत उच्च कर्मों की पोषक,
सत्य बनेंगे कब ये मेरे
स्वप्न अमर अविनाशी!

तुच्छ राग द्वेषो से पीडित
क्षुद्र श्रेणि वर्गों म खण्डित,

... भर जन होगे चेतन
मानव, आत्म प्रकाशी।
मानव मेरा पुण्य शस्य फल
यदि न रहेगा जाग्रत उज्ज्वल,
अधकार म सनी रहूँगी
बनी दुखो की दासी।
मेरे मूक हृदय म प्रतिक्षण
जगता रहता स्वर्गिक स्पदन,
अमर चेतना से कब मण्डित
होंगे मत्यु विलासी।

कलाकार ईशावास्यमिद सब कहत द्रष्टा ऋषि
उपनिषदो के जगती म जो कुछ अक्षय है
वह भगवत सत्ता है जग की निखिल वस्तुएँ
ईश्वरमय हं वही सत्य है सार रूप म।
पर विकास प्रिय भू जीवन के द्वद्व क्षेत्र म
ईश्वर के साम्प्रत स्वरूप से उसके भावी
महत रूप ही का आकाक्षी है मानव मन।
जगत भागवत जीवन भिन्न पदाथ नही हैं,
ईश्वर का ही अश जगत्, आरोहण पथ पर,
जिसका पूण प्रकारातर होना निश्चित है।
राग द्वेष के रुँधे गत स मानव जीवन
विचर सकेगा समतल ऊँचाई मे उठकर।
मनुज नियति ऊर्ध्वग जीवन के हित उद्यत हो
आज युगो के बाद पुन चरिताथ हो रही।

मनुज नियति का गीत

मनुज नियति मैं निमम,
जग जीवन के पथ मे जिसको
होता आया दिग्भ्रम।
घिरी तमिस्रा घोर अँधेरी
पुन बज रही युग रण भेरी,
नव किरणो का विजय हार ले
उतर रह तुम निरुपम।
बीत रही गत मोह निशाएँ
निखर रही अब नयी दिशाएँ,
गहन सधि वेला, प्रकाश का
द्योतक यह दारुण तम।
बुझता अब तारामो का नभ
वृत्त चेतना का गत निष्प्रभ
द्वाभा के अचल म लिपटा
नव प्रकाश का उपक्रम।
स्वप्नो की चापा से गुजित
यह पगध्वनि मरी चिर परिचित,

पूण काम करने फिर मुझको
नवल तुम्हारा ग्रागम ।
सफल ग्राज तप चिन्तन साधन
सफल युगा के मौन जागरण,
साधक लौह पगा का मेरे
दुगम भूपथ का श्रम ।

चतुर्थ दृश्य

(रूपान्तर)

[प्रभात के प्रकाश से स्वणिम जन धरणी का प्रागण लता प्रताग्रों की एक छोटी-सी पणकुटी के द्वार पर खडा कलाकार नव प्रभात की शोभा देख रहा है ।]

कलाकार क्या है यह सौन्दय चेतना ? जग जीवन की
ग्रन्तरतम स्वर सगति जो ग्रब ग्रन्तनभ के
शिखरो से है उतर रही स्वणिम प्रवाह-सी
स्वप्नो से शोभा उवर करने वसुधा को ।
जीवन का ग्रानन्द स्वत ही मूर्तिमान हो
देख रहा निज रत्नच्छाया स्मित वभव को ।
मानव के ग्रपलक हृत् शतदल म सुख दोलित
दिव्य प्रेम का ग्रमर स्वप्न प्रस्फुटित हुग्रा जब
ग्रन्तमन की प्रथम उषा मे, शात सौम्य स्मित,
वह जीवन सौन्दय चेतना म लिपटा था ।
ज्योति प्रीति ग्रानन्द मधुरिमा,—ग्रब मानव का
जीवन भी पर्याय बन रहा उसी सत्य का ।
ग्रन्तरैक्य मे, बाह्य साम्य मे सयोजित हो
भू जीवन ... शोभा का प्रतिमान बन रहा ।

: - ग्रान द उल्लासमय मधुर वाद्य सगीत]

का गीत

के प्रागण मे
बरसाती,
लपटें
उकसाती ।
सोयी

^ ।

स्वर्गिक सुषमा की ज्वाला म
मैं मानव उर को लिपटाती।
मैं स्वप्नो के रथ पर आती,
मैं भावो के पर रँग जाती
प्राणा के सौरभ से गुम्फित
छायातप मे कँप लहराती।
मैं धरा चेतना की आभा
मैं स्वग क्षितिज की हू द्वाभा,
मैं ऊपाओ के ज्योति केतु
मानस शिखरो पर फहराती।
सौन्दय चेतना मैं मन की,
श्री शोभा मानव जीवन की
मैं स्वप्न सगिनी जन-जन की
छिप हृदय कुज मे मुसकाती।

कलाकार उच्च उच्चतर सोपानो पर चढ अधिमन के
अति मानस के दिव्य विभव से अभिप्रेरित हो,
मनुज चेतना उपचेतन की अ ध गुहा को
अवगाहित कर रही निखिल कल्मप कदम से।
विगत अहता का विधान विकसित वर्धित हो
मुक्त हो रहा राग द्वेप कुत्सा स्पर्धा से।
भेद भाव मिट रहे, छँट रहा सशय का तम,
उदय हो रही अ तर्मुख भावना साम्य की।
नव प्रतीति से, सहज प्रीति से प्रेरित होकर
मानव मानव को विलोकता नये रूप म।
सयोजित हो रहा मनुज मन नव प्रकाश म,
ज म ले रही नव मनुष्यता हृदय क्षितिज म।

मनश्चेतना का गीत

भू मानस म आओ।
मेघो के घन अन्तराल स
स्वर्णिम मुख दिखलाओ।
ध्वस्त पडा युग मन का खँडहर
उमड रहे घनघोर ववण्डर,
दिक कम्पित अ तर शिखरो पर
नव प्रकाश बरसाओ।
उद्वेलित भू जीवन सागर
लोट रही शत लहर लहर पर
मानवता की जरी तरी यह
फिर से पार लगाओ।
क्षुधा तपा कूला मे पोषित
जन जीवन की धारा शोपित,
पुलिन मग्न कर, नयी चेतना का
युग ज्वार उठाओ।

आज व्यक्तिगत, क्षुद्र स्वार्थरत
उर में जन मंगल हो जाग्रत्
अमृत प्रीति की विश्व भावना
मन में महत् जगाओ!

अन्तमन से मिले प्रेरणा
जन जीवन की बने योजना,
आत्म त्याग के पूत रक्त में
भू के कलुष डुबाओ!

कलाकार कैसा युग है क्रूर हमारा ह्रास नाश का,
कलाकार के लिए नरक हो गयी धरा यह,
शोभाजीवी उर को जीवन की कुरूपता
नागिन-सी डँसती रहती शत फन फैलाये!
प्राणचेतना अधोमुखी हो अवचेतन के
तम में लिपटी रेंग रही है भग्न रीढ़ पर,
आरोहण कर पाती नहीं हृदय आकांक्षा
स्वप्न पंख सौंदर्य चेतना के स्वर्गों में!
आहत, कुण्ठित सृजन प्रेरणा मृगतृष्णा बन
मन के मरु में भटक रही, जीवन विरक्त हो!
अन्तमन का विभव उतर प्राणों के स्तर पर
शोभा मण्डित कर पायेगा कब जीवन को?

प्राण चेतना का गीत

प्राणों में निखरो!
भू पथ पर जीवन शोभा के
नव रथ पर विचरो!

रश्मि वृत्तियों को कर में धर
लोक लोक अभिनव प्रकित कर
दुर्दम इच्छा के अश्वों को
संयत स्ववश करो!

स्पंदित हो नव भावों के स्तर
गुंजित हो स्वप्नों से अंतर
निज स्वर्णिम रथ चक्रों का रव
मन में मत्त भरो!

नव आशा से कुसुमित हो मग
नव अभिलाषा से मुखरित पग,
नव विकासमय, नवल प्रगतिमय
निर्भय चरण धरो!

जीवन मंगल का हो उत्सव
श्री सुख सुषमा का हो वैभव,

नव रस के निर्झर-से झर तुम
जन मन तृषा हरो।
अमृत स्पर्श मे हो तन पुलकित
मौन मधुरिमा से मन मुकुलित,
दिव्य शिखा ले, गुह्य तमस के
गह्वर में उतरो।

सौवर्ण

[प्रथम प्रकाशन वर्ष १९५६]

बन्धुवर
श्री रामचन्द्र टण्डन को
सप्रेम

विज्ञापन

'सौवण' के अन्तगत मेरे दो काव्य रूपक सगृहीत हैं, जो अपने सक्षिप्त रूप मे आकाशवाणी से प्रसारित हो चुके हैं। 'सौवण' का रचनाकाल माच १९५४ है और 'स्वप्न और सत्य' का नवम्बर १९५२।

१८/७ बी०, स्टेनली रोड, सुमित्रानदन पत
इलाहाबाद

द्वितीय सस्करण

इस सस्करण मे 'दिग्विजय' नामक नवीन काव्य रूपक भी जोड दिया गया है, जिसकी प्रेरणा मुझे यूरी गगारिन की अन्तरिक्ष यात्रा से मिली।

१५ फरवरी '६३ सुमित्रानदन पत

सौवर्ण

(सक्रमणकालीन मानव मूल्यो के विकास का प्रतीक रूपक)

स्वर्दूत
स्वर्दूती
देव
देवी
कवि
सौवर्ण
अन्य स्त्री-पुरुष स्वर

[युगान्तर-सूचक वादित्र संगीत]

(डमरु ध्वनि के साथ नेपथ्य से उदघोष)

पृष्ठभूमि में शोभित मौन हिमाद्रि श्रेणियाँ
विश्व सांस्कृतिक संचय सी स्थित शुभ्र सनातन,—
दिग् विराट यह दृश्य योग्य अमरों के निश्चय !

परिक्रमा कर रहे देवगण धरा शिखर की
अर्घ अगोचर, ज्योतिमग छायातप में भूषित
श्लक्षण मधुर कण्ठों से गान दिव्य वन्दना
नव्य युगान्तर का मन में संकेत पा रहे !

शंख घण्ट वीणा मृदंग गन्धर्व बजाते,
किन्नरियों के संग किन्नर करते नीराजन
प्रथम सुनें मंगल स्तव अम्बर पथ में गुंजित,
श्रवण करें फिर अमरों का गोपन सम्भाषण !

(शंख घण्ट वीणा मृदंग आदि का उल्लसित घोष)

[देवताओं द्वारा स्तवन]

जय हिमाद्रि, जय हे !

जयति, स्वर्ग भाल अमर,
जयति, विश्व हृदय शिखर,
जयति, सत्य शिव सुन्दर,
शाश्वत अक्षय हे !

पुण्य सेतु, देव निलय,
संस्कृति के शुचि संचय,
श्रद्धा सोपान अभय,
शुभ्र शान्तिमय हे !

धरा चेतना निखार,
जन मन के ज्योति ज्वार,
संयम तप मुक्ति द्वार
चिर मंगलमय हे !

विश्व ह्रास, क्रम विकास,
उर में करते विलास
कोटि सृजन प्रलय लास
सुख - दुख अभिनय, हे !

पावन सुर वारि निखर
उर म स्वर्णिम रव भर
भू रज रखते उर्वर,
जन चित् परिणय हे!

केवल, भास्वर, अमेय,
ध्यानावस्थित अजेय,
जीवन के चरम ध्येय
चिन्मय, तन्मय हे!

हरित अवनि भरित अंक,
रहस कलामय मयंक,
काल व्याल से निशंक
मृत्युंजय, जय हे!

उदित कौन परम लक्ष्य
मनश्चक्षु के समक्ष?
ऊर्ध्व प्राण मौन वक्ष,
सुर नर विस्मय हे!

(स्तवन के उपरांत देवगणो का सवाद)

देव

निभृत याम यह मध्य निशा का, गुह्य तमसमय,
गहन अचेतन मन सा, रहस मौन से मुखरित,—
भूत निशा ही देव जागरण की वेला भी!
अतल मूक भय नीचे, ऊपर नीरव विस्मय,
महा प्रकृति विश्राम कर रही स्वप्न-कक्ष म,—
रज सत तम हो लीन आत्म विस्मति के पट मे!
कसा निविड तिमिर छाया यह महा दिशा के
केशजाल - सा महाकाल के वक्षस्थल पर
गाढ लालसाओ के आवर्तो मे लहरा —
सृजन हर्ष के प्रीति पाश मे बँधे हुए दो!
दिव्य तमस यह दिव्य विभा म होगा वितरित
दीपित कर नय विस्मय को आशा प्रतीति स!

देवी

शुक्ल पक्ष नवमी के शशि का सौम्य पाश्व मुख
मौन मधुरिमा आभिजात्य गरिमा म मण्डित,
नीरव सम्मोहन बरसाता अन्तरिक्ष से
अन्धकार के निखिल जगत का केन्द्र बिन्दु बन,—
अन्तमन के शान्त मुकुर सा चिर तेजोमय!
हिम शिखरो पर प्रतिध्वनित शत रजत रश्मियाँ
आत्म चकित आभाओ म प्रतिफलित हो रही
दीप्त प्रेरणाओ - सी, नि स्वर उन्मेषो - सी,—

कँप उठती हों कोटि तडित् हर्षातिरेक से !
स्वत स्फुरित जल उठती जगमग वन ओषधिया
बिना पँखडियो क पुष्पा सी शत वर्णो म,
इद्रधनुप पखो म उडकर स्वप्न दूत नव
विचरण करत अतश्चेतन मनोभूमि म,—
अद्भुत वातावरण उपस्थित रहस सजन का !

देव

पतझर मधु का सधिकाल यह झर झर पडते
पीले पत्रो के ममर क्षण, उर क्रदन से,
प्राण वायु का मलय स्पश पा, गत स्मतिया के
जीण भार से हृदय मुक्त कर, मूक धरा के
उपचेतन मे गोपन अस्फुट पद चापा से
मौन प्रतीक्षा, आशा का सगीत वहन कर !—
निजन वन म गूज उठी लय सजन व्यथा की !
रजत कुहासे मे लिपटी कलियो की स्वणिम
अध खुली पलकें हँस उठती स्वप्न जगत म,
नाम हीन सौरभ मे डूब गया दिगत मन !
अतश्चेतन सूक्ष्म भुवन हो रहे पल्लवित,
निकट सक्रमण वेला भू मानस विकास की !

देवो

अधिमानस का शैल खडा जाज्वल्य, स्वप्न स्मित,
यश काय चैतन्य का अजर अन्तमन का
सार तत्त्व मानव सस्कृति का अमर दाय धन !
जिसके शिखरो पर ऊर्ध्वाकाशो से झर झर
शत शत रत्न छटाएँ छहराती प्रकाश की,
जम अभी ले सका नही जो मनोगुहा मे !
जन के अतर्जीवन का इतिहास अलौकिक
पुजीभूत हुआ इसमे युग युग म विकसित,—
सूक्ष्म जगत के सोपानो मे उठ अतर्मुख !

देव

आज नवल चेतना शक्तिया जम ग्रहण कर
ज्योति प्रीति सुषमा की स्वर्णिम निझरिणी सी
नव स्वर लय गति मे नि स्वर नूपुर झकत कर
रश्मि स्फुरित अन्तनभ से अवतरित हो रही
ध्यान मौन इस तपोभूमि के रजत व्योम म !—
जन श्रद्धा विश्वास, चेतना की सासा से
जहाँ सत्य-परिणीत पावती परमेश्वर से !

देवी

कोटि लक्ष युग बीत गये, जब निस्तल जल से
ज्योति स्तम्भ-सा निखरा था चैतन्य लोक यह,

शनै शनै उठ, ऊर्ध्व भाल पर धारण कर निज
रवि शशि तारा जटित मुकुट हिमतमालमतज का!
सामन्ता, सम्राटा, धनिका के युग म बहु
विकसित होता रहा गुह्य ग्रन्तस्थ कूट यह,
मम गुजरित इसकी प्राणा की द्रोणी म
जीवन वैभव रहा भूनता नव शोभा म।

देव

नया सास्कृतिक वृत्त उदित हो रहा क्षितिज म
मानव जीवन मन का नव रूपान्तर करने,
नव सगति म सँजो परिस्थितिया की भू को,
नवल सतुलन भर बहिरन्तर के यथार्थ म।
नवमी का मणि कलश, पूर्ण चैतन्य सुधा स,
स्वप्न द्रवित राका बरसायगा भविष्य की
दव दृष्टि अतिक्रम कर चुकी मनुज के मन को,
सक्रिय फिर से दिव्य चेतना, नव्य सचरण
गुहा बद्ध ज्योतिनिर्झर सा युग मचेष्ट अब,
जन भू को मज्जित करने जीवन शोभा म।
देखो, वह, स्वर्दूत उतरते स्वप्न परा स्मित,
आओ, हम विश्राम करें ध्यानावस्थित हो?

(देवा का अन्तर्धान होना स्वर्दूतो का प्रवेश)

स्वर्दूती

ओ नभचर, ओ खेचर, क्या स्वप्ना म जाग्रत्
भाव पख थक गये तुम्हारे? कहाँ छिप हो?

स्वर्दूत

मैं हूँ तो, खेचरी, क्या कहूँ, इन अमरो का
नित नव वैभव देख, दृष्टि अपलक रह जाती।
बरस रही स्वप्ना की जगमग नीरव शोभा
स्वर्णिम पखडियो म झर झर अन्तनभ से,
चकित रह गये लोचन क्षण भर ज्योति मूढ हो।

[प्रसन्न वाद्य सगीत]

यह अमरा का पुण्य धाम, गोपन क्रीडा स्थल,
सूक्ष्म चेतना, सृजन शक्तियो के प्रतीक जो
आज अतन्द्रित मन स्वग के वासी सुरगण
तपोभूमि मे हिमवत् की समवेत हो रहे,
कल्पान्तर का रहस समय सन्निकट जानकर —
हम जिनके नव युग के प्रतिनिधि अग्रदूत है।

स्वर्दूती

रहने दो इन प्रतिक्रियावादी देवो को,
मूढ मनुज को स्वप्न पलायन सिखलाते जो।

आओ, हम भू भ्रमण करें स्मित छाया पथ से,
जन युग की नव परिणति देखें मनुज लोक मे !

स्वदूत

क्या ये पौराणिक प्रयोग अब भी सम्भव हैं ?

स्वर्दूती

सब कुछ सम्भव है प्रगल्भ कल्पना के लिए,
जो विद्युत गति से, अणु जव से वेगवती है !
नव प्रयोगों का यह वैज्ञानिक युग जग मे,
वायुयान से उड इस युग का भौतिक मानव
देवयानो मे विचरण करता अब, अम्बर के
मथित उर को विद्युत् पखो से विदीर्ण कर !

(शखध्वनि और मन्त्रोच्चार)

वह देखो, स्मित अधित्यका अन्तर्मानस की,
ऋषियो के पावन आश्रम-सी, मौन ध्यान रत
नीवारो के ढेर लगे नीरव चिन्तन से,
लटके धुले कषाय, साधना विरस चित्त से,
लिपे पुते तृण प्रागण सुथरे सात्विक मन से
यज्ञ धूम, मन्त्रोच्चारो से लगते धूमिल !
विचरण करते यहाँ मृगो के छौने अब भी
निज अबोध विस्मित चितवन से देख जगत को,
सीगो से सहला मुनियो के समाधिस्थ तन !
यहाँ आत्म द्रष्टा तापस बैठे निर्जन मे
पद्मासन स्थित, केन्द्रित दृग नासाग्र भाग मे,
आरोहण कर रहे ऊर्ध्व श्रेणियाँ मनस की
प्राणो की सतरँग छायाएँ छील कर निखिल,
तन्मय, विश्व विरत, अखण्ड ब्रह्माण्ड सत्य को
बौने मा अगुष्ठ मात्र पा, आप्त काम मन !

स्वर्दूत

बौने सा अगुष्ठ मात्र ? यह विडम्बना है
मानव मन की निश्चय, जो अति भाव प्रवण हो,
घट को सागर मे मज्जित करने के बदले
सागर को बाधना चाहता सीमित घट मे !
अखिल व्याप्त सत्ता के सक्रिय अमर सत्य को
आत्म रूप मे परिणत कर निष्क्रिय साक्षीवत !
हाय, असम्भव को सम्भव करने की निष्फल
चेष्टा मे वह इन्द्रजाल रचता जाता नव !

स्वर्दूती

वह देखो, वह भू जीवन की घाटी नूतन
अन्धकार था जहाँ घोर, विद्युत प्रकाश से

जगमग अब यह लगती नव नक्षत्र लोक-सी !
यहाँ मनस्वी मानव अथक निरीक्षण पथ से
उद्घाटित कर मूक प्रकृति के रहस वक्ष को,
भौतिक जग के गहन रहस्यों को अधिकृत कर
जुटा रहे मानव भावी के उपादान नव !
किन्तु मृत्यु के दारुण पंखों की छायाएँ
उन्हें त्रस्त कर रहीं, स्वेद से सिंचित उनके
रचना-श्रम को छीन, अमृत को बदल गरल में !
आज नाश की मुट्ठी में बन्दी विवश सृजन !

स्ववृंत

कहीं नितान्त कमी है इस यान्त्रिक युग में !
एक ओर है महत मनुज का रचना संचय,
और दूसरी ओर वृहत् खाईं अभाव की
मध्य युगों के अभिशापों से भरी भयानक
रूढ़ि रीति शोषण के कर्दम का मुँह बाय,—
मानवता के उर में पड़ी घृणित दरार-सी !
अभी बदलना मानव को भीतर बाहर से
अतिक्रम कर अपनी सीमाओं के संकट को !

स्ववृंती

वह देखो, समतल प्रसार फैला दृग सम्मुख
जहाँ क्षुब्ध जन-ग्राम, नगर, गृह, हर्म्य, राजपथ
मृण्मय प्रतिमानों-से बिखरे विगत युगों के,
उपचेतन के मान चित्र से अस्तव्यस्त जो
मनुज सभ्यता की चापों से ध्वनित अवनि पर
ज्यों मिटते पदचिह्न शेष हों काल पथिक के !
बहु देशों में खण्डित रुद्ध धरा का मानस
आज घृणित स्पर्धाओं, स्वार्थों से आतंकित,—
घनीभूत होती विनाश की भीषण छाया
जन भू के मुख पर विषाद नैराश्य से भरी !
मँडरा रहे विहग भीम धूमाक्त क्षितिज में,
लगता हरित प्रसार सिन्धु-सा आन्दोलित अब,
आवेशों से उद्वेलित उद्भ्रान्त नागरिक
नव्य युगान्तर का आवाहन करते भू पर !

(गीत)

पुरुष स्वर

एक वृत्त हुआ शेष,
वृत्त शेष, वृत्त शेष !
जन-मन में मर्मर भर
नव युग करता प्रवेश !
वृत्त शेष !

स्त्री स्वर

युग विवर्त प्रहर घोर
छाया तम ओर छोर,
दूर अभी दूर भोर
दिक् कम्पित भू प्रदेश !
वृत्त शेष !

पुरुष स्वर

पावक का लोक अमर
आकुल करता अन्तर
मृत्यु घूम रहा पहर
गरजता क्षितिज अशेष !
वृत्त शेष !

स्त्री स्वर

निद्रा से क्लान्त नयन
स्मृतियों से उपचेतन,
मातम में युग स्पन्दन
प्राणों में नवोन्मेष !
वृत्त शेष !

पुरुष स्वर

सिहर रहे सूक्ष्म भुवन
जीवन रज नव चेतन,
धरते नव स्वप्न चरण
मिटने को दैन्य क्लेश !
वृत्त शेष !

(संगीत ध्वनियाँ धीरे धीरे लय होती हैं नागरिकों का संवाद)

एक पुरुष

क्रान्ति, विप्लवों, भू युद्धों, गृह संघर्षों से
त्रस्त, क्षुब्ध, युग आन्दोलित अब धरा चेतना,
भूमि कम्प घात दौड़ रहे हों भू मानस में !
कैसा दारुण युग आया निर्मम विनाश का !
ध्वस्त हो रहे संस्कृतियों के सौध रत्न स्मित,
भू लुण्ठित स्मृति शिखर ज्योतिमुख आदर्शों के,
नष्ट भ्रष्ट संगठन सचेतन मानव मन के !
धर्म, नीति, आचार गिर रहे औंधे मुंह हो !
हँसमुख तम से भरे अतल कामना कूप में !
बुद्धि भ्रान्त, जीवन के आवेशों से चंचल
भाग रहा मन बहिर्जगत के जलते मरु में
मृग मरीचिका पीड़ित, चल जल छाया मोहित !

स्त्री स्वर

सिंहासन लुट रहे, टूटते छत्र रत्न प्रभ
ज्वलित तारका से भू रज पर, रूढ़ि रीति के
दुर्ग ढह रहे,—दिवा भीत विश्वासों के गढ़
भिल्ली भंकृत! उथल-पुथल मच रही धरा के
जीवन प्रांगण में, दारुण भंभा कम्पित जो!
धधक रहे उपचेतन के शत ज्वालामुख गिरि
युग-युग के आवेशों की लपटें बरसेरकर,
भीषण छायाभा से उद्वेलित जन-मन अब!

दूसरा पुरुष

परिवर्तित हो रही वास्तविकता जगती की
नव रूपों में प्रकट हो रहा जीवन शाश्वत,
विश्व विवर्तन को धारण करने में सक्षम!
शाश्वत तथा अनित्य विरोधी तत्त्व नहीं दो,
एक सत्य ही विविध स्वरूपों में अन्तर्हित,
परिवर्तन की अविच्छिन्नता ही शाश्वत है,
भूत भविष्यत् वर्तमान हैं गुम्फित जिसमें!
जीवन सक्रिय देश काल में विस्तृत शाश्वत,
सक्रिय आज परिस्थितियों की रुद्ध चेतना,
बहिर्दृष्टि विनाशों से नव बल संचय कर!
बदल रहा जीवन यथार्थ, मानस-पदार्थ अब,—
नव मानव मूल्यों में कुसुमित सामाजिकता
विश्व विषमताओं में नवल समत्व भर रही!

स्त्री स्वर

महत् प्रयोग धरा जीवन में आज हो रहे
एक वृहद भू भाग रक्त कर्दम से उठकर,
दैन्य निराशा, क्षुधा, ताप के घृणित नरक के
अंधकार को चीर, विषमता की कारा से
वर्ग मुक्त हो, अमानुषी सत्त्वों स्वार्थों को
रौंद चूर्ण कर मध्ययुगों की जीवन जर्जर
परम्पराओं की सीमाएँ छिन्न भिन्न कर,
भू जीवन की मूर्त प्रेरणा से उन्मेषित
श्री समत्व का धरा स्वप्न निर्माण कर रहा
जन बल की संगठित लौह संकल्प शक्ति से!

पुरुष स्वर

युग-युग के शापों तापों में शोषित जनगण
मानवता की लोक कल्पना से अनुप्राणित
मूर्तिमान कर रहे धरा के प्राण-स्वप्न को!
निखर रहे नव रजत सूत्र जन सम्बंधों के,
नव प्रणालियों के स्वर्णिम ताने-बाने में

नवल लोक-जीवन का पट हो रहा भू ग्रथित !
ग्रादर्शों के दीप्त लोक नव उदित हो रहे,
जन संस्कृति का अरुणोदय प्रासाद उठ रहा
सिंधु ज्वार-सा मुक्त प्राण, रवि शशि ग्रह चुम्बित,
खोल दिगन्तो के वातायन स्वप्न मजरित !

(सुख वैभव द्योतक प्राणप्रद वाद्य सगीत)

स्वदूती

वह देखो, वह उपत्यका सौंदय पल्लवित
मौन चाँदनी खिली जहाँ जीवन स्वप्नो की !
रजत घण्टियो मे झकृत परिवेश सुरक्षित,
सौरभ स श्लथ वायु मनोभावो से गुजित !
कलाकार है जुटे वहाँ विश्रुत युग चेतन
सवेगो के सूक्ष्म कुहासो म जो लिपटे,
नीरव पौ फटने का - सा मादव है मुख पर,
रूप उनीदी पलके, भावोद्वेलित ग्रन्तर,
सम्भाषण कर रहे सुनो वे, वादो म रत,
ग्रात्म दर्प स घिरे, व्यथा से जग की पीडित !

(वाद विवाद का कोलाहल ग्राकाश म
मँडराते हुए तोतो के स्वर, जो 'गाड
ब्लेस यू', 'गॉड ब्लेस यू' दुहराते है)

स्वदूत

ये पश्चिम के मध्यवित्त बौद्धिक सम्भवत,
मानववादी परम्परा के नव ग्रधिनायक,
जनवादी तन्त्रो के जीवन स विभीत हो
दिवा स्वप्न जो देख रहे पीडित पलको पर,
व्यक्ति मुक्ति के कामी, मोह निशा मे निद्रित !
निज कुसुमित वाणी स ये ग्राकर्पित करते
मनोजीवियो के मधु लोलुप मधुकर मन को !

स्वदूती

सुनने दो क्या कहते वे युग मच पर खडे !

एक बुद्धिजीवी

मित्रो, घोर भयकर सकट की स्थिति है यह,
मानव सस्कृति यान डूबने को ग्रब निस्तल
जल तल म, जन जीवन ज्वारो स ग्रान्दोलित !
यह केवल ग्रार्थिक न राजनीतिक ही सकट,
जीवन के मौलिक प्रतिमानो का सकट यह
ग्राज उपस्थित जो मानव इतिहास म विकट,
वचित जिससे नही कला साहित्य क्षेत्र भी !
सामाजिक होती जाती ग्रब प्रगति भावना,

विविध मतो, वादो, दलगत स्वार्थों म खोयी—
सामाजिकता आज बाहुबल से है शासित !

(उच्छ्वसित होकर)

मँडराते अपरूप विहगम मुक्त गगन म,
गहराती धूमिल छायाएँ जन धरणी पर,
घोर प्रलय के मेघ उमडत अन्तरिक्ष म—

(सहसा हतवाक् होना)

दूसरा स्वर

सुनिए, मैं समझाता हूँ इस युग सकट को,
रुद्ध कण्ठ हो गये सुहृद् भावनावेग से !

(जनता का उच्च हास्य)

दो प्रकार के दारुण सकट आज सामने,
दोनो क्षेत्रो पर हमको सयुक्त जूझना !
एक, जनो को धरा स्वग का आश्वासन दे,
सम्प्रति भय, अन्याय, यातनाएँ सहन को
बाधित करते उनको बहुविधि आतकित कर,
बुद्धि विवेक विहीन बना मानसजीवी को,—
क्रूर सघ स्वार्थों का साधन बना मनुज को !
और दूसरे, रिक्त शून्य मे पख मारकर
ऊपर ही ऊपर उडते हैं ज्योति अन्ध हो,
स्वप्न पलायन सिखा जनो को अविनाश मे !
दिव्य स्वाति के पी-पी रटते प्यासे चातक
भावी के आकाश कुसुम निज चचु मे लिये,
कुम्हला उठते जो जीवन के शीत ताप से !

स्त्री स्वर

सच है, यह दिन के प्रकाश-सा स्वय स्पष्ट है !
ये दोनो ही मूढ पलायन वतमान से !
सत्य भविष्यत् नही, भूतमय वतमान है,
वही भविष्यत् होगा जिसे बनायेंगे हम !
वतमान, जो चिर अतीत की परम्परा का
मूत रूप है, वही सत्य है, वही प्रगति का,
युग विकास का मापदण्ड है,—यह अकाट्य है !
जैसा मैंने कही पढा,—हम जो जीते हैं,
हम्ही सत्य हैं ! वतमान क्षण के पुट मे ही
हमे बाँधना होगा जीवन के शाश्वत को !

(करतल ध्वनि)

दूसरा स्वर

यही सत्य है ! सुनो बन्धुओ, हमको दोनो
पलायनो से लडना होगा, जो भविष्य के

मृग मरु में भटकाते मन को। मूल प्रगति के
नही शुष्क सामाजिकता मे, जो दल शासित,
नित नवीन आवेशो से उत्तेजित रहती।
मानव मूल्यो का है स्रोत मनुज के भीतर,
जीवन मर्यादा में विकसित सहज व्यक्ति मे।
अस्थायी हैं जन जीवन के मूल्य बहिर्गत,
सिद्ध कर दिया यह युग के इतिहास ने इधर
यान्त्रिक, जनतान्त्रिक प्रयोग बहु कर जन मन मे।

स्त्री स्वर

अल्प सख्य जो हम सस्कृति के अग्रदूत हैं,
मानवता के ज्योति शिखा वाहक युग-युग के—
गहन समस्या आज हमारे निकट उपस्थित
कैसे हम असुरो के कर से छीन अमृत घट
देवो के हित करें सुरक्षित, युग गगा की
सुधा धार को छिपा श्रवण पुट में फिर अपने,
देश देश का मानस वैभव सचित जिसमे।
यह गौरव अधिकार सदा से रहा हमारा,
हम जो काल प्रबुद्ध अल्प सख्यक जन जग के,
वहन करें हम धरती पर सन्देश स्वर्ग का,
मानव मूल्यो की मर्यादा को विकसित कर।
आज जगत के सम्मुख प्रस्तुत जटिल प्रश्न यह
साध्य और साधन हो कैसे स्वर्ण समन्वित।

पुरुष स्वर

सामूहिकता चूर्ण न कर दे व्यक्ति व्यक्ति की
स्वतन्त्रता, सकल्प शक्ति, उन्नत विवेक को,
इससे पहिले हम जो इने गिने मानस हैं
हम सगठित होकर अब तत्पर रहना है
निज महान दायित्व के लिए, भू मगल हित।
हम थोडे जो जीवित हैं अस्तित्ववान हैं,
हम्ही सत्य हैं, शेष व्यर्थ भूभार मात्र है,—
क्योकि नही परिचित व व्यापक भू जीवन से,
विश्व सभ्यता की गति से, मानव सस्कृति की
सूक्ष्म, रहस्यभरी अति जटिल विकास सरणि से।

प्रथम स्वर

मुझे बोलने दे अब, मैं आश्वस्त हो गया।
मित्रो, मूल्यो का उद्धार हम करना अब
सुन व्यक्ति के भीतर उनको स्थापित कर फिर।
हमे विशिष्ट मनुष्य चाहिए, जो प्रतिभा के
पखो में उड सकते मन के अन्तर्नभ मे,
स्वर्गगा सा जहाँ उत्स मानव मूल्यो का
चिर अनादि से अन्तर्हित स्मित छाया पथ मे।

अल्प सत्य कुछ ही हम कर सकते अवगाहन
उस अनन्त सलिला धारा मे प्रतिक्षण !—
गुरुतम युग दायित्व हमारे दुर्बल कंधों पर
आज आ पड़ा, हम जो नूतन के भारवाह हैं,
निखिल विश्व जीवन, चिन्तन, सौन्दर्य बोध के
निरवधि सागर का मन्थन कर, वर्तमान के
क्षीर फेन से मानव मूल्यों की मर्यादा
सार रूप मे संचित कर, उस जटिल सत्य को
निज विवेक सम्मत स्वतन्त्र संकल्प शक्ति से
सृजन कर्म मे परिणत करना हमको शाश्वत !—
विकृत प्रचारों, भावावेशो से हत, मूर्छित
शब्द शक्ति का नवोद्धार कर, नव मूल्यों का
उसे प्रतीक बना, मार्जित रुचि से सँवारकर
मानव के भीतर करना है हमे प्रतिष्ठित !—
बहिरन्तर का शुष्क समन्वय भ्रम है केवल !

तीसरा स्वर

कैसा कुसुमित शब्द जाल है ! सुन्दर वाग्छल !

स्त्री स्वर

कायरता से बचना है प्रतिभावानो को !
कायरता से ग्रस्त रहा इतिहास मनुज का,
कायरता से विमुख हुआ प्रतियुग मे मानव
निज अन्तर सत्यो से, सत्यो की पुकार से !
वर्तमान मे दृढ रहकर—बहते अतीत का
मूर्त रूप साम्प्रत क्षण जो, उसके प्रति जाग्रत्,
हमको निज निज स्थिति से पुन स्वधर्म के लिए
आत्म यज्ञ मे पूर्णाहुति देनी है—

तीसरा स्वर

उसको

लोक यज्ञ कह, नव मूल्यो का ज्योतिवाह बन !
सामाजिकता निगल न दे निज वर्तमान के
सत्यो के प्रति जाग्रत बौद्धिक वर्ग व्यक्ति को
जो छाया सा काँप रहा जन भय से मूर्छित,
सावधान रहना है हमको—

एक स्वर

क्या बकते हो ?

तीसरा स्वर

सामूहिकता कुचल न दे विस्मृत अतीत की
परम्पराओ के हम पथराए ढूहो को,
हमको रहना है सतर्क, संगठित—

स्त्री स्वर

चुप रहो ।

तीसरा स्वर

हमने अपने ही भीतर से युग जीवन का
जटिल जाल है बुना अहता से निज, जिसके
स्वर्णिम मर्यादाओ के तान बाने म
बन्दी हैं हम आप स्वय कँप उठता है जो
श्वास मात्र से,—जिसम आसो से दुखत क्षण
जगमग कर उठते, शशि किरणा स सम्मोहित ।
भाव जगत यह मूक व्यक्ति का, सूक्ष्म, गहन, तत,
जो कि असुन्दर क्षण को भी सुन्दर कर देता
निज प्राणा का रस उडेल कर अवचेतन स ।
हम, सच, नय प्रयोग कर रहे मानव मन म ।

स्त्री स्वर

व्यग्य मत करो, बन्द करो—

एक स्वर

वह सच कहता है ।

तीसरा स्वर

यह विशेष अधिकार सदा स रहा हमारा,
हम जो चेतन प्राण, अल्प सख्यक है जग के,
हम नव युग सन्देश वहन कर अन्ध धरा म,
चरवाहा से जन भेडो को रह हाँकते,
मानव मूल्यो की नव मर्यादा घोपित कर ।
जन धरती म फलती नही सुनहली सस्कृति,
वह उगती कुछ बुद्धिजीवियो के मानस म,
केसर की क्यारी हँसती ज्या सरोवरो म ।

एक स्वर

इसे चुप करो ।

दूसरा स्वर

इसे पकड लो, मत जाने दो ।

स्त्री स्वर

यह कोई भेदिया, गुप्तचर लगता निश्चय ।

(द्वन्द्व कोलाहल)

स्वर्दूत

यदि फूलो की रक्त शिराएँ उत्तेजित हो
तो उनके मुख चमक सकेगे कभी सूय स ?
वे निरस्त कर पायेंगे धरती के तम को ?
ह्रासोन्मुख सस्कारो का उन्माद मात्र यह ।

तकजाल से यदि विकसित होता मानव मन
तो न पनपता तरु जीवन आकाश लता सं ?
महत् भाव ही मौन विभूषण मानव मन के,
मुकुट पुष्प ही पहना सकते तरु शिखरों को !

स्वर्दूती

उधर चलें अब खेचर, हिम प्राचीर पार कर,
देखें मलयज सुरभित स्वर्णिम शस्य भूमि को,
सदा विश्व के मुग्ध दृगों की स्वप्न रही जो !

स्वर्दूत

पलक मारते पहुँच गये लो, अपने मन की
अभिमत भू पर,—सफल करो अब अपलक लोचन !

स्वर्दूती

अहा, दीखती रम्य हरित भू मरकत मणि-सी,
मौन गुंजरित से लगते गृह कुंज नगर वन
अमर विश्व गायक की सद्य स्वर लहरी से !
यहाँ महत् सांस्कृतिक संचरण जन्म ले रहा
मानवीय गरिमा में अतिक्रम कर इस युग को,
हृदय स्पर्श करने में पारस मणि सा सक्षम !—
जो पशु तल से उठा मनुज को मानस तल पर,
आवेशों से सत्य शील संयम के स्तर पर,
सौम्य चेतना से निज विस्मित करता जग को !

स्वर्दूत

स्मृति पट पर नव आभा रेखाओं से अंकित
प्रकट हुआ युग पुरुष अभी इस पुण्य भूमि में,
जो अनादि से देवों को प्रिय रही विश्व में !
जिसकी मनोगुहाएँ जनश्रद्धा से दीपित
जीवन पावन रहीं, अविद्या तम से वंचित,
उपचेतन निश्चेतन स्तर तक आलोकित हो !
यहाँ असत पर सत की, तम पर सतत ज्योति की
तथा मृत्यु पर विजय हुई अमृतत्व की महत् !—

स्वर्दूती

यहाँ पंक से ज्योति पद्म सा उठकर विहँसा
युग मानव वह लोक सत्य से अनुप्राणित हो,
संयम तप से दीप्त आत्म स्मित सदाचार की
रजत शिखा कर में धर, बर्बर हिंस्र जगत को
महत् साध्य अनुरूप दे गया जो नव साधन,
प्रेम अस्त्र से जीत घृणा को,—स्थितप्रज्ञ मन !
युद्धों से हत जर्जर भू पर विश्व श्रेय हित
सबल अहिंसा के प्रयोग कर जाग्रत सक्रिय

सामूहिक स्तर पर,—जन मन को द्वेप मुक्त कर।
आत्म शक्ति से जूझ सगठित पशुबल से वह
प्रवृत्तियो के अध प्रयोगो की झझा मे
रहा अडिग, चेतन पवत-सा नतिक बल का।
सच है, स्वणधरा यह उसके अथक यत्न से
युग - युग के पाशो से जीवन मुक्त हो पुन.
मानव गौरव वहन कर रही, विश्व मुकुट बन,
कीर्ति स्तम्भ सी उठ उसके तप आत्म त्याग की।

स्वर्दूत

वह देखो, नव जीवन - सा सचार हो रहा
जन ग्रामो म आज, सजन कर्मों म रत जो।
नव वसन्त म स्वप्न मजरित कुजो से हँस
दिक कुसुमित जन वास उठ रहे श्री सुख कूजित।
नव आशा आकाक्षा से मुखरित जन मन अब
नव्य चेतना से दीपित आश्वस्त, उल्लसित।
हृष्ट पुष्ट तन शत कर पद श्रमदान कर रहे
नव जीवन निर्माण हेतु, जन मगल प्रेरित।

स्वर्दूती

आ, पर निमम सस्कारो स पीडित यह भू।
करुण दश्य देखो वह कुण्ठित मानवता का,
युग - युग के शापो विश्वासो से कवलित जन
दैन्य दुख के पजर स लगते जीवन मत।।
मिट्टी के खँडहरो घरौंदो मे पुजित वे
रेंग रहे हैं रीढ हीन जीवन कदम म।
शीत ताप आधी पानी म वन कुसुमो से
क्षण भर खिलकर, कुम्हलाकर आदिम निसग की
निदयता को अर्पित, निष्ठुर नियति पराजित।

स्वर्दूत

पर दखो मरुथल म हँसमुख हरित द्वीप से
धीरे सोये ग्राम जग रहे जीवन चेतन
नव शोभा से लिपे पुते जन सस्थानो से—
सौम्य शील सस्कारो के उवर निकुज ये
लोक चेतना स्पर्शों यत्नो से अनुप्राणित!
सघ विकेन्द्रित यहाँ हो रहा मानव जीवन
रुचि स्वभाव वचित्र्य ग्रथित भू के भागो मे,
एक मात सत्ता के अवयव स ये अगणित,
मधुचक्रो से गुजित जन जीवन वभव स।
धय अहिंसक भूमि, सत्य पर प्राण प्रतिष्ठित,
मानवीय साधन से सुलभ जहा जन मगल।
विश्व शाति कामी य जनगण, भू के प्रेमी

सरल सयमित जीवन जिनका श्रम पर निर्भर!
गृह धधा उद्योगो स, तकुग्रो चरखो स
बुनत सस्कृत आत्मतुष्ट जन-जीवन पट जो!
लोक जागरण के इनके सात्विक प्रयत्न ये
रजत किरीट बनेगे निश्चय मानवता के,—
रक्त मुक्त चिर शान्ति क्रान्ति के अग्रदूत बन!
प्रतिध्वनित इनके भू मगल के गीतो से
पुण्य धरा के ग्राम नगर, कानन, नद निर्भर!

(विश्व शान्ति द्योतक वाद्य सगीत)

मगल गान

गाओ, जन मगल ह!
शस्य हरित रह सतत
स्वर्णिम भू अचल ह!

शान्त रह नील गगन,
शान्त सिन्धु वारि गहन,
शान्ति दूत हो दिगि क्षण,
विश्व शान्ति शतदल हे!

सजन कम निरत जगत
घणा द्वेष स्वाथ विरत,
प्रीति ग्रथित हृदय प्रणत,
पूजित हो श्रम फल हे!

भीति रहित हो जन मन,
वैभव स्मित जग जीवन,
शोभा अपलक लोचन,
कुसुमित दिड् मण्डल हे!

शान्त हो समर प्रमाद,
शान्त मनुज का विषाद,
शान्त निखिल तकवाद,
शान्ति स्वग भूतल हे!

स्वर्दूत

चलो, चलें औद्योगिक केन्द्रो मे भी क्षण भर,
घनी बस्तिया जहाँ उगलती धूम निरन्तर
धूमिल कर मानव भावी के घिरे क्षितिज को!
जहा उमडते विश्वक्रान्ति क प्रलय बलाहक
महायुद्ध की लपटो पर शत धार बरसने,
तथा शान्त करने भू उर की क्रूर अग्नि को!

स्वर्दूती

वह देखो, कुछ विश्रुत देशो के अधिनायक
विश्व शान्ति के लिए यहा समवेत हुए हैं,

चिन्तातुर मुख, कुचित भ्रू, रेखांकित मस्तक।
सोच रहे मन ही मन, दव, विश्व म सम्प्रति
शान्ति हमारे ग्रथों मे स्थापित हो सकती।
किन्तु व्यथ सब! विधि को जान क्या स्वीकृत है।
कुछ भी निणय नही कर सका शाति मिलन यह,
जसा होता आया सदा हुआ वसा ही।
रिक्त वितण्डावादो म सब समय खो गया,
स्वाथ त्याग करने को कौन यहा है उद्यत ?
आज गभीर समस्या है भू जन के सम्मुख
युद्ध नही तो क्या वे तत्पर शाति के लिए ?

स्वर्दूत

पर देखो वह विश्व शाति की रजत शिखा सा
जो सबके सँग है —हताश वह नही तनिक भी।
मध्यमाग का पथिक, तटस्थ सदा हिंसा से,
पचशील का पोषक, सहजीवन का घोषक
घृणा द्वेष से विमुख, प्रमुख युग द्रष्टा भी जो
चिन्तन कृश तन, निज महदाकाक्षा सा उन्नत,
चुप न रहेगा वह जूझेगा धम चक्र ले,
जन मगल का लोक न्याय का पक्ष ग्रहण कर,
निज नतिक बल डाल सत्य की विजय के लिए।

स्वर्दूती

सच कहते दिग्भ्रान्त जगत का दीप स्तम्भ वह,
उसके ऊपर वरद हस्त है लोक पुरुष का।
आह, घोर शिविरो म आज बँटा भू जीवन,
घृणा द्वेष स्पर्धा के दारुण दुग सगठित,
हिंस्र प्रचारा के भीगुर चीत्कार भर रहे
उग्र मतो, कटु तर्कों वादो म झनझन कर।
रग बदलत रह-रह अवसरवादी गिरगिट,
रटते अध पठित दादुर अपना अपना मत,
उछल घृणित जीवन कदम म कण्ठ फुलाकर।
आवेशो के भुजग लोट, फुफकारें भर-भर
जन मन को करते विषाक्त फन खोल भयकर
रूद्ध वासना के घोघे, केंचुवे सरीसृप
रेंग रहे निश्चेतन तम म धरा-नरक के।
रूढि, रीति, आचार अधविश्वास अनेका
पख छटपटाते विभीत गेंदुर उलूक-स
गहन अँधरी खोहा मे पठे जन-मन की।
भूख-भूख चिल्लाते कँपते जीवन पजर,
प्यास प्यास स्मर दग्ध, स्नायुओ के तण पिंजर,
महाह्रास म जीवन तम का भार ढो रहा
पशुओ के स्तर पर प्रवृत्तिजीवी मानव गिर।।

सरल संयमित जीवन जिनका श्रम पर निर्भर!
गृह धंधों उद्योगों में, तत्पर रहता स
पुलक संस्कृत ग्राम तुष्ट जन-जीवन पट जो!
लोक जागरण के इन सात्विक प्रयत्न से
रजत किरीट बनेंगे निदाय भावना के,—
रक्त मुरा चिर शान्ति क्रान्ति के अग्रदूत बन!
प्रतिध्वनित इन भू मंगल के गीतों से
पुण्य धरा के ग्राम नगर, कानन, नद निर्झर!

(विश्व शान्ति द्योतक वाद्य संगीत)

मंगल गान

गाओ, जय मंगल हे!
शस्य हरित रहे सतत
स्वर्णिम भू अचल हे!

शान्त रहे नील गगन,
शान्त सिन्धु वारि गहन,
शान्ति दूत हों दिशि क्षण,
विश्व शांति शतदल हे!

सृजन कर्म निरत जगत
घृणा द्वेष स्वार्थ विरत,
प्रीति ग्रथित हृदय प्रणत,
पूजित हो श्रम फल हे!

भीति रहित हो जन मन,
वैभव स्मित जग जीवन,
शोभा अपलक लोचन,
कुसुमित दिङ् मण्डल हे!

शान्त हो समर प्रमाद,
शान्त मनुज का विषाद,
शान्त निखिल तर्कवाद,
शान्ति स्वर्ग भूतल हे!

स्वर्दूत

चलो, चलें औद्योगिक केन्द्रों में भी क्षण भर,
घनी बस्तियाँ जहाँ उगलती धूम निरन्तर
धूमिल कर मानव भावी के घिरे क्षितिज को!
जहाँ उमड़ते विश्वक्रान्ति के प्रलय बलाहक
महायुद्ध की लपटों पर शत धार बरसने,
तथा शान्त करने भू उर की क्रूर अग्नि को!

स्वर्दूती

वह देखो, कुछ विश्रुत देशों के अधिनायक
विश्व शान्ति के लिए यहाँ समवेत हुए हैं,

चिन्तातुर मुख कुंचित भ्रू, रेखांकित मस्तक।
सोच रहे मन ही मन, दब विश्व म सम्प्रति
शान्ति हमारे ग्रथों म स्थापित हो सकती।
किन्तु व्यथ सब! विधि को जान क्या स्वीकृत है।
कुछ भी निणय नही कर सका शान्ति मिलन यह,
जसा होता आया सदा हुआ वसा ही।
रिक्त वितण्डावादा म सब समय खो गया,
स्वाथ त्याग करने को कौन यहाँ है उद्यत?
आज गभीर समस्या है भू जन के सम्मुख
युद्ध नही तो क्या व तत्पर शान्ति के लिए?

स्वदूत

पर देखो वह विश्व शान्ति की रजत शिखा सा
जो सबके सँग है—हताश वह नही तनिक भी।
मध्यमाग का पथिक, तटस्थ सदा हिंसा से,
पचशील का पोषक, सहजीवन का घोषक,
घृणा द्वेष स विमुख, प्रमुख युग द्रष्टा भी जो
चिन्तन द्वारा तन, निज महदाकाक्षा-सा उन्नत,
चुप न रहेगा वह जूझेगा धम चक्र ले
जन मगल का लोक न्याय का पक्ष ग्रहण कर,
निज नतिक बल डाल सत्य की विजय क लिए।

स्वदूती

सच कहते दिग्भ्रान्त जगत का दीप स्तम्भ वह,
उसके ऊपर वरद हस्त है लोक पुरुष का।
आह, घोर शिविरा म आज बँटा भू जीवन
घृणा द्वेष स्पर्धा के दारुण दुग सगठित
हिंस्र प्रचारा के भींगुर चीत्कार भर रहे
उग्र मतो, कटु तर्कों वादा म भनभन कर।
रग बदलत रह रह अवसरवादी गिरगिट,
रटते अध पठित दादुर अपना अपना मत,
उछल घृणित जीवन कदम म कण्ठ फुलाकर।
आवेशा के भुजग लोट, फुफकारें भर-भर
जन मन को करते विषाक्त फन खोल भयकर
रुद्ध वासना के घोंघ, केंचुवे, सरीसृप
रेंग रहे निश्चेतन तम म धरा-नरक के।
रूढि रीति, आचार, अधविश्वास अनेको
पख छटपटाते विभीत गेंदुर उलूक-मे
गहन अँधेरी खोहा म पठे जन मन की।
भूख-भूख चिल्लाते कँपते जीवन पजर,
प्यास प्यास स्मर दग्ध, स्नायुओ के तण पिजर
महाह्लास म जीवन तम का भार ढो रहा
पशुओ के स्तर पर प्रवत्तिजीवी मानव गिर।।

स्वर्दूत

अह, मन म अवसाद घिर रहा तम-कपाट-सा
युग मानव की अ ध नियति का दृश्य देखकर।
वह देखो, कँप - कँप उठता ध्वनि मूढ दिगन्तर
विद्युत् आघातो से। विकट प्रयोग हो रहे
पृथ्वी पर जीवन नाशक परमाणु शक्ति के।
सेनाओ का तुमुल घोष सुन पडता तुमको ?
लौह पगो से हिल - हिल उठता त्रस्त धरातल,
प्रतिध्वनित हो रही मृत्यु की चाप दिशा मे,
भीषण रण यानो से म थित उदर गगन का,
उगल रहा सहार अग्नि वमना का कटु विष,
मृत्यु धूल उड रही धरा मे विद्युत् सक्रिय।
महाप्रलय की दारुण छायाएँ मण्डराती
अँधियाली के आवर्तों मे लोट धरा पर,
विश्वयुद्ध की विकट घोषणा फटने को अब
विस्फोटक - सी, रुद्ध श्वास दानव के मुह से।
चलो, लौट हम चलें सुरा की छाया मे फिर,
देखें, कोई महत् कम हो ज म ले रहा
मानवता के सरक्षण हित देव लोक मे।

(नवीन जागरण सूचक वाद्य सगीत)

अहा, मनस्तुरगो पर चढ कर हम देवो की
तपोभूमि मे पहुँच गये फिर शुभ्र शान्तिमय।

स्वर्दूती

पौ फट चुकी। सुनहला क्षण युग की द्वाभा का
मोहित करता चित्त, रुपहली झकारो की
स्वर-सगति मे सूक्ष्म चेतनातप-सा गुम्फित।
मौन लालिमा लोक रक्त शतदल-सा प्रहसित
खोल रहा दल पर दल — निखिल दिग त पल्लवित।
ज्वलित प्रवालो के पवत से खडे हिम शिखर।
रक्त पीत सित नील कमल जग स्वप्न वृन्त पर
सस्मित पलकें खोल रहे निज अर्ध निमीलित।
जाग रहे फूलो के वक्षोजो पर सोये
प्रेम मुग्ध ब दी मधुकर, उ मन गुजन भर।
पारिजात म दार लताएँ लगी सिहरने
मुग्धाओ सी हरि च दन तरुओ से लिपटी,—
खिलने लगे अशोक पदाघातो की स्मृति से,
देवदारु के निखर हो उठे, लो, स्वर्णप्रभ।
निश्चय देवो के सँग रहता स्वग निरतर
तपोभूमि को सृजन भूमि म वदल अलौकिक।
सुनो, जागरण गीत गा रहे वतालिक सुर,
कमलो की अजलि भर, जो प्रतिमान सृष्टि के।

(प्रभात वादित्र संगीत तथा सहगान)

रक्त कमल, श्वेत कमल
खुले ज्योति पलक नवल ।
रक्त कमल जीवन स्मित,
श्वेत कमल शान्ति जनित,
खोल रहे रश्मि स्फुरित
मानस में ज्वाला दल ।
नील कमल श्रद्धा नत,
स्वर्ण कमल भक्ति प्रणत,
कदम में खिले सतत,
प्रीति मधुर अन्तस्तल ।
अमित सुरभि रही निखर,
गूंज उठे लोक निकर,
जाग उठा जीवन सर,
स्वर्णिम लहरें उच्छल ।
नयी चेतना हिलोर,
शोभा छायी अछोर,
होने को नया भोर,
गाओ सुर, जन मंगल ।

स्वर्दूत

देखो, कौन खड़ा हिम अंचल में वह तापस
आरोहण करता मन के दुर्गम शिखरों पर,
जीवन की मधुभूमि छोड़कर कैसे मानव
यहाँ पहुँच पाया ? देवों के हित जो रक्षित ।
वह क्या कोई प्रेमी, पागल अथवा साधक,
या वह जीवन द्रष्टा कोई ऊर्ध्वारोही ?
अन्न प्राण मन के प्रिय भुवनों को अतिक्रम कर
अधिमन के शिखरों पर जो अटका त्रिशंकु सा —
हाय, असम्भव इच्छाओं की बलि का अज बन ।

स्वर्दूती

ओ, वह कोई क्रान्त दृष्टि कवि लगता निश्चय,
लोक प्रेम के महत् ध्येय से प्रेरित हो जो
सूक्ष्म मनस में देख रहा मानव भविष्य को,
स्वर्ण मुकुर सा ज्योति स्फुरित जो मनोगगन में ।
अपलक अन्तर्दृष्टि महत् स्वप्नों से विस्मित
पार कर रही रहस भविष्यत् का स्वर्णिम नभ
कुंचित अलकों पर उलझी सौन्दर्य रश्मियाँ,
सौम्य कान्त मुख भाव प्रतनु, कल्पना विहग वह
सम्प्रति भू जीवन मन से सूक्ष्मग अति चेतन ।
सृजन प्राण वह, निखिल असम्भव सम्भव उसको ।

सुनो, ध्यान से सुनो, स्वगत भाषण करता वह
अध स्वरा म,—आत्म व्यथित, स्वप्ना स पीडित !

(भावोद्वेलन सूचक वादित्र संगीत)

क्रान्त द्रष्टा

व्यक्ति समाज, समाज व्यक्ति,—यमी विडम्बना!
साध्य प्रथम या साधन,—कसा तक वत है !
अनेकता म एक, एकता म अनकता,—
बाहर भीतर,—शब्द जाल सब, केवल वाग्छल!
यान्त्रिक बौद्धिक तत्त्व, रिक्त दशन के क्षेपक,
भ्रान्त बुद्धि की प्रेत समस्याएँ मानव कृत,
जो अरण्य रोदन करती युग के मानस म,
निजन खँडहर म झिल्ली सी भीख भीख कर !

सत्य एक है —व्यक्ति समाज, अनक एक, जड
चेतन, बाहर भीतर सब जिस पर अवलम्बित !
आवतन गति से विरोध जग क अनुप्राणित,
विश्व सचरण जीवन का वषम्य सन्तुलित !

स्वदूत

मानस म यन चलता युग मानव के भीतर !

क्रान्त द्रष्टा

देख रहा मैं, बरफ बन गया, बरफ बन गया !
बरफ बन गया पथराकर, जमकर, युग-युग का
मानव का चत य शिखर—नीरव, एकाकी,
निष्क्रिय, नीरस, जीवन मृत सब बरफ बन गया! —
राख मात्र जड, शीतल,—ताप प्रकाश नही कुछ,
ठण्डे, बुझे हुए अगारो मे प्राणा का
ताप नहीं, मन का जीवन्त प्रकाश नहीं अब !
चट्टाना पर चट्टानें सायी शतियो की,
जमे फलक पर फलक शवो से श्वेत रक्त के,
अट्टहास भरत जो नि स्वर खीस काढ कर
महाकाय ककालो के अवशेष पुरातन !
चमक चमक चिल्ला उठती किरणें प्रकाश की
सतरगे छायाभासो की चकाचौंध मे,
प्रतिध्वनित हो मन शिलाग्रो पर चिर निद्रित !

स्वदूती

आत्म विघातक देन रिक्त थोथे दशन की !

क्रान्त द्रष्टा

राग विरत, निर्वाण शून्य का मूत रूप यह,
निरासक्त, निश्चेष्ट, शान्ति का स्तूप सा खडा,

जीवन प्रत्याख्याना के श्रूण अस्थि सौध सा,
नेति नेति का, आत्म निषेधों का दुगम गढ !
सूख गये प्रेरणा स्रोत बाहर भीतर के
शीतल, हिम शीतल जीवन की जड समाधि यह!
स्पन्द शून्य भैरव नीरवता महाशून्य की
घेरे इसको महामृत्यु के वृहत पख सी।
रिक्त ज्योति वन हाय, जल गया जल धरणी का
रूप रग रस स्पश मुखर जीवन उवर मन,—
प्राणो के सौरभ पत्ता म मम गुजरित।।

स्वदूत

मध्य युगा के जड निषेध, जीवन वजन ने
कुण्ठित कर दी मुक्त प्रगति मानव विकास की।

क्रान्त द्रष्टा

विखर शिखर पर जाती जीवन स्वर्णिम किरणें,
मरु की सूनी कँपती निजल छायाओं सी,
हँसती वहाँ न प्राणो की ममर हरियाली
लोट रुपहली लहरों म धरती की रज पर।
प्रणय गीत गाती न मधुकरी, मधु अधरा से
मुकुलो का मुख चूम, झूम गुजित पखो म,
कूक न पाती पिकी मजरित डालो पर उड
सजन प्रेरणा शून्य, अमूत विदेह लोक म।।

स्वदूती

विद्या और अविद्या म सन्तुलन खो गया।

(भावोद्दीपक वादिन सगीत)

क्रान्त द्रष्टा

आह, इस प्राणो का स्पन्दित ताप चाहिए,
जीन को जन-मन का भावोच्छवास चाहिए,
हरित प्राण उल्लास से रहित इस युग-युग के
पतझारा के निजन करुण कराल ठूठ को
गन्ध गुजरित रस कुसुमित मधुमास चाहिए!
गला सके जो इसके भस्मावत तुषार को,
मिटा सके भीषण विराग, भारी विषाद को,
आलोकित कर सके घोर नैराश्य तिमिर को,
जकडे है जो इसे श्वेत कक्काल हास्य से।।
हाय, खो गया शुभ्र तमस म धरा शिखर उठ,
हाय सो गया शून्य अतन्द्रा म जाग्रत मन,
भटक गये बीहड मरुपथ म चरण बुद्धि के,
देशकाल से परे, नास्ति मे, मन के लोचन
स्वप्नहीन तन्द्रा मे कब खुल गये निर्निमिष,—
ध्यानावस्थित, स्थिर, निष्कम्प, अरूप प्रताडित।

आत्म नग्न नर, रिक्त देह मन के वैभव से,
अम्लधौत पट सा,—धुल गये प्रकृति के सब रंग!

(निर्जन विषादपूर्ण वादित्र संगीत)

स्वर्दूत

बौद्धिक मरु मे लुप्त हो गया उत्स भाव का!

क्रांत द्रष्टा

इसे इन्द्रियो के स्वर्णिम पट म लिपटाओ
रूप गंध रस से झंकृत नूपुर पहनाओ,
इसे खुले द्वारा से, भाव पगो से गुंजित,
जन भू के विस्तृत पथ पर चलना सिखलाओ!
इसे ऊर्ध्व नभ के प्रकाश को आत्मसात कर
जन भू जीवन मे मूर्तित करना बतलाओ!
जिससे फिर चल सके अचल, स्वर्णिम स्रोतो मे
झर झर कर वह सक वेग से, नव गति पाकर,
शोभा मे हो द्रवित मूक प्राणो की जडिमा,
लोट लिपट भू-रज मे हो नव भाव प्ररोहित!

(जीवनोल्लास सूचक वादित्र संगीत)

स्वर्दूती

महत् समन्वय आज चाहिए युग मानव को
देव मनुज पशु जिसमे हो अन्त संयोजित!

क्रांत द्रष्टा

देख रहा मैं खडा धरा चेतना शिखर पर
युग प्रभात नव जन्म ले रहा विश्व क्षितिज मे,
स्वर्ण शुभ्र धर रश्मि-मुकुट भू स्वर्ग भाल पर!
युग-युग से स्तम्भित, निरुद्ध, आत्मस्थ, स्वार्थरत
मानव के अध्यात्म जाड्य को ज्योति मुग्ध कर!

द्रवित हो रहा शतियो का चैतन्य सनातन
विरह मूढ़ जो रहा वियुक्त धरा म होकर,
जीवन से ऊपर उठ मन के अहं शूल पर!
फूट रहे शत स्रोत विकल प्राणो मे मुखरित
धरती को निज प्रीति स्रवित बाहो मे भरने!

शान्त हो रहे मानव के अभिशाप युगो के,
पुन मिल रहे बिछुडे जड चेतन, जीवन मन,
मानव की आत्मा मे नव प्राणो से स्पन्दित!
एक विश्व-जन जीवन निश्चय,—वसुन्धरा ही
मनुज सत्य की अमर मूर्ति, जीवित प्रतीक है
अमित चराचरमयि जो, शाश्वत जीवनमयि जो!
एक छोर चैतन्य चिरन्तन, रश्मि पख स्मित,

भावो का सतरँग प्रकाश बरसाता अविरत,
गुह्य दूसरा छोर, अकूल अतल जड तम है,
धारण करता जो अपने अविकार गर्भ मे
जन्म मरण भव जीवन क्रम, सुख दुख के स्पन्दन।
देख रहा मैं, मूक धरा के अतल गर्भ से
अग्नि स्तम्भ उठ रहा तप्त हेमाभ शल सा,—
महा आगमन का सूचक यह ज्योति पख क्षण ।
(युगान्तर सूचक मधुर भीषण वादित्र सगीत)

स्वर्दूत

निश्चय, यह मानव भविष्य द्रष्टा नव युग कवि,
भूत भविष्यत के पुलिनो पर बाँध रहा जो
स्वप्न पग ध्वनित भाव सेतु, शत इन्द्र धनुप स्मित,—
गरज रहा नीचे उद्वेलित जन युग सागर ।
(तीव्रतर वादित्र सगीत)

स्वर्दूती

वह देखो, वह झझा रथ पर चढकर आता
नव युग का मानव, प्रदीप्त जीवन पवत-सा,
धरा पक को दग्ध मनोनभ को दीपित कर।
युग युग के पतझर झर पडते उसके भय से
धूल धुध पखो से बिखरा अग्नि बीज नव,
क्रुद्ध बवण्डर, अन्धड उसके साथ खेलते
मत्त तुरगो से उड, दिक्-कम्पित कर भूतल
रथ चक्रो के दारुण रव से बधिर कर गगन ।
नव मधु के फूलो की ज्वाला म वह वेष्टित,
रूप रग शोभा सौरभ के अग गुजरित,
दीपित उससे सूक्ष्म भुवन, युग स्वप्न मजरित ।

जाग उठे लो सुरगण महाऽगमन की ध्वनि सुन,
ध्यान मौन निज स्वप्न कक्ष म चौंक अचानक,
आदोलित हो उठे सूक्ष्म भावो के आसन,
दीप्त प्रेरणाओ स स्पदित अर्पित अन्तर,
गलित रश्मियो-सी बहती जो उर क भीतर ।
देखो, मणि आवास छोड, समवेत देवगण
चकित दृष्टि से देख चतुर्दिक् आत्म मूढ हो
गुप्त मन्त्रणा करते मिलकर, कौन पुरुष वह ?
विस्फारित दृग सोच रहे सब, कौन पुरुष वह ?
भय विस्मय म डूब पूछते, कौन पुरुष वह ?
(दूर आँधी तूफान के उठने का शब्द)

एक देव

कौन आ रहा वह भीषण सुंदर, भुवनों को
अपनी दुर्धर पदचापों से कम्पित करता ?
झंझा सा, जन-मन में भैरव मर्मर रव भर
भू समुद्र को हिल्लोलित, भय मन्थित करता !
क्या यह महा प्रलय कि प्रभंजन महानाश का ?
जन धरणी को वरने आया महाकाल या ?
दौड़ रहे उनचास पवन, कँपते मनो भुवन,
निश्चय, यह नव कल्पान्तर, यह महा युगान्तर !
नया सृजन आ रहा सूर्य के स्वर्णिम रथ पर
अग्नि पुरुष यह, प्राण पुरुष यह, लोक पुरुष यह !

कुछ देव

आओ हे, आओ, अभिवादन, शत अभिवादन !

स्वर्दूत

शांत हो गया क्रुद्ध वेग स्वागत नत होते !

(रथचक्रों के आगमन का रव)

देवी

कौन, कौन तुम तप्त स्वर्ण से दारुण सुंदर,
धरा गर्भ के गुह्य तमस से प्रकट सूर्य से ?
मरतों के तुरगों पर चढ़, मर्मर हर्-हर भर,
जन मन को करते आंदोलित, सिंधु उच्छ्वसित ?
जीवन क्रंदन में बज उठता नया गान अब,
मन की मूर्छा में जग पड़ती नयी चेतना,
प्राणों के अवचेतन तम में धँसी ज्योति नव,
क्षुब्ध स्नायुओं के दीपन में रजत शान्ति-सी !
शून्य निराशा में आशा, संशय में आस्था
अविनय में श्रद्धा, सम्मान उपेक्षा पट में,
संघर्षों में जय, संकल्प अहंता में अब
छिपा प्रलय में सृजन, घोर तम में प्रकाश नव !
हाय, कौन तुम विद्रोही जन के ईश्वर से !
उलट-पलट कर दिया निखिल जीवन क्रम तुमने !

सौवर्ण

(आत्मविश्वास भरा सौम्य स्वर)

मैं हूँ वह सौवर्ण, लोक जीवन का प्रतिनिधि !
नव मानव मैं नव जीवन गरिमा में मण्डित,
युग मानस का पद्म खिला जो धरा पंक में,
जड़ चेतन जिसमें सजीव सौंदर्य संतुलित !
प्रथम एक अविभक्त सत्य मैं, फिर जड़ चेतन !
मैं ही मूर्त प्रकाश, सूक्ष्म औ' स्थूल जगत के

सतरँग छायातप म विकसित। मर्त्य अमर मैं,
जिसके अतर म भविष्य के शत स्वर्णिम युग
नव जीवन की शोभा म सागर-से स्पन्दित,
विश्व चेतना स मेरी अहरह अनुप्राणित।
मैं हूँ श्रद्धा का भविष्य, जो व्यक्त जगत के
काल ग्रसित, खण्डित माना के भूत भविष्यत
वतमान को अतिक्रम कर, उनमे प्रविष्ट हो,
विकसित करता अग जग को नव सीमाओ म।
मैं ही वह निरपेक्ष विश्व सापेक्षा म जो
अभिव्यक्त हो, जग जीवन मन के मूल्यो म—
उनके सक्रमणा म, उदय विकास, ह्रास म,
उनके भीतर स्थित, निरपेक्ष बना रहता नित।
क्या आश्चय कि तुम्हे कल्पनावत लगता हूँ।

स्वदूती

कला सष्टि यह, महत कल्पना जन भविष्य की।

सौवण

ऊपर मैं रत्नाभा सा छहरा देवा म,
सजन चेतना के प्रतीक जो सूक्ष्म अगोचर
नीचे मानव जग म मूर्तित, प्रिय जो मुझको,
देवो को कर आत्मसात विकसित होता जो।
तुम दीपक स भिन्न समझते दीप शिखा को?
विस्मय करते कस आँधी तूफाना म
जीवित रहती है वह? मैं तूफाना ही म
जलनेवाली अमर ज्योति हूँ। मैं रहस्य हूँ।
भगुर मिट्टी के प्रदीप ही म पलता हूँ।
झझा के पखा पर चढ जीवन ज्वाला सा
सँग सँग फिरता मैं अम्बर, सागर, कानन म।
भूत भविष्यत वतमान मुझम ही जीवित
विश्व समन्वय से मैं महत समष्टि प्रेरणा,
सजन प्रेरणा, मूर्तिमान जीवन स्पन्दन मे।

स्वदूती

लोक काव्य यह, जिसम सूक्ष्म मूत हो उठता।

सौवण

ध्यान मौन तुम शून्य अतीन्द्रिय नभ म खोय,
मुझे खोजत जीवन स निष्क्रिय निरीह हो?
वहाँ नही मैं अतिवादो से दूर निरन्तर
जग जीवन ही म निविष्ट अति स अतितम हूँ।
आत्म ज्योति औ' मूत तमस स अन्ध, उभय ही
एक समान मुझे हैं, ज्योति तमस म पर मैं
स्वय सत्य हूँ। ज्योति-तमसमय, जड-चेतनमय,

मन जीवनमय, मुझमें जो यागय से जुड़े।

स्वर्दूती

देव काव्य यह, जिसमें तत्त्व निहित रहता नित।

सोवण

ओ प्रकाश के पागल प्रेमी, दग्ध पंख
शिशु शलभ, करोगे क्या प्रकाश, छूछे प्रकाश से ?
क्या प्रकाश करता जो होती नहीं मातृ भू ?
किरणों में हँसने को सतरँग फूल न होते,
उड़ चूमने को न मचलती चपल लहरियाँ,
और साँस लेती न कहीं होती हरीतिमा ?
होता तप्ताकाश शून्य, जलता जीवन मरु
होता एकाकी प्रकाश, कुछ और न होता।।
मैं प्रकाश का हूँ प्रकाश, मैं अंधकार का
अंधकार हूँ। मैं, जो जन भू जीवनमय हूँ।
मेरे लिए प्रकाश-तमस हैं, मैं ही जीवित
सार्थकता हूँ सत्ता के निष्क्रिय छोरों की।
मैं ही शाश्वत रस समुद्र, अमृतत्व तत्त्व हूँ,
जीवन सत्य अमर, जड़ चेतन उपादान भर!
ओ ईश्वर के विरही, मैं संयुक्त सभी से,
कैसा कल्पित विरह तुम्हारा तुहिन अश्रुमय ?
चिरसाध्वी जन प्रकृति, विरहिणी हो सकती वह ?
नित नव नव रूपों में जो आलिंगित मुझसे।
तुमको ईश्वर पर विश्वास नहीं ? जो नित नव
सत्यों में विकसित होता जग जीवन क्रम में!
तुम केवल विधिवत् सत्कर्म किये जाते हो
जो अकर्म औ' असत्कर्म बन गये युगों से।।

स्वर्दूती

अमर काव्य यह परम्परा को करता विकसित!

सोवण

प्राण हरित जीवन पादप मैं, मूल सत्य में,
सुदृढ़ स्कंध संयम, संकल्प महत् शाखाएँ,
मानस विकसित सुमन, सूक्ष्म स्मित भाव रंग दल,
सुरभि चेतना, सुख विकास, मधु प्रेम मर्म धन,
आशाऽकांक्षा के मधुपों से शाश्वत गुंजित।
नव युग में मैं जन मानवता का प्रतीक हूँ,
ज्योति प्रीति, आनंद मधुरिमा में नव स्पंदित!
नव संस्कृति का सारथि नव आध्यात्मिकता मैं,
नव विकसित इंद्रिय, मन प्राणों से अतिचेतन!
तत्त्व रूप में नहीं समझ पाते जो मुझको,
वे मूर्तित देखें मुझको नव जन जीवन में।

युग-युग के जीवन का पवत सुलग उठा अब
नव शोभा लपटो मे, जाग्रत जन समूह जो।
मैं भावी चतय मूत कल्पना गात्र म,
मैं धन मानव सव श्रेष्ठ, जन श्रेयस्कर जो
उसे बाधने आया भू जीवन अचल म,
शोषण, दुख, अयाय, दय का भूमि भार हर।
शतियो के पतझारो मे भरने आया मैं
नव मधु की गुजरित मधुरिमा ज्वाल पल्लवित।
सप्त चेतना भुवनो के अक्षय वैभव को
लोक चेतना मे करन आया हूँ मूर्तित।
एक धरा जीवन मे जन के मन प्राणो के
रुचि स्वभाव वचिञ्यो को कर नव मयोजित,
युग युग के मानव सचय का समीकरण कर
नव मानवता म करने आया हूँ वितरित।
स्वप्न गवाक्षा से दीपित अब मुक्त काल क्षण,
धरा वक्ष म दश खण्ड हो रहे समन्वित
युग-युग स विच्छिन्न चेतना के प्रकाश को
मैं जीवन सूत्रो मे करने आया गुम्फित।

स्वर्वृत

मजर काव्य यह, इसम जन भावी अन्तर्हित।

सौवण

आज धरा जीवन अचल म बँधी प्रेरणा,
आज जना के साथ प्राणप्रद सजन शक्ति नव,
अब न कला के स्वप्न निकुजो मे पल सकते,
अगणित वक्षा मे अब स्पदित नयी चेतना।
नव जीवन सौन्दर्य उग रहा जन धरणी म,
मनुष्यत्व की फसल उगलती हँसती भू रज,
नव मूल्या की स्वर्णिम मजरियो से भूपित।
(झझा रथ मे प्रस्थान नव वसन्तागम का वादित्र सगीत)

स्वर्वृती

विस्मय स्तम्भित से लगते निष्प्रभ हो सुरगण,
नवोन्मेप उद्वेलित, गोपन सम्भापण रत।

एक देव

धरा गभ स प्रकट धरा मे समा गया, लो,
वह तजोमय स्वण पुरुप फिर, गत सूर्योज्ज्वल,
स्वर्णिम पावक से दीपित कर देवो का मन।
बरस रह शत नि स्वर निझर अधिमानस से
उज्ज्वल तप्त हिरण्य द्रवित, नव युग प्रभात म—
उतर रही हो स्वगगा आलोक वारि स्मित,

स्वर्ण नूपुरों से मुखरित सुर बालाओं के—
जीवन शोभा से उर्वर करने जन भू को!

देवी

चलो, चलें हम धरा स्वर्ग में जन मानव बन,
छोड़ त्रिदिव की मानस रति प्रिय भोग भूमि को
प्रगति विमुख जो, चिर निष्क्रिय, वंचित विकास से!
मर्त्य लोक ही निश्चय भावी का नन्दन वन!

(देवों का अवतरण सूचक वादित्र संगीत)

स्वर्दूती

स्वर्ण पृष्ठ खुल रहा लोक जीवन का भू पर,
जन मानवता प्राण प्रेरणा से हिल्लोलित!
नव जन ग्रामों, नव जन नगरों में सुख मुखरित
नव युग अरुणोदय हँसता नव आशा दीपित!
स्वर्ण घण्टियों-सी बज उठती रजत अनिल में,
मुग्ध क्षितिज वातायन लगते स्वप्न मंजरित,
स्वर्ग दूत सा उतर रहा नव युग प्रभात अब
शुभ्र लालिमा भरा रश्मियों के निर्झर-सा,
श्वेत कपोतों से अम्बर पथ में अभिनन्दित!
हर्ष मुखर खग मिथुन जग रहे ज्योति नीड में,
रत्न मर्मरित से लगते तरुओं के पल्लव!
द्रवित हो उठी शून्य नीलिमा अपलक नभ की
देख धरा मुख, शत रत्नच्छायाओं में कँप!
निखिल विश्व आनन्द छन्द सा प्राण तरंगित!
अगणित स्वर लय संगतियों में जीवन मुखरित!

स्वर्दूत

दैन्य दुःख मिट गये, छँट गये धूमिल पर्वत
घृणा द्वेष स्पर्धा के भय संशय पीडन के,
जन शोषण, अन्याय, अनय से मुक्त धरा पर
एकछत्र अब शान्ति, सौम्य, स्वातन्त्र्य प्रतिष्ठित!
शुभ्र शान्ति, जो सब श्रेष्ठ गति मानव मन की,
जिसके स्वर्णिम पंखों में जन भू का जीवन
सृजन हर्ष से स्पन्दित, सतरँग श्री शोभा में
विचरण करता बाधा बन्धन हीन, विश्व में!
नव युग उत्सव मना रहे उल्लसित धरा जन
प्रीति सूत्र में गुँथे, मंजरित तन मन लोचन,
नव वसन्त में नव जीवन मधु संचय करने!

समवेत गीत

युग प्रभात नव, युग वसन्त नव,
जन भू का अभिनन्दन गायें!

कितने हृदया के मदु स्पन्दन
कितना के मधु हास, अश्रुकण
कब से मधु सुमना मे सचित,
आओ इनके हार बनायें।
आकुल उच्छ्वासो की सौरभ,
उत्सुक अपलक नयनो के नभ
इन नीरव मुकुलो म मूर्तित,
स्मतियो की माला पहनायें।
युग युग की वह मौन प्रतीक्षा
मम गुजरित जीवन दीक्षा
सफल आज जन भू मे अर्जित,
इन्हे स्नेह से हृदय लगायें।
ये प्रतीक जन हृदय मिलन के,
जन पूजन, जन आराधन के,
भाव युगा के इनम विकसित,
इन फूलो को शीश चढायें।

स्वप्न और सत्य

(आदश और वास्तविकता के बीच
युग-सघप द्योतक काव्य रूपक)

कलाकार
दो मित्र
छाया चेतनाएँ

प्रथम दृश्य

[सन्ध्या का समय एक तरुण कलाकार का रग कक्ष कलाकार दीवार पर लगी काली तख्ती पर रगीन खडियो से पतझर का रेखा-चित्र बना रहा है और बीच बीच म, खिडकी स बाहर की ओर देखता हुआ, मन्द स्वर मे गुनगुना रहा है।]

(गीत)

ममर भरी वनाली ।
नग्न गात हिम भग्न पात,
सूनी जीवन तरु डाली ।
मत्यु भीत क्रन्दन भर कातर
जीवन का सचय पडता झर,
भटक रही उदभ्रान्त ग ध
भू इच्छा सी मतवाली ।
मधु के रग चित्र स सुन्दर
रेखाओ का यह ऋतु पजर
तभी चितेरे ने रख दी निज
स्वप्न तूलि, रँग प्याली ।
धूप छाँह स भर मदु अवयव
हिम से निखर रहा वसन्त नव,
कलि किसलय से दश्न पटी की
शोभा सँजो निराली ।
मधु पतझर का मिलन सुहाया
विश्व प्रकृति स्वप्नो की माया
पीत शिशिर अधरा पर छायी
फिर नव पल्लव लाली ।
अँगडाई भरती हँस कलियाँ
मुग्ध मधुप करते रँगरलिया,
रिक्त पात्र म किसने मोहक
माणिक मदिरा ढाली ।

(बाहर देखता हुआ)

कलाकार

पतझर आया, जग जीवन म पतझर आया
झर झर पडता युग-युग का मुरझाया वभव,
मन की ठठरी बाहर असिल निकल आयी हो !

भावो, तर्क-विचारो की नाडियाँ उभरकर
ठूँठी, शुष्क टहनियों-सी छितरी पडती हैं।
प्राण प्रभजन समुच्छ्वसित सीत्कार छोडता,
सिहर-सिहर उठता आन्दोलित जन-मन कानन
प्रलय गीत गा रही चूर्ण पसलियाँ जगत की,
जीर्ण मान्यताएँ पीले पत्तो-सी उडकर
धूलिसात् हो रही मौन मर्मर क्रदन भर।
गिर गिर पडते नष्ट भ्रष्ट सुख नीड अरक्षित,
स्वप्न हिमानी जडी हृदय की डाल रुपहली
बिखर-बिखर पडती निर्जन मे अश्रुपात कर।

(मित्रो का प्रवेश)

पहला मित्र

नमस्कार! फिर वही प्रकृति की छवि का चित्रण?
तुम्हे धन्य है!

कलाकार

कहाँ छोड सकते है बच्चे!
माँ का अचल?

पहला मित्र

माँ का अचल! ठीक, अभी
बौद्धिक शिशु ही हो! (हास्य)
निर्निमेष, भावुक प्रेमी से
मात्र प्रेयसी का प्रिय मुख देखा करते हो,—
मुग्ध यक्ष से, जीवन से कर्तव्य विमुख हो!
इस प्रमाद के लिए कभी तुम जन समाज से
शापित होगे!

दूसरा मित्र

(चित्र को देखकर) कैसा मधुर सजीव दृश्य है!
पतझर के सूने पजर मे नव वसन्त का
हृदय हो उठा हो स्पन्दित, नव भाव उच्छ्वसित!
टेढी मेढी रेखाओ की रग-पटी से
नव शोभा का क्षितिज झाँकता मर्मर कम्पित!
छायातप कँप कँप उठता मृदु तूलि स्पर्श से!
मुट्ठी भर रेखाओ मे निस्तब्ध विजन की
आशाऽकाक्षा गूँज उठी हो रग ध्वनित हो!
नव भावो से आन्दोलित कृश देह लता-सी
मुग्ध वनश्री झूम रही मधु बाहु पाश मे!
रेखाएँ ज्यो लय की बहती धाराएँ हो!
कला प्रेरणा कुशल तूलि के सचालन से

मूर्त हो उठी है अवाक् शोभा मे अपलक।
मार्मिक कृति है।

कलाकार

(मुग्ध भाव से) मातृ प्रकृति कसी अद्भुत है! —
सत्य असत् के, घृणा प्रेम के, हास अश्रु के
छायातप से गुम्फित है जिसका करुणाचल।
जन्म मरण औ' प्रलय सृजन जिसके आँगन में
आँख मिचौनी खेला करते हैं निशि वासर।
कौन नर्तित वह ? चल चित्रों के सृष्टि जाल को
जिसने दिया उछाल मात्र छायाभासों में।
कौन ज्योति वह ? जिसने वाष्प कणों को रँगकर
इन्द्रधनुष वेणी छहरा दी महाशून्य मे।
विस्मित हूँ! नव सृजन स्वप्नमयि कौन चेतना
झाँक रही पल्लवित झरोखों से विटपों के ?
तरुवन के हिलते हड्डी के पंजर को छू
फूट रही जो अंग भंगिमा में वसन्त की!
कलाकार के लिए, सत्य ही, विश्व प्रकृति यह
निखिल प्रेरणाओं की जननी है रहस्यमय।

पहला मित्र

अभी प्रकृति के बाह्य रूप पर मोहित हो तुम,
मुग्ध यौवना-सी जो नित्य बदलती रहती।
लज्जा की लालिमा कपोलों पर रँग प्रतिपल
इन्द्रजाल रचती वह नित हावों भावों के।
डूब मरो उसकी कम्पित अचल छाया में,
उसे अकूल अतल श्यामल जल विम्ब मानकर।
पलकों से सहला कोमल पल्लव से पदतल,
नव स्वप्नों से नागिन वेणी रहो गूथते,
शशि किरणों मे पिरो सुनहले ओस कणों को
अश्रुहार पहनाते रहो विकम्पित उर को।
हृदय रक्त से अंकित कर अपलक शोभा को
छिन्न प्राण तन्त्री में रहो विहाग छेड़ते।
तुम्हें ज्ञात है ? आज प्रकृति पर विजय प्राप्त कर
मनु का सुत निर्माण कर रहा नयी सभ्यता।
मानव में केन्द्रित कर श्री सुषमा निसर्ग की
उसे मनुज को सौंप दिया जीवनी शक्ति ने।

दूसरा मित्र

कुछ मति भ्रम हो गया तुम्हें! क्या मातृ प्रकृति का
शाप ले रहे हो तुम सिर पर, पाप वचन कह।

पहला मित्र

तर्क बुद्धि से परिचालित चेतन युग मानव
पाप पुण्य से भीत नहीं—

दूसरा मित्र

क्या तर्क बुद्धि की
व्यर्थ दुहाई देते हो। इस युग का मानव
मात्र प्रकृति का दास, इन्द्रियों का पूजक है।
वह निसर्ग की स्थूल शक्तियाँ को अर्जित कर
अपनी अंतर आत्मा पर अधिकार खो चुका।
बाह्य विजय की चकाचौंध से आत्म पराजित
वह विनाश के अंध गर्त की ओर बढ़ रहा।
विजय प्राप्ति है दूर,—उसे शाश्वत निसर्ग के
नियमों का पालन करना है शुद्ध बुद्धि से।
इसमें ही कल्याण निहित है मनुज जाति का,—
नियमों पर चलना उन पर विजयी होना है।

पहला मित्र

बीत कभी का चुका प्राकृतिक दर्शन का युग
तुम तोते की तरह लगाये हो रट जिसकी।
आज प्रकृति नियमों से नहीं, मनुज इंगित से
संचालित हो रही नियति मानव समाज की।
स्थापित स्वार्थ नियम बनते जाते विधान के,
मुट्ठी भर नर नित्य असंख्य निरीह जनों का
शोषण करते जिन नृशंस नियमों के बल पर।
नियमों पर चलना है आत्म पराजित होना।
कलाकार को नैतिकता सिखलाते हो तुम?
शुष्क नियम पालेगा क्या वह आत्म शुद्धि के,
बिना लीक चलने ही में जिसका गौरव है?

कलाकार

नहीं जानता तर्कवाद, विद्वान् नहीं हूँ,
मैंने सीखा नहीं पहेली कभी बुझाना।
पर जो मन की आँखों को सुंदर लगता है
उससे कैसे आँख चुराऊँ? जो अंतर के
घटवासी को प्रिय लगता है, कैसे निर्मम
तिरस्कार कर उसे भुलाऊँ? यह मनुष्य से
सम्भव है क्या? नहीं, बड़ी निर्दयता है यह।
मैं क्या करूँ? विवश हूँ, मुझसे न हो सकेगा।
मन तो मेरे हाथ नहीं है, तर्क बुद्धि से
न चल सकूँगा मुझे भावना ही प्रिय है।—
जो, अनजाने ही मन को मोहित कर लेता है,
चितवन को अनिमेष लूट लेता निज छवि से,
रूप रश्मियों में उलझा पलकों का विस्मय,—
जो प्राणों को पागल कर बरबस भावों के

स्वप्न पाश मे बाँध, हृदय तन्मय कर देता,—
मैं उसको ही आँकूगा निज रग तूलि से,
वह चाहे कुछ भी हो, मैं यह नही जानता !

पहला मित्र

क्या प्रलाप करते हो पागल प्रेमी का-सा !
मानव जगत कही सुदर है प्रकृति जगत से,
क्योकि अधिक विकसित है वह पुष्पो पशुओ से !
ऊर्ध्व रीढ पद दलित कर चुकी जड निसर्ग को,
शीश झुकायगी वह पुन प्रकृति के सम्मुख ?—
जिसे प्रकृति प्रभु मान हृप से पूछ हिलाती
और प्रणत रेंगा करती पैरो के नीचे !
फूलो की रगीन शिराओ से रहस्यमय
ज्ञानवाहिनी सूक्ष्म नाडियाँ हैं मनुष्य की !
मानव जग मे, जनगण जीवन मे प्रवेश कर
नयी प्रेरणा तुम्हे मिलेगी कला के लिए,
शक्ति स्फूर्ति आ जायेगी स्वप्निल तूली मे !
मानव के मन को गढना सर्वोच्च कला है !
जन से सहज सहानुभूति ही मनुज हृदय की
सार्थकता है, वही प्रेम की क्षमता भी है !
आओ, देखो आख खोलकर मनुज जगत को—
कैसा हाहाकार छा रहा आज वहाँ है !

दूसरा मित्र

आख मूदकर सोचो, देखो मानव मन को
कैसा हाहाकार छा रहा आज वहाँ है !

पहला मित्र

शोषित ककालो की भूखी चीत्कारो से !
काप रही है नग्न वास्तविकता जगती की !

दूसरा मित्र

भौतिकता से बुद्धि भ्रान्त, जीवन तृष्णा से
पराभूत हो, भूल गया नर आत्म ज्ञान को !

पहला मित्र

एक ओर प्रासाद खडे है स्वर्ग विचुम्बित,
चारो ओर असख्य घिनौनी झाड फूस की
बौनी झोपडिया है पशुओ के विवरो सी,—
घोर विषमता छायी है मानव जीवन मे !

दूसरा मित्र

एक ओर आदर्श भ्रष्ट हो रहा मनुज मन
चारो ओर घिरा अछोर अवचेतन का तम,
भाव ग्रथिया सुलझाने मे कुण्ठित भू-जन

और उलझते जाते हैं वासना पक मे,—
घोर अराजकता है प्राणो के जीवन मे।।

पहला मित्र

आज पुन सगठित हो रहे शोषित पीडित,
युग युग के पजर खँडहर उठ धरा गर्भ से,—
क्रांति दौडती दावानल-सी, भूमि कम्प-सी,
महत् वर्ग विस्फोट हो रहा मानव जग मे।

दूसरा मित्र

आज पुन सगठित हो रहा मानव का मन,
नव प्रकाश से दीपित अतश्चेतन गह्वर,
नव्य चेतना से मधु झकृत सूक्ष्म शिराएँ,—
रूपान्तर अब निकट महत् मानव भावी का।

पहला मित्र

लोक साम्य की वृहद् भावना से प्रेरित हो
सामूहिक निर्माण हेतु अब उत्सुक भू जन।

दूसरा मित्र

विशद विश्व मानवता के भावो से प्रेरित
आध्यात्मिक उन्नयन हेतु आतुर मानव मन।
(वाद विवाद सूचक ध्वनि सगीत प्रभाव)

कलाकार

ऊब गया मन घोर विरोधाभासो को सुन,
क्लात कल्पना, दौड समातर तथ्यो के सँग।
(अँगडाई लेता है)

आऽऽह।
(बाहर से नारे लगने की आवाज)
(नारे) क्रांति की जय हो। प्रजातत्र की जय हो।
लोकतत्र की जय हो। जन मगल की जय हो।

पहला मित्र

सुनो, बधु, वह जन समुद्र गर्जन भरता है,
प्रतिध्वनित हो रहे मौन वन पर्वत कदर,
जाग रहे चिर निद्रित भू के निःस्वर गह्वर,
लोकोत्सव यह, महत् प्रदर्शन लोक पर्व का।
(दूसरे मित्र से)
उठो मित्र, त्योहार मनाती जन मानवता,
चलो, सम्मिलित हो हम भी आनद पर्व मे।
कलाकार की पलकें डूब रही निद्रा मे,
उसको सोने दो अपने कल्पना नीड मे
स्वप्नो की परियो के सँग, भावना मग्न हो।

दूसरा मित्र

चलता हूँ पर, लोक पथ म न जा सकूगा ।
इन नारो से कही तीव्र झकार कभी से
मेरे अन्तर म उठती है । निजन म जा
खोज करूँगा गहन मम जिज्ञासा की अब ।

(दोनो मित्रो का प्रस्थान)

(नारे) नय राष्ट्र की जय हो ! लोकतन्त्र की जय हो !

कलाकार

शिथिल पड गयी देह व्यथित हो उठे प्राण मन
नीरस तर्कों के बोझिल शब्दाडम्बर स,
इनसे कही प्ररणाप्रद लगते य नारे
प्राण शक्ति का स्पन्दन कम्पन जिनम जन का ।

(भावमग्न होकर)

एक और चेतना शक्ति है, जो मानव के
अन्तरतम म अन्तर्हित है, ज्योति प्रीतिमय
जो विकास पथ म सम्भवत जिसके धूमिल
चरण चिह्न भू पथ पर छोड गये प्रबुद्ध जन ।
तक बुद्धि मतवादो स जो कही पूण है ।
उसकी आभा कभी स्फुरित हो अन्तनभ मे
आलोकित कर देती स्वत निखिल भेदो को ।
स्वप्नमयी वह, सजनमयी, आनन्दमयी वह,
करुणा कोमल, मा की ममता सी मगलमय,
प्रीति मधुरिमा स भर श्रद्धा मौन हृदय को
दीपित कर देती रहस्य सब सहज बोध से,—
सौ सौ भावो के दल खोल दगो के सम्मुख ।

(अँगडाई लेकर)

आह ! न जाने किन फूलो की मदिर गध पी
अलस श्रान्ति जभा लेती मन्थर अगो म !
क्लान्त हो उठा मन,—थोडा विश्राम करूँगा,
स्वप्नो की परियो के छायाचल म छिपकर ।

(तख्त पर सो जाता है)

स्वप्न दृश्य

एक

[मन्द मधुर वादित्र सगीत कलाकार का भावाक्रान्त मन स्वप्नावस्था मे अन्तजगत के सूक्ष्म प्रसारा म विचरण करता है, जिसे स्वग कहते हैं]

(स्वग चेतना का गीत)

स्वागत, अमरपुरी म आओ ।
जीवन स्वप्नो से विभीत है
तन्द्रालस म मत विलमाओ ।

जागो, जागो, दिव्य पान्थ हे,
त्यागो भव भय, मुक्त कान्त हे,
स्वग शिखर यह शुभ्र शान्त हे,
निभय, निश्चय, चरण बढाम्रो !
यह अ तर का सूक्ष्म सगठन,
मन करता आया आरोहण,
तुम जड नही, अनश्वर, चेतन,
चेतो, मन की भीति भगाम्रो !
महान द की उठती लहरी,
पुण्य यहाँ के अक्षय प्रहरी,
ज म-मरण की निद्रा गहरी
छोडो, नर जीवन फल पाम्रो !
क्षणिक अतिथि बन जो तुम आये
तन - मन प्राणो से कुम्हलाये,
तो वरदान तुम्ह यदि भाये
भू पर देव-विभव ले जाम्रो !

(सगीत की झकारें म द पड जाती हैं)

कलाकार

(आँखें मलता हुआ)

कैसी स्वर सगति है इस सु दर प्रदेश मे,
स्वग लोक है यह क्या, अ तमन का दपण ?
जहा मौन सगीत प्रवाहित होता रहता
सूक्ष्म भावना अप्सरियो के पदक्षेप स !
निश्चय, यह मानव जग का प्रतिमान रूप है,—
विगत युगो का भाव विभव है जिसमे सचित !
ये कैसी छायाएँ विचर रही अन त मे
दिव्य चेतनाम्रो-सी, स्वप्नो के परो पर !
ये कैस विच्छिन हुई जीवन पदाथ से !
आत्माएँ हैं य क्या जो तन मे बँधने को
मँडराती उड चिद नभ मे नि शब्द अथ सी ?
अथवा य चिर रहस शक्तियाँ, मनुज नियति को
सचालित करती जो छिपकर स्वदूतो सी ?
इ हे कौन परिचालित करता ?—गूढ प्रश्न है !
सम्भव य अन्तर प्रकाश की छायाएँ हो,
धरती की रज बाह्य आवरण भर है जिनकी !
जीवन का बहुमुखी सत्य है एक, अखण्डित,
अघ ऊध्व सोपान श्रेणिया म वह छहरा,
एक - दूसरे पर निभर है जिनकी सत्ता,—
एकागी अभिव्यक्ति नही श्रेयस्कर इनको !
मनुज चेतना भटक गयी क्या मध्य युगो से
भाव लोक म ? ऊध्व प थ क्या पकडा उसने !

स्वप्न लोक म शून्य मुक्ति का अनुभव करने ?
मुक्ति रिक्त कल्पना नहीं, वास्तविक सत्य है।
उसे प्रतिष्ठित करना होगा जन समाज म
महत् वास्तविकता म परिणत कर जीवन की।
सूक्ष्म स्वग को भी फिर विकसित होना होगा
जन धरणी पर उतर, मूत अवयव धारण कर,—
वह यथाथता म बँधने को रुका हुआ है।

(वादित्र सगीत के साथ गम्भीर मधुर प्राथना गान)

यह कसा उन्मुक्त प्राथना गान वह रहा,
चिर श्रद्धा विश्वास हो उठे अन्तर्मुखरित,
गुह्य अथ मन्त्रो क स्वन स्फुरित हो उर म
उद्भासित हो उठे तडिल्लतिका से दीपित।
यह किन आत्माओ का करुणोज्ज्वल प्रकाश है ?
वरदहस्त की छाया कौन किय ये भू पर ?
दिव्य महापुरुषो स लगत य पथ्वी के।
स्वप्न देखता हूँ मैं क्या ? या अति जाग्रत हूँ।
सुनूँ धरा के स्वर्गिक प्रतिनिधि क्या कहते हैं ?

(छायाओ को सम्बोधन कर)

अभिवादन करता हूँ, श्रद्धानत मस्तक मैं
जन भू के स्वप्नो से पीडित—रग तूलि से
रँगता जो नित धरा चेतना क क्षत पदतल,
उर की करुणा ममता, शोभा सुषमा से भर,—
लोक कला का महदाकाक्षी, नर देवा से
महत् प्रेरणा का अभिलाषी, मत्य जीव मैं।

प्रथम छाया

मत्य जीव ही नही, अमरताऽकाक्षी भी तुम।
हम भी जन भू के अभिभावक, जन सेवक हैं,—
आत्म मुक्ति पथ त्याग, लोक जीवन वेदी पर
हमने पार्थिव स्वार्थों का बलिदान किया निज।
अब भी हम सघषशील हैं स्वग लोक म
भू जीवन के श्रेय के लिए,—आत्म तेज से
मार्ग प्रकाशित कर जन गण का ध्रुव तारकवत।

कलाकार

मेरा भी भू पथ प्रकाशित करें कृपा कर।

प्रथम छाया

सफल मनोरथ हो तुम वत्स, कला जीवन की
मूत वास्तविकता बन सके, उसे जन जीवन
नित नव साथकता दे, वह जीवन तष्णा का
मानव अन्तर के प्रकाश म रूपान्तर कर

उसे मनुज के योग्य बनायें,—घृणा द्वेष को
प्रीति द्रवित कर! मानव ईश्वरका प्रतिनिधि है!
लोकोत्तर जीवन विकास की क्षेत्र है धरा,
मानव का जीवन आत्मोन्नति का प्रांगण है!

दूसरी छाया

पुण्य कर्म रत रहो, पाप का पथ मत रोको
प्रभु खल सज्जन को करते सम ज्योति दान नित!
एक सर्वगत प्रेम व्याप्त नभ चराचरों में,
वही प्रेम ईश्वर, जिसका मंदिर मानव उर
तुम पवित्र यदि रहो तुम्हें फिर किसका क्या भय?
सदाचार श्रेयस्कर भू पर, स्वर्ग लोक से!
कैसे खिलते फूल, उन्हें क्या जीवन चिन्ता?
उनका पालक सबका ही रक्षक है जग में!
क्षमा शत्रु को करो, तुम्हें प्रभु क्षमा करेंगे,—
प्रेम, क्षमा, जन दया, विनय, सोपान स्वर्ग के!
धन्य विनम्र निरीह, उन्हें स्वधाम मिलेगा,
धन्य सत्य पथ चारी, होंगे पूर्णकाम वे!
धन्य पवित्र हृदय, ईश्वर का मुख देखेंगे
धन्य शान्ति कामी, प्रभु के शिशु कहलायेंगे!
धन्य न्याय हित व्यथित, स्वर्ग में राज्य करेंगे।
तुम धरती के लवण, विश्व-भर के प्रकाश हो,
ईश्वरीय महिमा को भू पर करो प्रकाशित।

तीसरी छाया

रोग शोक औ' जरा मृत्यु पीडित जग जीवन,
सुख की तृष्णा—मार, शत्रु दुर्जेय मनुज का!
राग द्वेष षड रिपुओं का पट् चक्र भयंकर,
अंधकार अज्ञान जनित छाया जन मू पर।
आत्म शुद्धि का अंतर्मुख असि पथ है दुर्गम,
सम्बोधन का द्वार घिरा स्वर्णिम जालों से।
मूल अविद्या है, प्रसार जिसकी तृष्णा का
नाम रूपमय षडायतन, भव, जन्म मरण है।
कारण, दुख निदान, निरोध समझकर मानव
जन मंगल का मार्ग गहे,—मध्यमा प्रतिपदा।
क्षण भंगुर यह जगत, नित्य चैतन्य न आत्मा,
निखिल पदार्थ अनित्य, चर्म जग जीवन-बन्धन,—
तृष्णा दुख का कारण, उसका पूर्ण त्याग कर
ग्रहण करें जनगण सेवा पथ, जीव दया रत।
बुद्ध, धर्म औ' संघ शरण निर्वाण प्राप्ति पथ।

चौथी छाया

ईश्वर केवल एक, असीम दया सागर जो,
उसके सब सेवक समान, जातियाँ व्यर्थ हैं।

मृत्यु श्रेष्ठतर मृत्यु भीत के अविश्वास से,
ईश्वर पर विश्वास, धर्म का सारतत्त्व दृढ़।
विनय, दान, प्रार्थना,—सम्पदा सन्त जनों की,
ईश्वरीय जन साम्य चाहता मैं पृथ्वी पर।

पाँचवीं छाया

अभी लौटकर आया हूँ पार्थिव यात्रा से
अभी नहीं भर सके मर्म के व्रण भी मेरे,
जो कि लोक सेवा के प्रिय उपहार चिह्न हैं।
महापुरुष जो ज्योति चिह्न जगती के पथ पर
छोड़ गये हैं, मैंने आजीवन उनका ही
नम्र अनुसरण किया! अतुल आदर्शों की निधि
संचित कर नित, उन्हें कसौटी में कस उर की,
मैंने विविध प्रयोग किये जन के जीवन में,—
स्वतः सत्य का पालन कर मन कर्म वचन से।
ईश्वर सत्य न कहके, कहूँ, सत्य ईश्वर है?
सतत असत पर सत् की, जड़ तम पर प्रकाश की,
तथा मृत्यु पर जीवन की जय होती जग में।
नियम नियामक दोनों एक तथा अभिन्न हैं।
भू जीवन में आज नये के प्रति आग्रह है।
सभी नया चाहिए मनुज को, जादू से ज्यों
सभी पुराना क्षण में नया बदल जायेगा।
शाश्वत और चिरन्तन सत्य नहीं हो कुछ भी,
अभिव्यक्ति पाता जो जीवन व्यापारों में,
पुनः पुरातन का नूतन में समावेश कर।
सूर्य तले, कहते हैं, कुछ भी नया नहीं है,
घटवासी को छोड़, नित्य अभिनव पुराण जो।
खादी सूतों के सात्त्विक ताने बाने भर
जन जीवन पट बुना सरल लोकोज्ज्वल मैंने
जनगण के श्रम जल के मूल्यों पर आधारित,
हिंसा शोषण के धब्बों से उसे बचाकर
औ' ममत्व के कल्मष से रक्षा कर उसकी।
अन्यायी अत्याचारों के प्रति नृशंस के
मैंने नम्र अवज्ञा के सिखला प्रयोग नव,
युद्ध जर्जरित जग को दिखा अहिंसा का पथ,
भीरु हृदय में मानव गौरव पुनः जगाया,—
आत्म शक्ति से रोक पाशविक हिंसा का बल!

कलाकार

अब भी जन मन मर्मर कर उठता सम्भ्रम से,
पावन स्मृति के मलय स्पर्श से पुलकाकुल हो,
एक नया चेतनाऽलोक उठ धरा गर्भ से
बढ़ता नभ की ओर स्वर्ग मुख दीपित करने।

शत प्रणाम, जन युग की इस आराध्य ज्योति को!

पाँचवीं छाया

जन मगल हो! लोक कम रत रहो निरन्तर
सेवा करना ही प्रणाम करना है मुझको!

('रघुपति राघव राजाराम' की धुन धीरे धीरे
'श्री रामचन्द्र कृपालु भज मन' के श्लक्ष्ण कण्ठ
स्वर म डूब जाती है)

कलाकार

ओ, यह क्या स्वान्त सुखाय तुलसी के स्वर हैं?

एक स्वर

मैं पहिले ही परम म त्र दे चुका विश्व को!
राम चरण अवलम्ब विना परमाथ सिद्धि की
पुण्याशा वारिद की गिरती बूद पकडकर
नभ मे उडने की अभिलाषा - सी मिथ्या है!
सियाराम मय जान समस्त जगत को निश्चित
बार-बार करता प्रणाम युग पाणि जोड निज!

दूसरा स्वर

परम लोकप्रिय यह तुलसी ही की वाणी है!

एक स्वर

मुझे लोकप्रिय बतलाते हैं सूरदास जी!
सूर सूर हैं! जिनके मधुर कृष्ण का शैशव
अब भी घुटनो बल चलता इस भरत भूमि के
घर घर म, आँगन आगन पर, भुवन मोहिनी
अपनी लीला से विमुग्ध कर जन जन का मन!
अब भी मौन निकुजो से वशी ध्वनि छनकर
ज्योत्स्ना म पुलकित करती रहती भू का मन,
यमुना तट नित मुखरित रहता रास लास से!
दुलभ अन्तर्मुखी दृष्टि यह! आप राम को
सदा कृष्णमय रहे देखते! मुझको उनका
धनुर्बाणधर रूप सदैव प्रणम्य रहा है!

कलाकार

यह क्या मीरा? मौन, नत्य मे समाधिस्थ सी!

दूसरा स्वर

नृत्य निरत, गिरिधर मे लीन, भाव रस डूबी,
प्रेम दिवानी मीरां केवल तन्मयता है!
नि स्वर नूपुर ध्वनि से ही उसकी सत्ता का
मम मधुर आभास स्वग को मिलता सन्तत!

तीसरा स्वर

ठीक बात है, मस्त हुआ मन तब क्यों बोले।

एक स्वर

शब्द अनाहद के कबीर यह, अकथ प्रेम का
गुड खाकर, गूंगे-से सदा रहे मुसकाते।

दूसरा स्वर

सूक्ष्म सुषुम्ना के तारों से झीनी झीनी
बिनी चेतना सुघर चदरिया स्वच्छ आपने,
कलुष चिह्न से मुक्त धन्य हैं आप, कि जिसने
घूंघट का पट खोल सत्य के मुख को देखा,
सद्‌गुरु से चूनर रँगवा ज्यों की त्यों रख दी —
अमर रहे साजन को प्रिय शृंगार आपका।

चौथा स्वर

मुझे आपकी अमर साखियाँ सदा प्रिय रहीं,
चमत्कारिणी काव्य दृष्टि मार्मिक, रहस्यमय —
उलटवासियों का क्या कहना! अद्‌भुत, अद्‌भुत।
नदी नाव के बीच समाती रहती प्रतिपल।

कलाकार

मेघ मन्द्र क्या ये कवीन्द्र के मादक स्वर हैं।

चौथा स्वर

अमरों को है प्रिय शस्य-स्मित स्वर्ण धरित्री,
पर भारत के अकर्मण्य जन मुख अतीत का
देखा करते सदा विगत गौरव स्वप्नों में
खोये, निज दायित्वों के प्रति सोये रहते।
सामाजिक चेतना न अब भी जाग्रत उनमें।
नये राष्ट्र का भार वहन करने में अक्षम,
जाति पातियों कुल परिवारों में विभक्त वे,
रूढ़ि रीतियों से शासित, मत भेद प्रताड़ित!
मैंने निज अंतर की स्वर्णिम झंकारों से
भू भागों की संस्कृतियों का किया समन्वय
विश्ववाद स्थापित कर खण्डित भू प्रांगण में,—
भारत की आत्मा को पश्चिम के जीवन की
नव सौष्ठव गरिमा से फिर से आभूषित कर।
मानव उर के भावों को पहिनाये मैंने
स्वर्ण रजत परिधान रत्नस्मित छायातप के,
रूपा ज्योत्स्ना की छाया में भू जीवन के
गीतों का पट बुन अभिनव सौंदर्य बोध से। —
श्री शोभा गरिमा से मण्डित हो जन धरणी
महत् ज्ञान विज्ञान समन्वित हो जन जीवन,

यही मात्र सन्देश विश्व जन के प्रति मेरा।
तुम प्रसन्न मन, आश्वासित हो लौटो भू पर,
वही प्रगति का, आत्मोन्नति का पुण्य क्षेत्र है!

(वादित्र संगीत छायाएँ अन्तर्धान होती हैं। मंच स्वर्णारुण प्रकाश से भर जाता है)

कलाकार

(अर्ध जाग्रतावस्था में)

धन्य भाग्य है! सफल हो गया मानव जीवन,
आज महापुरुषों का क्षण सामीप्य मिल सका,
और महाकवियों का दर्शन लाभ हो सका!
सभी महाकवियों की वाणी जन मंगल की
महत भावनाओं से प्रेरित रही निरन्तर!
सभी श्रेष्ठ धर्मों का अभिमत एक रहा है—
ईश्वर पर विश्वास, सत्य आचरण धरा पर!
सभी महापुरुषों के लक्षण एक रहे हैं,—
आत्मत्याग, जन सेवा, दया, विनय, चरित्रबल!
भू की भिन्न परिस्थितियों को भिन्न रूप से
संयोजित नित किया स्वर्ग की महत दया ने,
मूर्तिमान हो युग-युग में बहु सत्पुरुषों में!
सभी लोक पुरुषों की वाणी सत्य पूत है!
सभी दिव्य द्रष्टा, जन भू के अभिभावक हैं!
पर, मानव की नियति हाय, सचमुच निर्मम है!
सद् वचनों के लिए बधिर है हृदय के श्रवण,
मनोभूमि वन्ध्या है उच्च विचारों के प्रति!
दिव्य प्रेरणाओं के विमुख मनुष्य चेतना!
सत्य बीज जन प्राणों के रस से सिंचित हो
क्या न प्ररोहित हो उठते जीवन गरिमा में?
कहाँ, कौन सी त्रुटि है? कैसी परवशता है!
अह, काँप उठता मन मानव की दुर्बलता से!
ऊपर से आकर प्रकाश सन जाता तम में
अन्धकार को और अँधेरा बना धरा पर!
दुःस्वप्नों से आकुल हो उठता है अन्तर,
रौंद रहा है कोई उर को, विश्वासों के
शिखर बिखरते जाते, खिसक रही मन की भू,
ज्यों अन्तर्मन का विधान हो चूर्ण हो रहा,—
घन कुहास से आवृत है मानव आत्मा!!

(स्वप्न वाहक वादित्र संगीत कलाकार की आत्मा आरूढ़ उच्च तथा सूक्ष्म प्रसारों में विचरण करती है)

अह, क्या सूक्ष्म अनेकों स्तर हैं स्वर्गलोक के?
कैसा सम्मोहन है सद्य स्फुट वर्णों का!

यह प्राणो का हरित स्वग - सा लगता सुन्दर,
जीवन की कामना जहाँ हिल्लोलित ग्रहरह
शस्य राशि - सी श्यामल, शत वर्णों म मुकुलित,
इन्द्रिय मगो स गुजित, मधु गन्धोमादन।
मदिरा की सरिताएँ बहती। यौवन उमद
ग्रप्सरियो की नूपुर ध्वनि मथित करती मन,—
ग्रधखिली कलियो - सी कोमल देह लताएँ
ग्रग मगिमा भर, नयना को रखती ग्रपलक।

(भावपरिवतन सूचक वादित्र सगीत)

यह भावो का स्वग लोक है मनो भूमि पर
मूल रहा जो सयम तप की कृश डोरो मे।
यहाँ व्याप्त चिन्मय प्रकाश नीरव नीलोज्ज्वल,
मर्यादा म बँधी क्यारियाँ,—भाव राशि के
मुकुल स्वप्न स्मित, पक्व पुण्य फल, ग्रादर्शों की
लतिकाएँ लटकी पात्रा से विनयानत हो।
सूक्ष्म वायु मण्डल म व्यापकता है निमल
मौन प्ररणा की सुगन्ध से समुच्छवसित जो।
श्रद्धा ग्रौ' विश्वास तैरत हस मिथुन से
उच्च विचारा के प्रशान्त जल म रजतोज्ज्वल,
ग्रतल नील उर सरसी को कर प्रीति तरगित।

(भावपरिवतन सूचक वादित्र सगीत)

ग्रात्मशुद्धि के नियमो की निजन समाधि-से
ग्रौर ग्रनेका स्वग बसे हैं, धम नीति गत
सदाचार के स्तम्भो पर, तर्कों से वेष्टित,
जहाँ जगन्मिथ्या की निष्क्रियता छायी है।
मुक्ति दीप टिमटिमा रहा फीका प्रकाश दे,
सन्ध्या के झुटपुट सा पीला-तम विकीण कर,—
ग्रात्माएँ उडती जुगुनू-सी स्वय प्रकाशित।

(पुन भावपरिवतन सूचक वादित्र सगीत)

ग्रधोमुखी लघु स्वग, सम्प्रदाया म सीमित
लटके हैं ग्रगणित त्रिशकु स, बहुमत पोषक,
कट्टरपन्थी ग्राचारा के झीगुर भन - भन
जहाँ रेंगते दारुण धर्मोमाद बढाकर।
जहा रूढि जजर ग्रास्था के भखाडो पर
क्षुद्र ग्रहता के दिवान्ध है नीड बसाये
मन्द प्रभा म, जो प्रकाश की छाया भर है।
ग्रादर्शों के उच्च स्वग, सकीण क्षीण हो,
बिखर गये जाने क्यो बहु उपशाखाग्रा म
शुष्क कम काण्डो म, जड विधियो, नियमा म।

(वादित्र संगीत के साथ दूर से वाहित गीतों के स्वर जिनमें कलाकार को अपने मन के भावों की प्रतिध्वनि मिलती है)

सहगान

यह क्या मन के रीते सपने !
कहाँ स्वर्ग सुख शान्ति, कहाँ रे
धरती के दुख भरे कलपने !
सपने भी तो कब के बीते
मीठे सुख क्षण लगते तीते,
धर्म नीति आदर्श सुनहले
काम न आते लगते अपने !
यह छायाओं का अन्तर्मन
कभी रहा जो जीवन चेतन,
अब भी विस्मृत मधु स्मृतियों के
स्वप्नों से दृग लगते झँपने !
एक वृत्त रे हुआ समापन,
स्वर्ग न रहता कभी चिरंतन,
नये जागरण का नव रण अब
नये मन्त्र के मनके जपने !
लौट न आ सकते बीते क्षण,
उन्हें न दो अब व्यर्थ निमन्त्रण,
जन मन प्रांगण आज लगा फिर
अश्रुत पद चापों से कँपने !

कलाकार

(चिन्तातुर स्वर में)

कहाँ हाय, मैं भटक गया हूँ, किन लोकों में,
दुःस्वप्नों से पीडित क्यों हो उठता अन्तर ?
क्यों विभक्त कर दिया सत्य को मानव उर ने,
मानव मन की सीमा ही क्या इसका कारण ?—
खण्ड खण्ड कर करता जो नित पूर्ण को ग्रहण !
जीवन, मन, चेतना सभी तो एक सत्य हैं,
स्वर्ग धरा, जड चेतन, एक, अभेद, पूर्ण हैं !

(नीचे के वातावरण से उठकर अंधकार जनित कटु संघर्ष का कुत्सित कोलाहल सुनायी पडता है)

ये कैसी चीत्कारें उठती अवचेतन से ?
घोर तिमिर का बादल घेर रहा हो मन को !
कहाँ गिर रहा हूँ मैं ? ये क्या नरक लोक हैं ?
नीचे उतर हृदय बुझता जाता विषाद से,
अंधकार के भी क्या हाय अनन्त स्तर हैं ?

(दारुण विषादपूर्ण वादित्र संगीत प्रकाश मन्द

पड़ता है कलाकार आँखें मलता हुआ करवट
बदलकर फिर गाढ़ निद्रा मग्न होता है।)

स्वप्न दृश्य

दो

[कलाकार का दुःस्वप्न ग्रस्त अन्तर अवचेतन के छायान्धकार पूर्ण लोकों में भटकता है। सुदूर से वाहित संगीत के स्वर उसके कानों में टकराते हैं।]

(ह्रासोन्मुख चेतना का गीत)

अन्धकार भी तो प्रकाश है!
पलकों में रे लवण अश्रु कण
अधरों पर क्षण मधुर हास है!
नयनों को प्रिय नींद घनेरी
जीवन तृष्णा देती फेरी,
मोह निशा की अचल छाया,
मनुज व्यर्थ इन्द्रिय विलास है!
वृथा आयु की अवधि गँवायी,
मन की टीस नहीं मिट पायी,
चार दिवस की मधुर चाँदनी
रैन अँधेरी फिर उदास है!
विकसित पशु ही निश्चय मानव
कभी देव वह, फिर वह दानव,
ह्रास सतत होता जीवन में,
कहने को होता विकास है!
जो जैसा वह बना रहेगा,
बहता पानी सदा बहेगा,
बड़े बड़े मुनि हार गये रे
मनुज प्रकृति का क्रीत दास है!
लिखा करम का नहीं टलेगा
अपना वश कुछ नहीं चलेगा,
कभी मंद तो कभी तेज है
मन की गति में बँधी साँस है!
यहाँ कौन, कब किसका सहचर,
अपने सब, सबका है ईश्वर,
हानि-लाभ सुख दुख की दुनिया
कभी दूर तो कभी पास है!

कलाकार

(कर्तव्यमूढ़-सा)

अन्धकार? वह कैसे हो सकता प्रकाश-सा
अन्धकार भी क्या प्रकाश की एक शक्ति है?

या प्रकाश ही अन्धकार की एक शक्ति हो ?
खूब पहली है ! उफ, मैं क्या सोच रहा हूँ !
कैसी दूषित वायु यहाँ है भ्रान्ति से भरी !
कहाँ आ गया मैं, किस दृष्टि विहीन लोक म !
जहाँ ह्रास युग का विषण्ण तम छाया निष्क्रिय,
घोर हृदय कापण्य भरा अनुदार दन्य सा !
यह कमी स्वार्थों की अँधियारी नगरी है,
जिससे रही अपरिचित मेरी कला चेतना !
क्षुद्र भित्तियो म विभक्त है इसका प्रागण
जिनम घिरे घरौंदे लगते तुच्छ घिनौने !
उफ, कसे आलस प्रमाद म सन लोग य,
कम हीनता ही हो ध्येय कृपण जीवन का !
मुण्ड मुण्ड म बँटे, गुप्त पर-निन्दा म रत,
एक दूसरे के अनिष्ट के हित नित तत्पर,
राग द्वेष से जजर, कतव्या के कायर,
अहम्मन्य अभिमानी, स्पर्धा दशन-पीडित,—
हठी, कुटिल-मति, भेदभाव स भरे, विषले,
पर द्रोही, प्रतिशोध क्षुधित, निबल के पीडक,
कलह विवाद विनोदी, घोर विषमता प्रेमी,
निरुद्यमी, नि सत्व, निरुत्साही, निराश मन,
रोग शोक, दारिद्र्य दैन्य के जीवित पजर
निखिल क्षुद्रताओ के जीवन-मृत प्रतीक से !!
सूख गया प्रेरणा शक्ति का स्रोत हृदय मे,
केवल गत सस्कारा पर जीवित इनके शव,
रेंग रहे जो भाग्य भरोसे भग्न रीढ़ पर !
इसीलिए ये रक्त स्वाथ के पजे फला
लूटा करते एक दूसरे का जीवन श्रम,
जाति पातियो मे वह खण्डित, चिपटे रहते
पथराये से रूढि रीतिगत अभ्यासा से !
क्षुद्र सम्प्रदाया की सीमा अतिक्रम कर ये
निर्मित कर पाते न महत् सामाजिक जीवन !
तुच्छ मोह ममता म डूबे, परम्परागत
कठपुतलो से नाच रहे, विधि लिपि पर निभर !

(करुण वादित्र सगीत)

हाय कौन जीवन वन्दिनी सिसकती है वह ?
यह क्या अबला ? छाया सी लिपटी पैरो से !
छिन्न लता सी कौन अधमरी वह? क्या विधवा ?
कौन माँगते गा गा कर ये? क्या अनाथ शिशु?
अह, कैसी जीवन विभीषिका जन धरणी पर
जो मानव को वचित रखती मनुष्यत्व स !!
कौन लोग ये ? राग द्वेष कटु कलह क्रोध के

मूर्तिमान कुत्सित प्रतीक से ? निम्न शक्तियो के
अमानुषी प्रतिनिधियो से लगते है जो।

(भाव परिवतन द्योतक वादिन सगीत)

ये क्या सस्कृति पीठ, कला साहित्य द्वार हैं ?
क्षुद्र मतो मे, कुटिल गुटो मे ईर्ष्या खण्डित।
ह्रास युगीन अहताओ के मन सगठन,
आपस के स्वार्थो, सघर्षो से अनुप्राणित।
सधे वँधे प्रच्छन्न रूप से, व्यक्ति जहा पर
पर परिभव हित तत्पर रहते, स्पर्धा पीडित।
जीवन कुण्ठा जहाँ अश्रृखल अट्टहास बन
विस्मय स्तम्भित कर देती क्षण मूढ अतिथि को।
और सजन प्रेरणा व्यक्तिगत स्तुति निदा पर
निभर रहती, रिक्त शिल्प सौष्ठव म मण्डित।
यहा महत निर्माण न सम्भव भाव सष्टि का,
हा! सगठित प्रहार सुलभ हैं सहकर्मी पर।
बुद्धि जीवियो का आहत अभिमान प्रदशन
यहाँ मात्र वाणी की सेवा, कलाकारिता।

(भाव द्योतक गम्भीर वादिन सगीत)

कस मनोविकार मात्र बन गयी चेतना
सत्ता स ही विलग, ग्रथियो म ही गुम्फित।
सामाजिक सन्तुलन खो गया क्यो जीवन का ?
किन दोषो से प्राणो का सयमन नष्ट हो
विप बन फल गया मन के नतिक विधान म ?
किस प्रकार खोखला हो गया निखिल आत्मबल,
क्यो चरित्र की अन्त सगति चूण हो गयी ?
युग युग से सगठित मनोमय अन्तर्मानिव
हाय खो गया महाह्रास के अन्धकार म।।
ये साधारण व्यक्ति नही मन के निर्वासित
घृणित विकारो की छाया हैं—जीवन शापित।।
अह, यह दारुण स्वप्न न जाने कब टूटेगा,
निश्चेतन के अतल गत से उठ मघा-सी,
किमाकार आकृतिया मँडराती दत्यो-सी
कही खुला आकाश नही, जो स्वच्छ वायु म
साँस ले सके मन क्षण भर अह, छूट नरक स।

(नराश्यपूण करुण वादित्र सगीत जो धीर धीरे
लोक जागरण के उत्सव सगीत म परिणत
होकर द्रुत स द्रुततर होता जाता है। कला-
कार की पलको पर दूसरा स्वप्न चित्र उतरता
है सुदूर स वाहित सगीत के स्वर आत हैं।)

जन गीत

जीवन मे फिर नया विहान हो,
एक प्राण, एक कण्ठ गान हो!

बीत अब रही विषाद की निशा,
दीखने लगी प्रयाण की दिशा,
गगन चूमता अभय निशान हो!

हम विभिन्न हो गये विनाश मे,
हम अभिन्न हो रहे विकास म,
एक श्रेय प्रेय अब समान हो!

क्षुद्र स्वार्थ त्याग, नीद से जगें,
लोक कर्म मे महान सब लगें!
रक्त मे उफान हो, उठान हो!

शोषित कोई कही न जन रहे,
पीडन अन्याय अब न मन सहे,
जीवन शिल्पी प्रथम, प्रधान हो!

मुक्त व्यक्ति, सगठित समाज हो,
गुण ही जन मन किरीट ताज हो,
नव युग का अब नया विधान हो!

कलाकार

आज व्यक्ति सघर्ष लोक जागरण बन रहा
धीरे निर्मम स्वार्थों की शृखला तोडकर!
किस माया बल से युग जीवन अधकार फिर
विहँस उठा मानस-उज्ज्वल मगल प्रभात मे!
निश्चय ही वह अधकार था नही अकेला,
अलसाया जीवन प्रकाश था, मानव मन की
अध वीथियो, रुद्ध घाटियो म बदी हो
म्लान पड गया था जो छाया-सा कुम्हलाकर!
चेतन से जड को देखें, जड से चेतन को
दोनो का निष्कर्ष एक ही होता निश्चय!
उद्वेलित हो उठा आज स्तम्भित जन सागर
प्राणो का नव ज्वार उमडता उसके उर म,
मज्जित कर देगा वह भू तट, युग प्लावन मे
बाधाओ को लाघ, बहा अवसाद युगो का!
नवल प्रेरणा के स्पर्शों से पुलकित जन मन,
आदोलित हो उठा विविध शाखाओ का जग,
नव वसन्त की जीवन शोभा मे दिगन्त को
मधु प्लावित कर देगा वह, नव गध मजरित!
आ, महान् जागरण, युगो से लोक अभीप्सित,
भू पलको पर मूर्त हो रहा स्वप्न सत्य-सा,
जगती के वैषम्य विरोधो को, कल्मष को,

मिटा सदा को धरा वक्ष के वरूप्यो को ! •
एक प्राण हो रही धरा, युग युग से खण्डित, •
एक लक्ष्य को बढ सहस्र पग श्रेणि मुक्त हो,
जन भू म स्वर सगति भरते पद चापा से !
कौन दिशा वह किधर बढ रहा जन-भू-जीवन,
मत्त, स्फीत, गर्जित समुद्र-सा हिल्लालित हो ?
कौन प्रेरणा उसे खींचती किस नव पथ पर ?
कैसा वह ईप्सित प्रदेश ? जन स्वग लोक वह ?
क्या उसका आदश रूप ? यह धरा चेतना
कैसा स्वर्णिम नीड रचेगी जीवन तरु पर,
जहाँ मनुज की प्राण कामना पूण-काम हो,
पखो के सुख मे लिपटी कल गान करेगी ?
जो मधुचक्र समान भरा होगा नव मधु से !
क्या होंग उपकरण लोक सत्ता, सस्कृति के,
कैसा अन्तस्तत्व ?—जानने को उत्सुक मन !

(वैभव युग का आन द मगल सूचक वादित्र सगीत कलाकार की स्वप्न चेतना व्यापकजीवन प्रसार मे विचरण करती है सुदूर से वाहित गीत के स्वर ।)

उत्सव गीत

गीत नृत्य, राग रग
जन मन म नव उमग !
सफल स्वण धरा स्वप्न
लोह नियति दप भग !
पूण काम धरणि धाम
शस्य हरित, श्री ललाम,
शोभित सह कृपि प्रकाम
जीवन की सी तरग !

मानवता वर्ग हीन
तन्त्र भी हुआ विलीन,
जन सब सस्कृत, प्रवीण
युक्त विविध लोक सघ !

वैभव का रे न पार
ऋद्धि सिद्धि खडी द्वार,
आधि व्याधि गयी हार
रिक्त दैन्य का निषग !

ज्ञात निखिल अब इति अथ
बढता जन अभिमत रथ,
विस्तृत जनहित युग पथ
गति प्रिय जीवन तुरग !

मानव मानव समान
संस्कृति से सिक्त प्राण,
स्वप्नों का सा विमान
उड़ता उर का विहग !

कलाकार

जन भू की भावी की झाँकी यह निःसंशय
अंतिम स्थिति जो भौतिक सामाजिक विकास की !
मधुर स्वप्न-सा लगता जन का विभव स्वर्ग वह
वर्गहीन से तन्त्र हीन हो जन समाज जब
प्राप्त कर सकेगा अभिमत पार्थिव जीवन का !
बहु शिक्षा सम्पन्न, कला कौशल में दीक्षित
मनुज कर सकेंगे निर्भय भू जीवन यापन
विकसित, संस्कृत, आप्त प्राणियों-से पृथ्वी पर,—
सामाजिक दायित्व स्वतः ही संचालित कर !
आ, कैसा जीवन होगा तब जन धरणी का ?
उषा सुनहली, ज्योत्स्ना अधिक रुपहली होगी ?
मानव की चेतना ज्योति प्रहसित सागर सी
धोयेगी भू की विषण्णता को, जड़ता को,
लोक कर्म कल्लोलित, नव भावोद्वेलित हो ?
दिग् दिगन्त जन मन वैभव से आप्लावित हो
शाश्वत मधु से सतत रहेगा गन्ध गुंजरित ?
प्रीति कुंज जन ग्राम अमर पुरियों से कुसुमित
मण्डित कर देंगे भू को श्री सुख गरिमा से ?

(प्राणोन्मादन वादित्र संगीत)

रूढ़िबद्ध, कुण्ठित, कुत्सित संस्कार युगों के
उच्छेदित हो जायेंगे मानव अंतर से ?
विस्तृत उपचेतन गह्वर, व्यापक मन क्षितिज,
विकसित हो जायेगा जन जीवन संवेदन ?
घृणित क्षुद्रताएँ मिट जायँगी मनुष्य की
दैन्य अविद्या तमस निरस्त नये प्रकाश से ?
स्वार्थ लोभ कटु स्पर्धा धुल जायेगी मन की ?
रूपान्तर हो जायेगा मानव स्वभाव का ?
व्यक्ति समाज परस्पर घुल मिल जायेंगे तब
भर जायेगा अंतराल दोनों का गहरा ?
चिन्ताओं से मुक्त मनुज आत्मोन्नति में रत
संस्कृति का नव स्वर्ग बसायेगा धरणी पर,
आध्यात्मिक सोपानों पर आरोहण कर नव ?

(आनन्द कल्पना मग्न वादित्र संगीत सहसा रण वाद्यों के निनाद तथा विप्लव के कोलाहल में डूब जाता है)

(स्वप्न मे चौंककर)

अह, यह कैसी दुर्मुख रण भेरी बजती है,
आहत कर दिड् मण्डल को दारुण गजन से !
कौन शक्तिया काय कर रही भू मानस म ?
क्यो राष्ट्रो के बीच पडे है लोह-आवरण ?
कौन साधनो का प्रयोग कर रह धरा जन,
नव भू स्वग बसायेगे क्या रक्त सने कर ?
क्यो भीषण उपकरण जुट रहे विश्व ध्वस के ?
सेनाएँ सगठित हो रही विकट, भयकर
अस्त्र शस्त्र बन रहे विनाशक, वज्र निनादक ?
काल दष्ट्र-से जो कराल, जिनके दशन म
महानाश के निमम तत्त्व हुए है बन्दी,
शत प्रलयो का ध्वस, कोटि कुलिशा का पावक
जिनम पुजीभूत किटाणु महामारी के ! !

(मत्यु और विनाश सूचक करुणतम वादिन सगीत)

क्यो मानव मन का उत्पीडन, जन श्रम शोषण
आज चल रहा छल बल से, निमम साहस से !
कहा गया रण धम, मानुषी मर्यादाएँ,
विविध स धि-विग्रह, समझौते भू भागो के,—
नियम पत्र, पण, निबल राष्ट्रो का सरक्षण,
औ' सर्वोपरि शान्ति घोषणाएँ देशो की ?
नारकीय कर्मों मे रत क्यो उभय शिविर अब ?
मनुज हृदय क्यो आज हो गया इतना निमम ?
इन्ही साधनो से होगी क्या सृष्टि श्रेय की ?
आज साध्य औ' साधन मे क्यो इतना अन्तर ?
एकागी सुख स्वप्न रहा मानव समाज का,
भौतिक मद से, जीवन तृष्णा से प्रमत्त हो,
बिखर गया जो अ ध नाश मे आत्म पराजित ! !
युग आदश यथाथ साथ चल सके न भू पर !

(वादिन सगीत तीव्र से तीव्रतर होता है रणनाद और विप्लव सक्षोभ, चीत्कारे तथा कोलाहल)

कैसा हाहाकार, तुमुल रणनाद हो रहा,
शत शत वज्र कडक उठत नभ को विदीण कर,
प्रलय कोप से काप रहे भू के दिगन्त, अह,
नरक द्वार खुल गया नाश का क्या जनभू पर ! !

(भय त्रस्त होने के कारण कलाकार का स्वप्न टूट जाता है। वह अध चेतनावस्था म विस्फारित दृष्टि से इधर उधर देखता है सुदूर से वाहित सगीत उसका ध्यान आकर्षित करता है वह उठकर ध्यान मौन अवस्था म बैठ जाता है।)

(मन्द्र करुण वादित्र सगीत के साथ धरा चेतना का गीत)

अन्धकार, घन अन्धकार है,
अन्धकार है !

रुद्ध मनुज के हृदय द्वार,
घन अन्धकार छाया अपार है,
अन्धकार है !

बाहर जीवन का सघर्षण
भीतर आवेशो का गर्जन,
भरा मौन प्राणो मे क्रन्दन
उर मे दु सह व्यथा भार है !

बदल रहा जन भू का जीवन,
बिखर तटो पर रहा विश्व मन,
घुमड रहा उन्मद अवचेतन
मनुज विजय बन रही हार है !

युग परिवर्तन का दुवह क्षण
डाल अचेतन का अवगुण्ठन
आरोहण करता नव चेतन
प्रलय सृजन क्रम दुर्निवार है !

(वादित्र सगीत मे भाव परिवर्तन)

हँसता नव जीवन अरुणोदय
तम प्रकाश मे होता तन्मय,
सिन्धु क्षितिज पर दूर स्वप्न स्मित
उठता स्वर्णिम ज्योति ज्वार है !

यह स्वर्गिक भावो का शोणित
जीवन सागर लगता लोहित
सत्य भरा स्वप्नो का बोहित
भार मुक्त लग रहा पार है !

(आशा उल्लासप्रद वादित्र सगीत के साथ यवनिका पतन)

दिग्विजय

(जीवन सत्य की बहिरन्तर विजय का काव्य रूपक)

मरुत
अप्सरा
खेचर
नील ध्वनि
दिशा स्वर
भू स्वर

(अन्तरिक्ष में अप्सराओं का गीत)

गाओ जय गाओ!
ईश्वर का प्रतिनिधि नर,—
दिग्विजयी मानव पर
नन्दन वन के प्रसून
हँस हँस बरसाओ!

आ विद्युत बालाओ,
प्राणों की ज्वालाओ,
स्वर्ग मर्त्य मध्य स्वर्ण
सेतु नव बनाओ!

चन्द्रकला पंखों पर
अप्सरियो, उड़ निःस्वर
दिव्य युग का सुरधनु स्मित
केतन फहराओ!

पृथ्वी का घट निखार,
उमड़े चिन्मय ज्वार
अयि अनन्त यौवन मयि,
नूपुर झनकाओ!

रजत-नील मुक्त व्योम
निकट शुक्र नील सोम,
शोभा आनन्द प्रीति
लोक में जगाओ!

मादक नर-देह-गन्ध
दिशा हर्ष-मत्त अन्ध
मिले धरा-स्वर्ग फूल
सेज नव सजाओ!

खुला ज्योति लोक द्वार
अन्तरिक्ष आर पार
भू-सुत करते विहार,
भुवन नव बसाओ!

(संगीत ध्वनि धीरे धीरे अन्तरिक्ष में लय हो जाती है। मर्त्य और अप्सरा का क्षितिज में वार्तालाप।)

मरुत

घाय, शब्द-गति, ज्योति-वेग को भी अतिक्रम कर
किस प्रवेग से छूट, आ रहा कौन अस्त्र यह ?
वायु वाण या अग्निवाण ? या दिशा-यान यह ?
या नूतन ग्रह उदित हुआ अब अंतरिक्ष म ?
सौर चक्र की स्वर्णिम गतिलय म बँधकर जो
परिक्रमा करता पृथ्वी की—मुग्ध, चतुर्दिक्
विश्व नृत्य मे मत्त—ज्योतिरिंगण-सा चचल।

(प्रक्षेपास्त्र के उडने की ध्वनि)

कौन मूढ खग, दु साहसी प्रमत्त मनुज या
ढीठ पख झुलसाने—गर्वित, दृष्टि गँवाने
भग कर रहा शुभ्र शान्ति नि सीम नील की—
जहाँ अमर भी श्रद्धानत, नि शब्द विचरते,
अप्सरिया नूपुर उतार अभिसार स्थलो पर
आती जाती—सकेतो से भाव प्रकट कर !
नही जानता क्या वह, प्रहरी सूय दिशा का ?

अप्सरा

अघटनीय यह,—कोई अमित नील को नापे !
प्रथम बार धरती के गुरु-आकषण से उठ
चढता अलख अलभ्य शृ ग पर कोई भूचर !
थाह सि धु की लेता हाय, नमक का पुतला !
कैसे ध्वनि सकेत गूज नीहार लोक को
तडित् तरगो मे कम्पित करते !—सुनत हो ?

(ध्वनि-सकेत स्पष्ट होते है)

एक स्वर

कैसे हो तुम खेचर ? मैं धरती का स्वर हूँ !

खेचर

जी, प्रसन्न हूँ,—गगनरग मैं !—बोल रहा हूँ—
ठीक काय कर रहे यान के यन्त्र—यथाविधि—
अक्षत हूँ मैं !—दिशापाल अनुकूल दीखत !—

एक स्वर

कैसा लगता वहाँ ?

खेचर

न पूछो !—अद्भुत ! अदभुत !

एक स्वर

दिङ् मण्डल के कुछ अनुभव बतला सकते हो ?

रजत-नील प्रभ स्वप्न लोक मे विचर रहा हूँ ।
शुभ्र शान्ति के भाव मौन नि स्वर सागर मे
डूब रही नि स्प द चेतना—भारहीन हो ।
उच्च वायुग्रो की पवित्रता मे अवगाहित
मन त मय हो रहा—निखिल का महत् स्पश पा ।
भार मुक्त तन तैर रहा ग्रान द राशि मे ।
सूर्यातप शत रत्नछटाग्रो मे कँप सु दर
ताने स्वणप्रभ वितान गोलार्ध नील म ।
हरित नील क दुक-सा दीख रहा भूगोलक ।
ग्रा, अति रोमाचक, रहस्यमय, महा दिशा का
नि स्वर नीलम मणि प्रसार यह ।—जहा धरा के
लघु जीवन सघप लीन हो ग्रारोहो मे
ग्रथहीन से लगते घन नीरव ग्रन त म ।—
यह ग्रगाध, निर्वाक, ग्रकूल उदधि हो । धरती
मात्र बाह्य जल-तल जिसकी—ग्रावेग तरगित ।

एक स्वर

कैसा दीख रहा खगोल ? नक्षत्र, क्षितिज, भू ?

खेचर

बहुत खगोल ? न पूछो, पुरुष पुरातन कोई
देख रहा ग्रविचल, ग्रनिमेष, समाधि मग्न सा,—
रोम रोम मे ग्रपने शत ब्रह्माण्ड प्ररोहित,
ध्यानावस्थित-सा ग्रसग नि सीम शा ति मे ।
स्वण हरित चेतना दिशा की सँजो हृदय मे
प्रात मणि ग्राभा सी लिपटी जो ग्रनन्त म ।

एक स्वर

ग्रा, रोमाचक गाथा, निश्चय, ग्रन्तरिक्ष की ।
शू य, चिदात्मा मूत—ग्रात्म साक्षात्कार रत ।

खेचर

कृष्ण-नील मुख पर स्मित रत्नारुण रेखा-सा
खिचा प्रकाश क्षितिज, भू की स्वर्णिम-काची-सा,
प्रभा-वृत्त हो ग्रगणित छायाग्रो से विरचित ।
मुक्त प्रसार,—न किंचित भी ग्रवरोध सामने,
मात्र दृष्टि ही की सीमा—जो खो खो जाती ।
नील - ग्रास्य पर महा हास्य भर उज्ज्वल तारे
जगमग करते चिद दीपो-से नभ करतल म ।—
रत्नखचित ग्राँचल लिपटाय स्फीत देह पर
गभवती लेटी हो निशा ग्रनन्त वक्ष मे,—
ग्र धी, गा धारी-सी, शत भुवना की जननी ।
ग्रग्निबीज हो लिये शू य या निज मुट्ठी म

दिशा योनि को उवर करने नव लोका से ।

एक स्वर

लक्ष्य-भ्रष्ट हो जाय न खेचर दिक् प्रमत्त हो ।

खेचर

मुझे नही इसका भय ।—देख रहा धरती को
इद्रधनुष मे लिपटी—मुग्ध अनत यौवना
नाच रही जो मुक्त उवशी सी असीम म ।
देख रहे अपलक ज्योति ग्रह यौवन शोभा ।
उडता गध ग्रथित दुकूल रेशमी पवन का—
शस्य हरित चोली वक्षोजो के शिखरा पर—
भूल रही फेनोमिल नदिया कण्ठहार - सी—
लहराता लहँगा सागर का रत्न मणि जडा
धूप छाह मय रश्मिद्रवित रगा से गुम्फित ।
नाच रही वह गिरि शृगो के हाथ उठाये
नील मुक्ति मे!—चित प्रकाश से सद्य वेष्टित!
देख रहा हूँ—भू के वहु देशो, राष्ट्रो को,
पार कर रहा महाद्वीप मैं पलक मारते—
स्मरण आ रही वहु विशेषताएँ देशो की
जन भू के वैचित्र्य भरे सुदर जीवन की ।
याद आ रही सुहृदो की, स्वजनो की प्रतिक्षण
स्मरण कर रहे होगे वे भी निश्चय मुझको ।
सोच रहे होगे मेरे अदभुत साहस की
बातें,—मैं भी कही निशकु समान अधर मे
लटक न जाऊँ—भटक न जाऊँ—लौट न पाऊँ ।
चिन्तित होगे—महत शून्य का एकाकीपन
निगल न जाये कही, अकेला पाकर मुझको—
मनुज जाति से, गह स्वदेश से जो अब विरहित ।
हँसते होगे शत्रु—मोम के पख लगाकर
सूरज से मिलने के मेरे दु साहस पर,—
कहते होगे—हाथ बढाकर क्या बौना नर
पकड चद्र को लायेगा करतल म धरकर ?
पर, मैं मानव अन्तर की आशाऽकाक्षा का
केवल प्रथम प्रतीक मात्र हूँ—जो अनादि से
शब्दहीन इस महानील के चिर रहस्य को
चीर, ज्योति स्वर लिपि म अकित, गुह्योच्चारित,
उसके बीजाक्षर मत्रो को पढने के हित
चिर आकुल था—उसके ज्योतिमय आँगन का
अभ्यागत बनने को उत्सुक! —जयी आज नर !
दिग् दुदुभि घोपित करती मानव की जय को,
बज - बज उठती तारा की रुपहली पायलें—
पुष्प हार ले स्वागत करती मुग्ध अप्सरा

रश्मि पख, शत सुरधनु छायाओ मे लिपटी ।
दिशा हस्तगत आज साहसी धरा पुत्र के ।
दूर हुई दिग गत बाधाएँ विश्व प्रगति की
भू जीवन सयोजन की, मानव विकास की ।

एक स्वर

धन्य जयी नर, धन्य जयी जीवन भू जन का ।

खेचर

लो, मैं पृथ्वी की परिक्रमा पूर्ण कर चुका—
घूम समान्तर क्षितिज वृत्त के, दिशा-यान मे ।
अब धरती पर उतर मातृ भू की पदरज को
चूम, नमन कर, अन्तरिक्ष के रजत हृप को
मा के चरणो पर अर्पित कर, जन जन भ मैं
स्वग श्वास भर दूगा, गोपन अनुभव वह—
यह रहा उडाकू छत्र ?—अनिवचनीय, आह,
नि शब्द नील, निर्वाक नील, नि सीम नील !—
(हठात निर्वाक् नि सीम म गहन गम्भीर ध्वनि
उठती है ।)

नीलध्वनि

ठहरो दिग्चर ठहरो,—भू की परिक्रमा कर
खोल नील का वातायन, तुम गव स्फीत हो
लौट रह अब दिग् विजयी बनकर धरती पर ।
झूठा अरुणोदय ले जाकर—मानवेन्द्र बन ।
सुनो !—नील, नि शब्द नाल,—मैं बोल रहा हूँ,—
मेरा ही गुण शब्द—मौन मुझमे तन्मय जो
कभी मुखर हो उठता वश्व नियम से अपने ।—
क्या पायेगी मनुज जाति इस समदिग् जय से?—
माना, मगल, चन्द्र, शुक्र मे धरा पुत्र ने
विजय वैजयन्ती फहरा ली ।—तो इससे क्या ?
तोड सकेगा मानव अन्धी लौह नियति को ?—
पीस रही जो उस क्रूर निमम पाटो मे ।
देह प्राण मन मे ब दी कर दिव्यात्मा को,
भेद बुद्धि से शोषण कर हृत्पद्म ज्योति का,
जरा मृत्यु पजो मे निजर को दबोचकर,—
अह धूलि से अ धा कर आलोक चक्षु को ।

(गम्भीर ध्वनि प्रभाव)

सुन रे दिग्चर, महानील का उद्बोधन सुन ।
तू मेरा सन्देशवाह बन भू जन के हित,
आमन्त्रण ले जा मरा—मैं महाकाल हूँ ।
अभी काल पर जय पाना है धरापुत्र को ।—
मैं उसको ललकार रहा हूँ ।—खडा प्रतीक्षा मे

मैं, स्वय पराजित होने मानव के
हाथो स—मेरे ऊर्ध्व शिखर पर चढ वह निर्भय
पायगा अपनी सार्थकता,—शाति, ज्योति,
आनन्द, प्रीति, सौन्दय अनश्वर,—अमत-तत्त्व।
जा ओ भूचर तू मेरा सधि निमत्रण ले जा—
मैं रण के हित भी उद्यत हूँ—मानव चुन ले।
मैं प्रसन्न हूँ तेरे निष्फल दुसाहस से,
बुद्धि-कुशल खोखले यत्न से।—अन्तरिक्ष के
भीतर अगणित अन्तरिक्ष हैं—आकाशो के
भीतर अमिताकाश सूक्ष्म, अति गुह्य, अगोचर,—
महाकाल का गूढ विधान दिशा प्रागण पर।
काल जयी बन! —आत्मजयी ही विश्वजयी भी।
बिना मेरु पर चढे मात्र शाखा मग सा तू
ग्रह से ग्रह पर कूद, क्षितिज से फाद क्षितिज पर
व्यथ करेगा क्या? बाहर के जग म खोया,
नक्षत्रो की चकाचौंध मे,—रिक्त परिधि जो।
तू ही सबका केंद्र—केंद्र ब्रह्माण्ड—विश्व का—
तेरे ही भीतर सूरज, शशि, ग्रह, उपग्रह सब।
आत्मवान् तू धराधाम को बदल स्वग म।
बाध विविध भू देशो को नव मानवता मे—
आज विरोधी शिविरो म जो बँटे हुए हैं।
भू - मन का तम मत ले जा तू अन्य ग्रहो मे—
राग द्वेष, कटु घृणा कलह, निदा, प्रतिस्पर्धा।
नक्षत्रो की शुभ्र शाति को युद्ध क्षेत्र के
नारकीय कोलाहल मे मत बदल व्यथ ही।

खेचर

(ससम्भ्रम)

गुह्य, पुरातन तम स्वर फिर से सुन पडता है!

नीलध्वनि

अविनाशी हूँ मैं।—फिर तुझको जगत् चक्र म
पीसूगा—नव सष्टि सँजोकर।—विश्व ध्वस कर
लोक प्रलय तू भले बुला ले,—तुझको फिर से
काल शिखर जय करना होगा—आत्म उन्नयन कर,
जन भू पर मनुज हृदय का स्वग बसाकर!
दिक प्रमत्त विज्ञान शक्ति मे बहिजगत की
रचना कर तू आत्म ज्ञान से अन्तजग की,—
प्रेम स्वग रच मनुज हृदय म!—देह प्राण मन
हो कृताथ, आनन्द स्रोत म अवगाहन कर!
इद्रिय जीवन कुसुमित हो भू की शोभा म,—
अन्त रग अभिषिक्त, बाह्य बधन स विरक्ति।
एकागी भौतिक विकास म उन्मद भू जन

मन्यु रुद्र का सह ! —सत्य का मुख पहचानें !
पथरा गयी विविध स्वार्थों म मनुज चेतना
गत मूल्यों, धर्मों, सस्कृतियो म शत खण्डित,
जाति पाँति, वर्णों देशों म नग्न विभाजित !
महत् खण्ड जब तक जन मन का प्रकृति वमन से
नष्ट न होगा—जन्म न ले पायगा नूतन—
हृदय-स्वग रचना सम्भव होगी न मत्य हित !
हु—हुकार रहा निश्चेतन प्रकृति गभ म—
गरज उठा, लो, अम्बर—टूट रही शत विद्युत !

(मेघ गजन तथा वज्र निपात का घोर रव)

खेचर

गूढ, पुरातन, रन्ध्रहीन अन्तर ध्वनि उठती !
सकट क्षण, दिक् सकट क्षण यह !—बुझी हुई
चिनगारी-सा अह, बैठ रहा मन आत्म पराजित !
मात्र यन्त्रवत् काय कर रहे मन, तन, अवयव !
लगता है लडखडा उठेंगे पग भू को छू !

दिशा स्वर

मा भ , मा मैं ! मैं हूँ माता दिशा, काल को
अपने तन्मय उर में धारण करती हूँ मैं
मूर्तिमती प्रतिछाया उसकी !—उतरो खेचर,
उतरो, मेरी बाहु पकडकर, उतरो भू पर !
नयी दिशा दूगी मैं मानव मन, भू जन को !
दिग्भियान हो सफल तुम्हारा, तुम मानव को
महाकाल का नीलकण्ठ सन्देश दे सको !
रुद्र और शिव एक साथ जो, कारण के कारण,
निश्चेतन अतिचेतन के स्वामी, केवल !

खेचर

मात प्रकृति का आश्वासन यह !—निभय हूँ मैं,
तुम्हे समर्पित कर मा, अपना तन मन जीवन !

(सोल्लास)

दिखलायी पडता स्वदेश तट,—सद्य जोते
खेतो की रज को सौरभ यह !—उतर गया, लो,
मखमल-सी दबती परो के नीचे मिट्टी—
स्नेह स्निग्ध सोंधी सुगन्ध नासापुट में भर
पुलकित करती तन,—अम्बर की घन नीरवता
वचित है इस इन्द्रिय दीपन मादन सुख से !
क्षितिज वत्त अब सीमित होकर नव वसन्त के
स्मित पल्लव अधरा स ममर स्वागत करता—
नील मौन की चेतावनी नही भूला मन !
लगता, जड स भी पा सकता मन चेतन को,
यदि चेतन ही जड है तो जड भी चेतन है

सत्य वही है,—दृष्टि मात्र बदली है केवल,
ज्ञान और विज्ञान एक ही तत्व सिखाते।—
कुहरा-सा हट गया, भेद खुल गया वस्तु का।
ज्ञान दीप्त विज्ञान पन्थ ही नया पथ है।
अन्य नहीं पथ, अन्य नहीं पथ, अन्य नहीं पथ,
खुला सब हित मात्र यही सामूहिक पथ है।—
देख रहा मैं मनोनयन से दिङ्‌ मानव को,
लेटा हो वह महा दिशा में अर्धोत्थित तन,
अतल सिन्धु में चरण, जघन कटि उदर धरा पर,
हृदय स्वर्ग में मस्तक निदिव क्षितिज से ऊपर।
जाग रहा वह ध्यान लीन भी, ध्यान हीन भी?
जय नव मानव की, जय नव विज्ञान ज्ञान की,
भौतिक पथ से बढ़े साथ सामाजिक मानव
आध्यात्मिक, सांस्कृतिक लक्ष्य का—यही साध्य है,
यही सुलभ साधन।—पथ संकट उभय ओर हैं।

(जन कोलाहल का प्रभाव)

एक स्वर

देखो, देखो, गगन रंग वह, उतर रहा है।
अन्तरिक्ष का दूत,—उड़न छत्री खोले वह,
धरता धरती पर पग।

कई स्वर

स्वागत, स्वागत खेचर।

एक स्वर

बिना लड़खड़ाये ही लो, वह चला आ रहा।
खोल दिशा-मुख का अवगुण्ठन, चूम क्षितिज के
अरुण रेख अमृताधर, भेद रहस्य नील का।

कई स्वर

स्वागत हे स्वागत, दिङ्‌ मानव, व्योम जयी नर।
रुद्ध द्वार खुल गये धरा हित आज स्वर्ग के।

(नर नारी का समवेत गीत)

अभिनन्दन वन्दन हे।
पृथ्वी के हित खुला स्वर्ग का
स्वर्ण क्षितिज तोरण हे।
छाया पथ पर चल मानव रथ
देख रहा भूमा का इति अथ,
धरती के पुत्रों से शोभित
ग्रह-ग्रह का आँगन है।
खुले रुद्ध भूजीवन बन्धन
जड़ की सीमा हुई समापन—

लगता शून्य अनन्त, सूय से
दीप्त, आत्म चेतन है !
विश्व मुक्ति ही व्यक्ति मुक्ति पथ,
मानवता की तुम्हें ह शपथ,
दिग् युग रचना करो, एक हो
विश्व, एक भू-जन है !
हो भौतिक सोपान स्वग तक,
आत्म दीप्त अन्तर दग अपलक,
भावो की शाभा म मुकुलित
हो इन्द्रिय जीवन ह !
प्राणो की चिर चचल परिया
शुभ्र चेतना की अप्सरियाँ,
धरा स्वग रचना मगल म
भरती आलिगन है !
वन्दन अभिनन्दन है !

युग पुरुष

पात्र

युगपुरुष
लक्ष्मी
शिवू भइया
प्रभा
यूसुफ
मौसी
स्वयसेवक
सेविकाएँ

[स्थान गाँव के एक मध्य श्रेणी के परिवार के घर का बरामदा और आँगन।

नेपथ्य से उच्च स्वर मे शखनाद होने के बाद सुनायी पडता है—

यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत,
अभ्युत्थानम धर्मस्य तदात्मान सजाम्यहम!
परित्राणाय साधूना विनाशाय च दुष्कृताम्,
धर्मसस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे!

पुन शखनाद होता है और परदा फटता है। मच मे प्राय मध्य मे, कुछ बायी ओर को, प्रभा और लक्ष्मी बैठी हुई हैं, उनसे कुछ हटकर शिबू भइया, हाथ पीछे की ओर किये, कुछ सोचमग्न-से होकर चक्कर लगा रहे हैं, और कभी कभी ऊपर की ओर देख लेते हैं। लक्ष्मी रुई की पूनी बना रही है और प्रभा चरखा चला रही है। वह बार बार कातने की कोशिश करती है, पर तागा फिर फिर टूट जाता है।

परदे के फटते ही, दायी ओर से, एक गठीले बदन का नाटा बूढा किसान सिर पर छोटा सा सुफेद गँवई साफा लपेटे घुटने तक की धोती पहन, लाठी टेकता हुआ प्रवेश करता है, और मच की दूसरी ओर बिलकुल सामने जाकर बठ जाता है। वह लाठी को दायी तरफ और बगल से तौलिये का पुलि दा निकालकर उसे दूसरी तरफ रखता है, वह बीच बीच मे कभी तौलिये से मुह पोछता, कभी गला खखारता, कभी विचारमग्न सा अपनी सुफेद मूछो पर हाथ फेरता है तथा दो एक बार आसन बदलकर चुपचाप बठा रहता है। नेपथ्य से उसके आसपास, बदन से टकराकर, कुछ पीले पत्ते गिरते हैं।]

प्रभा (अध स्वगत) अम्मा को कुछ सूझता तो है नही! न जाने कैसी पूनी बनायी है कि तार ही टूट जाता है!

लक्ष्मी तार कसे बँधे बेटा, कभी चरखा हाथ मे लिया होता तब

ना ? इसी को कहते हैं—(जोर से छीं, छीं, छींकती है)

प्रभा (हाथ की पूनी दूर छिटकाकर) लो, हाथ की पूनी तक उड गयी ! अम्मा, तुम इसी तरह छीकोगी तो हाथ ही की रुई क्या, एक राज सारे हिन्दुस्तान की रुई उड जायेगी!

लक्ष्मी (मुह के भीतर-ही भीतर हँसती हुई) कैसी बातें बनाना सीख गयी है !

प्रभा (आँखें मटकाकर) सच अम्मा ! तुम्हारे नजले से घबडा कर तो पेडो के पत्ते तक उडने लगे हैं ! एक रोज सब पेडो मे बस टहनियाँ ही टहनियाँ नजर आयेंगी !

लक्ष्मी उँह !

प्रभा जब पत्ते झडने लगत हैं माऽ, तो उसे पतझार कहते हैं और जब नयी कोपलें आती हैं तो उसे बस अन्त कहते हैं।

लक्ष्मी (उसकी बाँह पर खोचा देकर) बस अन्त नही, वसन्त !

प्रभा वसन्त ही सही ! तब माँ, कोयल बोलने लगती है कुहू ! कुहू ! (खडी होकर) बस, अब मुझसे नही काता जाता !

लक्ष्मी यह लो, मुझे बातो मे बहलाकर खुद भाग खडी हुई। काम-चोर ! अभी तक चरखा कातना भी नही आया ! आ, बैठ !

शिबू (रूखे स्वर मे) क्यो नाहक उसे परेशान करती हो चरखा चलाना कोई आसान है ?

लक्ष्मी हाऽय उसे सर पर चढा लिया है। चरखा चलाना भी आसान नही

शिबू अगर आसान है, माँ, तो वह इतना आसान है कि सभी के लिए चरखा चलाना आसान नही है ! (दर्शकों की ओर इशारा कर) पूछती क्या नही, इनम से कोई चरखा चलाता है ?

[युगपुरुष गरदन घुमाकर शिबू भइया पर किंचित् तीव्र दृष्टि डालता है।]

प्रभा (शिबू से लिपटकर) भइया !

नेपथ्य स

अरी ओ शिबू की माँ, शिबू की माँऽ !

प्रभा (जसे चौंककर) अम्मा, मौसी आयी हैं !

लक्ष्मी आयी चन्दो, आयी ! (रुई समेटती हुई अप स्वगत) जो चाहो भइया करो इतनी सयानी लडकी हो गयी है कोई काम जाने है न धधा ! (कुछ नीचे स्वर मे जल्दी से) कोई काम जाने है न धधा !

प्रभा (रुई बटोरती हुई) अम्मा जब गुस्सा करती हैं तो हर एक बात को दो दो बार कहती हैं। जसे कोयल अपनी बोली दुहराती है, कुहू ऽ कुहू !

लक्ष्मी (प्रभा का गाल पकडकर खींचती हुई) कुहू कुहू ! इतनी बडी लडकी हो गयी है मुह चिढाती है ! (चादर के कोने

बाँधती हुई) घर मे कोई सयाना नही रहा, इसलिए !
जब ससुराल जायेगी तब याद करेगी ! (खड़ी होकर)
शिबू न अपनी सारी उमर जेल मे काट दी ! अब स्वराज्य
लाया भी है तो किस काम का ? अभी तक बहन की भी
शादी नही कर सका।

नेपथ्य से
अरे, शिबू भइया हैं ?

प्रभा (उछलकर, और शिबू को टहलते देखकर) यूसुफ भाई
आये हैं ?

शिबू (अन्यमनस्क-सा) कौन ? यूसुफ ! आओ, चले आओ !

लक्ष्मी (कपड़े का पुलिंदा उठाकर चलती हुई) प्रभू बेटी, जा
चरखा अंदर रख आ !

प्रभा *नही मा, मैं कातना सीखूगी। अभी तो तुम कहती थी कि
मुझे कुछ नही आता !* (चरखे के पास जाकर बैठती है।)

लक्ष्मी चल, उठ, मौसी से नही मिलेगी क्या ?

शिबू (जोर से) हा हा हा-हा ! मा चाहती है प्रभा और यूसुफ
की मुलाकात न हो ! हा-हा हा ! छुटपन से तो दोनो साथ
खेले हैं !

लक्ष्मी (विरक्त होकर) मैं कुछ नही चाहती भइया, दस लोग दस
बातें कहते हैं !

[यूसुफ का प्रवेश]

शिबू आओ यूसुफ, बैठो ! (मोढ़ा देता है)

यूसुफ नमस्ते, अम्माजी ! (मुसकुराकर) अरे प्रभा !

नेपथ्य से
शिबू की अम्मा ऽ, ओ शिबू की अम्मा !

लक्ष्मी (सिर हिलाकर) जीते रहो भइया !

नेपथ्य से
अरे, मैं घर का काम छोडकर आयी हूँ !

लक्ष्मी आयी बहिनी यह आयी ! (प्रस्थान)

शिबू कहो भाई यूसुफ, आज बहुत रोज बाद आये !

यूसुफ (बैठकर) भइया, इधर लखनऊ चला गया था आज ही
तो सुबह घर वापस आया !

शिबू हाँऽ, मैं तो भूल ही गया था !

यूसुफ आप कुछ परेशान से लगते हैं भइया !

शिबू (ठोडी पर हाथ फेरकर) नही, ऐसी तो कोई बात नही !
(टहलता हुआ) यही सोचता था, कि स्वराज्य पाने पर भी
हम लोग स्वतन्त्र नही हो सके !

यूसुफ धीरे धीरे ही तो सुधार होगा, भइया !

शिबू (खड़ा होकर) क्या सुधार होगा ? मैं शासन या अमन
चैन की बातें नही कर रहा हूँ मैं देख रहा हूँ कि देश आगे
बढ़ने के बदले दो-तीन सौ साल पीछे चला जा रहा है।
हममे जो खराबियाँ कभी पहले रही होगी वे आज हमारे

भीतर फिर से अपना सर उठाकर हमारे राष्ट्रीय जीवन को बनने नहीं दे रही हैं। इतने गिरोहों, फिरकों में, इतने मतों और विचारों में बल्कि इतने घरों और मूढ़ों में बँटकर आज हमारी राष्ट्रीय चेतना टुकड़े टुकड़े हो रही है।

यूसुफ यह तो भइया, होगा ही। जो बुराइयाँ हमारे भीतर आज तक दबी हुई थीं, वह एक बार बाहर आयेंगी ही। और उनका कर्ज भी हमें चुकाना ही पड़ेगा। हम धीरे धीरे एक दूसरे को नयी तरह से पहचानना सीखेंगे और एक तरह से सीख भी रहे हैं। (प्रभा एकटक यूसुफ की ओर देखती है)

शिबू तुम तो हमेशा के ही आशावादी रहे हो। तुम सोचते हो हममें से किसी को कुछ करना धरना नहीं है और विधाता के बनाये कुछ नियम—या इतिहास के कुछ नियम, अपने आप ही हमारे भीतर से कुछ काम कर देंगे।

यूसुफ (चरखे के सूत को उँगली में लपेटकर तोड़ते हुए) कुछ इन्सान के बनाए हुए नियम काम करते हैं भइया, कुछ विधाता के।

प्रभा छि यूसुफ भाई, आपने मेरा सूत तोड़ दिया!

यूसुफ (उसकी ओर देखकर) कुछ सूत टूटने के लिए ही होते हैं। (शिबू से) अब इस प्रभा में तो इन्सान का बनाया हुआ कोई नियम काम करता नहीं। यह जैसे बिलकुल ही विधाता की बनायी हुई है।

प्रभा (सिर उठाकर) और आप?

यूसुफ अरे मैं तो दूर दूर घूम फिर चुका हूँ बड़े-बड़े शहरों में रह चुका हूँ जो इन्सान के बनाये हुए हैं। तुम तो गाँवों से बाहर ही कभी नहीं निकलीं हमेशा से विधाता के राज्य में रही हो।

प्रभा (हाठ मिलाकर सूत जोड़ती हुई) तो आप इन्सान के बनाये हुए हैं इसीलिए इतने अच्छे हैं और मैं विधाता की बनायी हुई हूँ, इसीलिए इतनी बुरी हूँ।

यूसुफ (नकारात्मक सिर हिलाकर) मैंने तो ऐसा नहीं कहा।

प्रभा (सकारात्मक सिर हिलाकर) कहा तो नहीं लेकिन सभी बातें तो कहने की होती नहीं कुछ समझने की भी होती हैं।

यूसुफ मुझे तो बड़े बड़े शहरों में भी तुम्हारी जैसी अच्छी लड़की नहीं दिखायी दी।

प्रभा (सहज दृष्टि से उसकी ओर देखकर) अच्छा तो मुझमें ऐसी कौन अच्छाई है।

यूसुफ तो यह कहो तुम अपनी तारीफ सुनना चाहती हो।

प्रभा सभी तो अपनी तारीफ सुनना चाहते हैं, क्यों शिबू भइया। (शिबू सिर हिला देता है) यह जानकर कि मैं अच्छी हूँ इन्सान अच्छा है यह दुनिया अच्छी है मन में कितनी खुशी होती है।

यूसुफ अब यही तुममें एक अच्छी बात है।

शिबू (जसे विचार निद्रा से जगकर) यूसुफ, अब जैसे तुम्हारा और प्रभा का सवाल है। इस किस तरह हल किया जाये कि साँप मरे, न लाठी टूटे। कोई सूरत ही नज़र नही आती! (यूसुफ सिर झुका लेता है। प्रभा उत्सुक दृष्टि से शिबू की ओर देखती है) सारा गाँव जैसे मन ही मन इंतजार कर रहा है कि एक रोज कुछ जरूर होनेवाला है।

यूसुफ इस बात को भूल जाइए भइया। आप नाहक फिक्र मे घुल घुलकर अपना खून सुखा रहे हैं। मैंने तो इसके बारे म सोचना ही छोड दिया है और न कभी ख्याल ही आता है। फिर, यह कोई आपके मेरे बीच का तो मसला है नही। यह तो सारी बिरादरी का सारे गाव का और एक तरह स सारे देश का कुसूरवार बनना है और फिर वह भी आजकल के जमाने मे। क्या किसी से कुछ छिपा है भइया? (खड़ होकर) ना, ना, यह नामुमकिन है बिलकुल ही नामुमकिन। (प्रभा उसी तरह प्रसन्न दृष्टि से यूसुफ की ओर देखती रहती है, जसे उसके कहने का उसपर कुछ असर हो न हुआ हो।)

शिबू (भावुकता से बहकर) जो बात नामुमकिन हो जाती है यूसुफ, उस हल करना और भी जरूरी होता है। और फिर इस बात को भुलाने स ही क्या मैं प्रभा को भूल सकता हूँ? यह क्या उसकी जिन्दगी का सवाल नही है? उसकी खुशी का उस के सुख-दुख का उसके दिल के सारे अरमानो का? वह बाहर से भले ही सीधीसादी, भोलीभाली लगती हो, पर यह उसका घर का चार आदमियो के बीच का चेहरा हो सकता है। हम सबको अपन केंचुए की चाल से आगे बढनेवाले समाज के भीतर रहना होता है, हमारे भीतरी दु खो पर, हमारे बिना जाने भी, एक नकाब पडा रहता है—फिर इसम उसका कुसूर भी क्या है?—तुम दोनो छुटपन से साथ पले, साथ खेले, साथ ही बडे हुए हो। और, हमारे घरानो के आज तक जमे सम्बन्ध रहे हैं तुम्हारे और मेरे वालिद मे कितनी गहरी दोस्ती जसा भाईचारा रहा है उसमे यह अब, न जान कैसे कब सम्भव और स्वाभाविक हो गया आज उनकी आत्माएँ क्या सोचती हैं यह मैं नही जानता! और तुम तुम पढे लिखे हो, सयाने और समझदार हो, तुम्हारे बारे म भी मैं कुछ नही सोचता। लेकिन प्रभा! क्या तुम उसे नही जानते वह जिस तरह ढल चुकी है, ढल चुकी है। उसे अब कोई बदल सकता है?—(यूसुफ की आँखें एक बार खुशी से चमक उठती हैं, लेकिन वह शीघ्र ही शान्त और गम्भीर हो जाता है) तुम्ही तो अभी कहते थे कि वह विधाता की बनायी है।

यूसुफ भइया, भइया! (दोनो हाथो से मुह ढाँप लेता है) आपसे कुछ भी छिपा नही है। मैं भी दिन रात प्रभा ही के बारे म सोचा

करता हूँ। इसी परेशानी मे एक शहर से दूसरे शहर भटकता फिरता हूँ। लेकिन इसके रज का ख्याल घटने के बदले और भी बढ़ता जाता है। (सिर झटकता है) ओफ, इन महीनो म गगाजी म जितना पानी नही बहा, उसस भी ज्यादा हमारे देश मे खून बह चुका है लेकिन प्रभा। इतनी नफरत इतनी लूटमार इतने आंसू इतने धुएँ के बादल। इतन बड जुल्म और हैवानियत की आंधी, जस इस हिलाये बिना ही इसके ऊपर से निकल गयी। जसे बादल चांद को नही छुपाते, उनको हटाकर वह और भी चमकने लगता है, वैस ही प्रभा के भीतर, गाँवो की लहलहाती हुई हरियाली मे पला हुआ इ सानियत का ख्वाब अपने मुहब्बत के पख फलाकर इस जमाने के जुल्मो को अपने मे छिपाय हुए है।

शिबू (जल्दी जल्दी चक्कर लगाता हुआ) मैं उसका भाई हूँ— भाई का भी कुछ फज होता है। नही, यह भाई का ही फज नही, यह इ सानियत का भी तकाजा है। य सब ठण्डे दिल से समझने की बातें हैं। हम आज अपने को समझना और समझाना होगा। एक जमाने का नक्शा होता है, एक इ सानियत की पुकार—दो इ सानो की जि दगी का सवाल!

अपने आप मिले हुए दो दिलो का स्वग। एक ओर व्यक्ति है, एक ओर समाज। एक ओर मनुष्य के हृदय की सच्ची, सनातन, पवित्र भावना है, दूसरी ओर मिटती हुई पिछली दुनिया के मजहबो, कौमो, नीतियो और चलनो का आपका विरोध और झगडा। एक ओर ईश्वर का सकेत, दूसरी ओर आदमी के घमण्ड की हुकार एक ओर है अहिंसा, सत्य का आत्मबल, दूसरी ओर मक्कार, फरेब और जुल्मो की ताकतो का मोर्चा। एक ओर है बडी इन्सानियत का बढता हुआ ख्वाब जो कल की रोशनी मे आकर हकीकत बन जायगा, और दूसरी ओर है छोटे आदमी की छोटी दुनियादारी का टिमटिमाता हुआ चिराग, जो कल अ धकार मे बुझ जायेगा। (खडा होकर) नही, यह प्रभा और यूसुफ का सवाल नही है। यह है दो जीती-जागती कौमो के दिलो की धडकनो को मिलाने और उ ह एक बडी जि दगी के सुरो मे बांधने का सवाल। आज भीतर से आनेवाली एक नयी रोशनी, एक नयी जि दगी की सुबह को मुर्दों के खड़े किये हुए नफरत और अंधियाले के पहाड रोक रहे हैं (सामने देख कर) मुझे अपना रास्ता साफ दिखायी देता है।

यूसुफ (जसे उसकी रूह हिल उठी हो) नही भइया, ऐसा नहीं होगा, ऐसा कभी नही होगा। यह गांव का देश का, या इ सानियत का सवाल नही है! यह है सबके पहले, सीधा-सादा, अम्मा का सवाल। अम्मा सब कुछ समझन पर भी इसे नही समझ सकेंगी। यह उनकी बरदाश्त के बाहर है। उनकी कमर ही टूट जायगी उनका दिल टुकडे टुकडे

हो जायेगा ! वह इसके बाद एक रोज भी नही जीती रह सकती। भइया, यह महज कौमो या मजहबो के लिए रास्ता बनाने का सवाल नही है—यह है, कब किस हद तक आगे बढा जाये जमाने को किस तरह अपने साथ लिया जाये—इसका सवाल ! आज हम अपने देश के लिए कडवी से कडवी घूट को भी स्वादिष्ट और मीठी बना देना है ! यह तभी हो सकता है जब हम समाज और व्यक्ति दोनो की कठिनाइयो को ठीक ठीक तौल सकें और उनकी मुसीबतो का अन्दाज लगाकर उन्हे नयी जिन्दगी के ढाचे मे बिठला सकें। क्योकि बहुत मुमकिन है कि राह बनाने के बदले हम खाई ही खोद बैठे !

[युगपुरुष समर्थन करते हुए सिर हिलाता है]

प्रभा (चरखा रोककर) सुनती हूँ, यह धरती बराबर घूमती रहती है यह ठीक ही होगा। लेकिन यह धरती जो सदा थिर और अचल लगती है, यह भी कैसे गलत हो सकता है ? जब हर वक्त नाचती हुई धरती थिर रह सकती है तो सभी तेज रफ्तार से बढती हुई चीजें धरती का सौम्य धीरज अख्तियार कर सकती है और सभी रुकी हुई तडक-भडक के साथ न बढनेवाली चीजें भी, आगे बढ सकती हैं !

नेपथ्य से (ऊँचे स्वर मे)

नही जीजी, भला मैं ऐसा क्यो सोचूगी ? राम, राम ! मैं क्या प्रभा और यूसुफ को नही जानती ? और फिर तुम ऐसा क्यो होने दोगी ? ऐसा कभी हुआ भी है ? अच्छा, अब जाती हूँ तुम मेरी बातो का ख्याल रखना !

लक्ष्मी का स्वर

अच्छा चन्दो जिओ, बहिन, जिओ !

[लक्ष्मी को आते देखकर शिबू अपनी खादी की टोपी को यूसुफ़ की तुर्की टोपी से बदल लेता है। लक्ष्मी का प्रवेश]

लक्ष्मी (प्रभा की ओर देखकर) सिर पर पल्ला क्यो नही देती ! (प्रभा सिर ढक लेती है। लक्ष्मी आगे बढ़कर और यूसुफ़ को शिबू समझकर) बेटा, चन्दो गगा पार से महेश के साथ प्रभा की शादी का पगाम लायी है। महेश की चाची ने प्रभा को नहान म देखा था, उन्हे लडकी पसन्द आयी ! लडका तो अच्छा है बेटा, खेती-बारी बस मामूली-सी है, लेकिन घर अच्छा है ! तुम्हे तो सब मालूम ही है, तुम्हारा क्या ख्याल है भइया !

यूसुफ (कुछ झिझकता हुआ) यह तो बडी अच्छी बात है अम्मा ! महेश बहुत ही अच्छा लडका है।

लक्ष्मी जीते रहे बेटा, मैं तो तुम्हारे ही डर म हामी नही भर सकी

शिवू (टोककर) खाक अच्छा है ! अभी कल तक तो गाँव भर मे प्रभा के बारे मे न जाने क्या-क्या कहता फिरता था। १९४२ के आदोलन मे देशभक्ति का उबाल आया तो दूसरे ही रोज सरकार से मुआफी मागकर जेल से घर भाग आया !

लक्ष्मी (इधर-उधर देखकर शिवू को यूसुफ समझती है) तुमसे तो मुझे ऐसी आशा नही थी, भइया ! तुमको तो मैंने हमेशा से अपने बेटे की तरह माना है ! (यूसुफ की ओर इशारा कर) शिवू और तुम जैसे एक ही कोख स पैदा हुए हो !

शिवू मैं भी तो तुम्हारे बेटे ही की तरह कह रहा हूँ अम्मा, मैं इस सम्बन्ध को नही होने दूगा !

लक्ष्मी हाय, चन्दो का कहा ठीक निकला ! (शिवू की ओर पीठ फेर लेती है) मैं अपनी ही सिधायी से ठगी गयी !

[प्रभा मुह छिपाकर हँसती है]

(यूसुफ से) तो शिवू बेटा, तुझे लडका पसन्द है ना ?

शिवू पसन्द ? फिर वही बात ! मैं कहता हूँ प्रभा को गगा पार देने के बदले, उसके गले मे घडा बाँधकर उसे गगाजी मे डाल देना अच्छा है !

लक्ष्मी (गुस्से से) चुप रह ! तू कौन होता है मेरी सन्तान के बारे मे मुह से बुरी बात निकालनेवाला ! इसी को कहते हैं आस्तीन का साँप ! (प्रभा से) जा, अन्दर जाकर बैठ ! तेरे लिए क्या कही और जगह नही है ? (प्रभा उठती है। यूसुफ से) बेटा, तो मैं चन्दो के घर जाकर बात पक्की करवा आऊँ ?

यूसुफ (हँसता हुआ) मैं तो पहले ही कह चुका हूँ अम्मा, (उठकर) आप चाहे तो मैं खुद चन्दो मौसी के यहाँ हो आऊँ।

लक्ष्मी बहुत अच्छा हो बेटा ! तुम खुद ही गगा पार जाकर बात पक्की कर आओ ? (धोती के कोने से आँसू पोछकर) तुमने मेरी छाती पर से जैसे आज चक्की का पाट उठा लिया, जो उस दिन-रात पीसा करता था ! आज तुम्हारे पिता होते तो (रोने लगती है) आज तुम्ही लोग हो बेटा ! तुम लोग फूलो फलो ! (आँखें पोंछकर, इधर-उधर देखकर) प्रभा, बेटी (उसे शिवू के पास, जिसे वह यूसुफ समझती है खडी देखकर) हाय इसने तो मेरे मुह पर तमाचा सा मार दिया है ! (उसका हाथ झटककर) क्या तूने सब लाज धोकर पी डाली है ? क्या तू इस घर का मान धरम मिट्टी मे मिलाना चाहती है ? अपने पुरखो को नरक मे ढकेलना चाहती है ? हे भगवान, मेरे ऐसे कौन से पाप उदय हुए जो आज यह दिन देख रही हूँ।

शिवू (खडा होकर) इसे कहते हैं रस्सी म साँप देखना। (अपनी और यूसुफ की टोपी उतारकर) अब देखो ! जिन

बनावटी बातो की वजह से हमारी असलियत छिप जाती थी और हमारी इन्सानियत मे परदा पड जाता था वह हमने उतार दिये ! अब हम खासे इन्सान लगते हैं ना ?

[युगपुरुष प्रसन्न दृष्टि से उन दोनो की ओर देखता है और लक्ष्मी कभी शिबू और कभी यूसुफ की ओर देखती है]

शिबू (लक्ष्मी को हक्का-बक्का देखकर, जोर से) हा-हा-हा हा !

लक्ष्मी (उसकी हँसी पहचान कर) छि बेटा, ऐसे मौके पर भी तुझे हँसी-मजाक सूझता है !

शिबू मजाक मुझे सूझता है माँ कि तुम्हे ? अभी बेचारे यूसुफ को नाहक भला बुरा कह दिया। और जा रही थी लडकी को भेडिए की माँद मे झाकने !

लक्ष्मी (सयत स्वर मे) यह तो मैं पहले ही स जानती थी बेटा, पहले ही स जानती थी। (यूसुफ से) यूसुफ बेटा, मेरा कहा-सुना मुआफ़ करना !

यूसुफ इसमे आपका क्या कुसूर अम्मा यह सब तो शिबू भइया की शैतानी थी !

शिबू देखो, अम्मा, अब कभी प्रभा की शादी की बात मत चलाना! नही तो यूसुफ से ही नही, सारी दुनिया से भी मुआफी मागने पर तुम्हारा पार नही घुलगा (गम्भीर स्थिर स्वर मे) मैंने निश्चय कर लिया है कि प्रभा की शादी नही होगी। प्रभा और यूसुफ जैसे अनेक युवक-युवतियो के आत्म-बलिदान की जरूरत आज हमारे देश को है। उन्ह अपने हृदय का रक्त दान देकर, खून की कमी स मुर्दादिल, आज की बीमार मनुष्यता म नया जीवन भरना है। धर्मों और सम्प्रदायो के झगडो स ऊपर, राज नीतिक-आर्थिक कोलाहल से परे पुराने अन्धविश्वासो और चलनो के घेरे को लाँघकर—जो एक नया आदमी, एक बडा इन्सान—आज मनुष्य के भीतर जन्म ले रहा है—उसमे इन्ह—आपस के घृणा द्वेष को मुलाकर—नये प्राणो का सचार करना होगा ! यही आज हमारे भीतर से उठनेवाली सस्कृति की पुकार है। (युगपुरुष लाठी को ठक से मच पर मारता है) क्यो यूसुफ, तुम क्या कहते हो ?

यूसुफ (गदगद स्वर से) भइया, आपने मेरे मुह की बात छीन ली ! मैं कहता हूँ आज हम गाँवो ही म क्या कुछ कम काम करना है ? गाँवो की सफाई का इन्तजाम है। जनाने मर्दाने अस्पताल खुलवाने हैं, बच्चो की शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध है। खेतो की पैदावार बढानी है, गाँवो के उत्सवो और त्योहारो को सँवारना है। जनता के नाच-गानो और भूले हुए कला-कौशल को जगाना है। और भी बीसियो काम हैं। मैं कहता हूँ, क्या यहाँ की इन्सानियत अशिक्षा के अन्धकार

मे और गरीबी के दलदल मे हमेशा यो ही घिनौने कीडो की तरह रेंगती रहेगी ?

शिबू तब ठीक है ! प्रभा के हृदय को मैं जानता हूँ । यही आज के युगपुरुष की इच्छा मालूम देती है ! (वृद्ध तीन बार ठक ठक-ठक लाठी से आवाज करता है) आज जो युगपुरुष मनुष्य के भीतर से कदम बढ़ा रहा है, वह समुद्र मे तरते हुए बरफ के उस भारी चट्टान की तरह है जिसका सबसे बडा भाग अभी हमारी चेतना की गहराई की तहो के नीचे तैर रहा है । हम जो कुछ दख रहे हैं यह उसका सबसे छोटा ऊपरी हिस्सा भर है । आगे की पीढियाँ उस युगपुरुष की विराट महानता को अधिक पहचान सकेंगी । उनकी आँखो के सामने नवीन मानवता के प्रकाश से जगमगाता हुआ उसका ज्योतिमय स्वरूप धीरे धीरे नाचने लगेगा । तब आज के धम, नीति, सत्य, मिथ्या के वाद विवादो मे खोये हुए रोटी के टुकडे के लिए मोहताज, हृदय और मन की भूख से घायल, इस ठिगने, बौने, बिना रीढ के पुतले के बदले हम धरती पर आनेवाले, चौडे सीने क, सस्कृत और अहिंसक मनुष्य को चलता-फिरता देखेंगे जिसके भाल पर मनुष्यमात्र का गौरव झलकता होगा जिसका धम मानव-प्रेम और जीवन सु दरता का आन द होगा ।

[युगपुरुष लाठी हाथ मे लेकर उठने को तैयार होता है]

प्रभा (ताली बजाकर) अहा, भइया, तब कितना अच्छा होगा ! वह गावो और शहरो के बीच की एक नयी ही दुनिया होगी जहाँ सादगी और सच्चाई के साथ शिक्षा, सफाई और सु दरता भी मिलकर दूर तक फैली हुई खेतो की हरियाली पर जाडो की धूप की तरह हँसती हुई आज की जि दगी का चेहरा ही बदल देगी !

शिबू अम्मा, मैं और यूसुफ तो हमेशा से सग भाइयो की तरह रहे ही हैं, आज स वह तुम्हारा भी सगा बेटा हो गया ।

लक्ष्मी बेटा, मैंने तो हमेशा ही तुम दोनो को सगे भाइयो की तरह और यूसुफ को अपनी कोख के बेटे की तरह माना है । (आँखें पोंछती हुई) मैं भगवान की इस दया को कसे भूल सकती हूँ जिसन मेरे छोटे-से आँगन को धरती के बराबर बना दिया ! (प्रभा से) प्रभा ! बेटी !

[लक्ष्मी के इधर उधर शिबू और यूसुफ खडे हैं बीच म लक्ष्मी प्रभा को गोदी से चिपकाकर जोर से सिसकने लगती है । परदा एक बार मिलकर फिर फटता है । मच के दोनो ओर से दो स्वयसवक और स्वयसेविकाएँ दो बार 'महात्मा गाधी की जय' कहत हुए प्रवेश करते हैं]

स्वयसेवक सेविकाएँ शिबू भाई, आज स्वतन्त्रता दिवस है। चलिए, अब उत्सव का समय हो गया।

शिबू आओ भाई, पहिले हम अपने ही घर मे आज अपनी स्वतन्त्रता मनाएँ।

[नेपथ्य से बाँसुरी की ध्वनि आती है। एक ओर लक्ष्मी, प्रभा, दो स्वयसेविकाएँ कमर म हाथ डाले, दूसरी ओर शिबू, यूसुफ और दो स्वयसेवक कधो पर हाथ डाले, आगे पीछे कदम रखते हुए गाते हैं –]

लहलहे धान के खेत सजन लहरावें,
रुपहली सुनहली बाल नयन ललचावें।
फूलो की रँग-रँग रँगी चूनरी भाये
अब जन धरणी जन धरनी बन मुसकाये!
आओ युग-युग के वर कुभाव मिटायें,
सब मिल स्वतन्त्रता दिवस मनायें, गायें।

[शिबू, यूसुफ और स्वयसेवक गाते गाते पीछे हटकर वृद्ध को सहारा देकर उठाते हैं। दोनो गिरोह गाते हुए उसे मच के मध्य तक पहुँचाकर दोनो ओर अदश्य हो जाते हैं, वृद्ध मच के मध्य मे अकेला खडा हाथ जोडकर दशको को प्रणाम करता है। परदा गिरता है।]

छाया

पात्र-परिचय

सुनीता	मध्यवर्ग की एक युवती
सतीश	उसका स्नेही सखा
विनय	सुनीता का छोटा भाई
सुनीतिकुमार	सुनीता के पिता

स्थान सुनीतिकुमार के घर का सामने का एक भाग ।
निर्देश [यवनिका उठती है। मच के एक चौथाई हिस्से मे सुनीति कुमार के घर का बरामदा और तीन चौथाई हिस्से मे उनकी बैठक के कमरे का दृश्य दिखायी देता है। मच के अतिम छोर पर बरामदे मे सीमेंट के दो खम्मे, सामने की दीवार मे बैठक मे प्रवेश करने के दो दरवाजे जिनमे परदे पडे हैं। दायी ओर की दीवार म भी दो दरवाजे हैं। आगे का दरवाजा विनय के कमरे का और पीछे का सुनीता के कमरे का है। पीछे की दीवार पर एक सादा परदा पडा हुआ है जिसमे मच का एक तिहाई हिस्सा छिपा रहता है, जो छायाभिनय के काम मे लाया जा सकता है। परदे पर युगनारी की एक निश्चल, धुधली-सी बृहदाकार छाया झूल रही है।

नेपथ्य से जल्दी जल्दी सीढियो पर चढने की आवाज आती है और सतीश मच की बायी ओर के बरामदे मे प्रवेश करता है, उसी समय बैठक के दूसरे दरवाजे से सुनीतिकुमार भी बाहर निकलते हैं। सतीश लम्बे छरहरे बदन पर सफेद खादी का कुर्ता पायजामा पहने तथा रिमलस ऐनक लगाये हुए है, सुनीतिकुमार जो केवल जाँघिया और कमीज पहने हैं, वयस प्राप्त होने पर भी स्वस्थ तथा रोबीले लगते हैं। वह सतीश पर एक तीक्ष्ण दृष्टि डालकर तेजी से बाहर की ओर जाते है। सतीश का शरीर उन्हे देखकर अपने आप तन जाता है, उसके हाथ उन्हे नमस्कार करने को हिलकर रह जाते हैं सुनीतिकुमार तीन चार कदम आगे बढकर सतीश की ओर घूमकर देखते हैं। अभ्यासवश ही वह उन्हे नमस्कार करता है। सुनीतिकुमार जल्दी से लौटकर सतीश से हाथ मिलाते और उसकी आँखो मे स्नेह प्रसन्न दृष्टि डालकर मुस्कराते हैं। सतीश उनकी मुस्कराहट से कुछ झिझकता हुआ नजर आता है। सुनीतिकुमार आवाज देते हैं 'सुनीता, अरी सुनीता, तुम्हारे सतीश भइया आये हैं!' वह सतीश का हाथ पकडे हुए उसी तरह मुस्कराकर कहते हैं, 'अन्दर जाओ, सुनीता अन्दर ही है।' दोनो क्षण-भर हाथ पकडे खडे रहते हैं, सुनीतिकुमार के मुख का भाव धीरे धीरे कडा पडने लगता है, और जसे उन्हे सतीश के मन का धक्का लगा हो, वह तुरन्त उसका हाथ छोडकर—'मैं जरा सिविल लाइस हो आऊ', कहते हुए, बिना उसकी ओर देखे जल्दी से सीढियाँ उतरकर चले जाते हैं। सतीश अन्यमनस्क भाव से परदा

हटाकर वठक के अन्दर प्रवेश करता है। उसी समय विनय भी हाथ म 'इलस्ट्रेटेड वीक्ली' लिये अपने कमरे से निकलकर सतीश का स्वागत करते हुए प्रसन्नतापूवक कहता ह 'आइए, आइए।' सतीश कमरे मे इधर-उधर दष्टि दौडाता है, जैसे एक ही महीन मे यह कमरा उसके लिए अपरिचित-सा हो गया हो। विनय उसी तरह सहज भाव से कहता है, 'वठिए, सुनीता अभी आती ह।' वह कुर्सी से आधा बुना हुआ 'पुलओवर' उठाता है। सतीश खीझ और विरक्ति स से भरा हुआ एक ऊँची पीठ की कुर्सी पर बठ जाता है और कुर्ते की जेव से रूमाल निकालकर अपना दायाँ हाथ पोछता है, जैसे उस पर सुनीतिकुमार के मन की छाप पड गयी हो।]

विनय (उसकी ओर देखकर स्वभावश मुस्कराता हुआ) अच्छा, आपने भी अब कुर्ता पायजामा अपना लिया है? (वह हल्की नीली सज की पतलून और उससे मिलते जुलते रग की शर्ट पहने हुए है।)

सतीश (अपने कपडो की ओर देखता हुआ धीरे धीरे सकोच तथा हिचकिचाहट से बाहर निकलकर) हाँ, मैं ही बाहर से प्रभाव से कसे बच सकता हूँ। (परिहासपूवक) हमारा देश-प्रेम हमसे जो कुछ न कराये, वह कम है। (पायजामे के पायचो और चप्पलो को देखता हुआ गम्भीरतापूवक दोनों हाथ फैलाकर कहता है) अपने चारो ओर तुम जो कुछ देख रहे हो यही हमारा मन है। ये गन्दी गलियाँ मधुमक्खी के छत्ते की तरह सटे हुए शहर के छोटे-बडे बेसिल सिले मकान हमारे देश का तरह-तरह का बेढगा पहनावा रागद्वेष से भरे जीवन से ऊबे हुए लोगो के छोटे-मोटे घिनौने काम यही सब हमारे सदियो से असगठित देश का बिखरा हुआ मन है। सब कुछ बेतरतीब। सन्तुलन और सामजस्य से हीन। इस सबके ढेर-ढेर प्रभाव से बचना क्या आसान है?

विनय (पास की कुर्सी पर बठा, 'इलस्ट्रेटेड वीकली' के पन्ने उलटता हुआ सशकित दृष्टि से सतीश की ओर देखकर) हाँऽऽ, —लेकिन आप सोचते हैं, कुर्ता पायजामा हमारा राष्ट्रीय पहनावा वन सकता है?

सतीश (कुर्सी की पीठ से सटकर दोनों हाथो से कुर्सी की बाँहें पकडता हुआ) मैं यह नही जानता मैं केवल प्रभाव की, सामाजिक प्रभाव की वात कह रहा हूँ। आजकल कुर्ते पायजामे का ही चलन चल पडा है। वैसे हिन्दोस्तान जमे गरम देश के लिए

सुनीता (जो अपने कमरे मे शृगार मेज के सामने जल्दी-जल्दी बाल बना रही है) भारत कहिए, भारत यह हिन्दोस्तान आप के मुह से अच्छा नही लगता। (उसकी हँसने की आवाज सुनायी देती है।)

सतीश (हँसता हुआ) भारत ही सही! भारत जैसे हमारे उष्ण प्रधान देश के लिए हैट और जाघिया के तरह की कोई पोशाक अधिक उपयोगी होती। लेकिन हमारी जनता के पहनाव से वह आज मेल नहीं खाती और हम जनता के लिए बडे पैमाने मे हैट कमीज या जाघिया नही तैयार कर सकते।

विनय (एकाएक हँसता हुआ) और शायद कुर्ते-पायजामे कर सकते हैं?

सुनीता (मन ही मन वाग्युद्ध की आशंका से घबडाकर) बेचारे! जनता की धजा के पीछे हाथ धोकर पडे हैं! विनय का सीधा-सादा मतलब यह है कि आपको सूट अच्छी लगती है आप कुर्ता पायजामा न पहनें।

विनय (अपनी बात के स्पष्टीकरण से खीझकर) तुम वहीं से बिना देखे ही कैसे कह सकती हो?

सतीश (तर्क को समाप्त करने के अभिप्राय से जोर से हँसता हुआ) नहीं नहीं! मेरा ऐसा कोई भी अभिप्राय नहीं। (दोनों हाथ पीछे की ओर घुमाकर कुर्सी को पीठ पकडता हुआ) मैं तो शुरू से तुमसे केवल प्रभाव की बात कह रहा हूँ। आज कल कुर्ते-पायजामेवाला के साथ मेरा अधिक हेलमेल है कल तुम्हारी तरह के सूट-बूट के पुजारियो के साथ रहना पडे तो शायद फिर से सूट पहनने लगूं! यह फिर प्रभाव की बात हुई!

विनय (सिर हिलाकर) हां (क्षण भर रुककर) लेकिन क्या यह आपकी कमजोरी नहीं है कि आप इतनी जल्दी प्रभावित हो जाते हैं! (वह अपने कहने के ढग से स्वयं सशंकित होकर सतीश की ओर देखता है।)

सतीश (गम्भीर होकर) मैं अपनी बात नहीं कहता। मैं कहता हूँ समाज में निन्यानबे प्रतिशत आदमियो के लिए क्या बात सही है—इसे चाहे तुम उनकी दुर्बलता कहो या शक्ति पर सामूहिक प्रभाव भी एक प्रबल सत्य है!

विनय (तर्क के स्वर मे) मैं केवल आपकी, व्यक्तिगत बात पूछ रहा हूँ।

[इसी समय सुनीता अपने कमरे के दरवाजे के पास खडी परदे से मुख दिखलाकर कहती है "अभी आती हूँ!" और मुस्कराकर अन्दर चली जाती है। सतीश उसकी ओर देखता है। उसके मुख पर सुनीता की प्रसन्नता बरबस झलक उठती है। वह सुस्थ होकर कुछ आगे की ओर झुककर कहता है।]

सतीश (सुनीता को देखने के बाद अपने जीवन में उसके प्रभाव का अनुभव कर) और हां, कुछ व्यक्तिगत प्रभाव भी बडे गहरे और चिरस्थायी होते हैं।

विनय (सतीश से समझौता करने की चेष्टा मे अज्ञात व्यंग्यपूर्वक)

जैसे गाधीजी का प्रभाव !

[सुनीता जल्दी से आकर मुस्कराती हुई सतीश के पास खडी हो जाती है। सतीश उठने का प्रयत्न कर उसे नमस्कार करता है। सुनीता हँसती हुई हाथ जोडकर नमस्कार का प्रत्युत्तर देती है। विनय उठकर बिजली का बटन दबाता है, कमरा प्रकाश से भर जाता है। सुनीता काला ब्लाउज और नारगी रग की साडी पहने है जो उसके रक्तिम गौर वण पर बहुत फबती है। वह अत्यन्त प्रसन्न जान पडती है।]

सुनीता (खडे खडे) आप आज बहुत दिनो बाद आये सतीश भइया मैं सोच रही थी, आप कही नाराज न हो गये हो।

सतीश (स्निग्ध हास्यपूर्वक) क्यो ?

[परदे पर पडी स्त्री की छाया अधिक स्पष्ट होकर सौदय भगिमा करती है।]

सुनीता (धीरे धीरे गम्भीर होती हुई, आँखें नीचे कर) क्यो नही ? आप इतने रोज गायब रहे ! मुझे आप पर मन ही-मन बडा गुस्सा आ रहा था।

सतीश (आश्चयपूर्वक) अच्छा ? (फिर मन ही-मन सँभलकर किंचित् व्यग्यपूर्वक) तुम्हारे पास कसे आया जा सकता है ? (वह दोनों हथेलियो को कुर्सी की बाँहों से रगडता है।)

[सुनीता सतीश की बातो की ध्वनि से मन ही मन सतक हो जाती है। वह विनय के पास जाकर सतीश के सामने की कुर्सी पर बैठ जाती है। उसकी आँखो से कुछ दप और जागरूकता झलकने लगती है। परदे पर स्त्री की छाया उसके मन के चढाव-उतार दिखाती हुई धीरे-धीरे धुधली हो जाती है। सुनीता जल्दी से विनय की ओर दृष्टि फेंकती है, वह जैसे सतीश की बात का ठीक-ठीक अथ न समझकर कहता है—]

विनय (बायें हाथ से सिर के बालो को ऐंठता हुआ) सुनीता रोज आपका इतजार करती थी कि आपके साथ पिक्चर देखने चलेंगे।

सतीश (दुखी होकर) ओह ! सुनीता, मैं बिलकुल ही भूल गया था। मुझे इस बीच अपने सघ के सम्बन्ध मे काफी दौड धूप करनी पडी, कई लोगो से मिलना था। यह शहर तो (और कुछ न सूझने पर) शैतान की आँत की तरह इस तरह दूर-दूर बसा हुआ है कि दिन भर मे दो-एक जगह से ज्यादा जाया ही नही जा सकता। (कुर्सी की बाँहो पर कुहनी टेककर हाथ के इशारे से अपनी बात स्पष्ट करता है।)

सतीश और उफ—(सुनीता की ओर देखकर) दिन को अभी से कितनी सख्त गरमी पडने लगी है ताँगे पर बैठे बैठे, धक्के खाते-खाते, इसान यो ही थक जाता है। आज भी दिन भर चक्कर काटता, (सुनीता के मुख पर कठोर व्यग्य तथा उप

हास का भाव देखकर) धूल फाँकता हुआ अभी लौट रहा हूँ।

[सुनीता सिर हिलाकर समर्थन करती है। वह सतीश की कैफियत देने की आदत पर मन ही मन हँस रही है एवं उसकी आँखों से हँसी टपकना ही चाहती है वह मन का भाव छिपाने के लिए हँसती हुई कहती है—]

सुनीता बेचारे।

विनय चाय पीजिएगा?

सुनीता क्या बुरा है। (अन्यमनस्क भाव से फर्श पर पड़े हुए तस्वीरों के एलबम को उठाने के लिए झुकता है) वही तो एकमात्र भारतीय पेय है।

विनय (हँसता हुआ उठता है और सिर हिलाकर कहता है) हाँ

[विनय अन्दर जाकर नौकर को चाय बनाने का आदेश देता है। पीछे के बरामदे से उसकी आवाज सुनायी देती है। सतीश एलबम को गोद में लेकर उसके पन्नों से खेलता है। सुनीता तटस्थ दृष्टि से एक ओर देख रही है। सहसा उसकी आँखों से शून्यता का भाव विलीन हो जाता है और प्रच्छन्न स्नेह झलक उठता है। जैसे उसके हृदय ने अनुभव किया हो कि सतीश उसकी प्रसन्नता और स्नेह प्राप्त करने के लिए ही लम्बी चौड़ी कैफियत दिया करता है। वह स्नेह स्निग्ध, किंचित् दर्प भरी दृष्टि से सतीश की ओर देखती है, फिर अंचल का कोना पकड़कर उसके किनारों पर हाथ फेरती है। दोनों स्नेहद्रवित दृष्टि से एक दूसरे की ओर देखकर निरर्थक मुस्कराते हैं। परदे पर पड़ी हुई छाया अधिक स्पष्ट होकर ललित चेष्टाएँ करती है। सतीश सन्तोषपूर्वक अपनी आँखें सुनीता के मुख पर से हटा लेता है। और गोद पर रखे हुए एलबम को बीच से खोलकर देखता है।]

सतीश (आश्चर्य से) आह, यह तुम्हारा एलबम है। (फिर से उसे बन्द कर शुरू से देखता है।)

सुनीता (उसी स्वर में) आपने क्या आज तक नहीं देखा था? (वह कुर्सी से सटकर सतीश की बायीं ओर खड़ी हो जाती है।)

सतीश (नकारात्मक सिर हिलाकर ध्यानपूर्वक देखता हुआ) यह शायद तुम्हारे बिल्कुल छुटपन का चित्र है! (सुनीता की आकृति से चित्र को मिलाता है।)

सुनीता (सिर हिलाकर हँसती हुई) हाँ।

सतीश (अर्द्धदृष्टि से उसकी ओर देखकर बनावटी स्वर में) दूज की कला अब पूनो का चाँद बनकर स्नेह मधुर चाँदनी बरसाने लगी है।

सुनीता (दबे हुए क्षुब्ध स्वर में) और उसमें कलंक की छाया पड़ गयी है।

सतीश (बिना उसकी ओर देखे) कहीं नहीं। (साँस छोड़कर) यह शायद तुम्हारी गुड़िया है। (चित्र के ऊपर उँगली

रखता है)

[सुनीता चुपचाप खड़ी रहती है। सतीश उसकी ओर देखकर बात बदलने के लिए मुस्कराकर कहता है—]

सतीश — मुझे तो तुम्हारी बचपन की तस्वीर और इस गुड़िया में अधिक अंतर नहीं दिखायी देता। (सुनीता उसकी ओर देखकर आधे मन से मुस्कराती है। सतीश धीरे धीरे पन्ने उलटता है) तुम्हारे पापा मम्मी हूँ पापा और मम्मी तुम्हारी मम्मी मुझ पर कितना स्नेह रखती थी! (सुनीता एक साँस छोड़ती है। विनय पीछे की ओर से एलबम पर दृष्टि डालता है और मुस्कराता हुआ अपने कमरे में चला जाता है। पन्ना उलटकर) यह कौन है? मैंने इन्हें नहीं देखा।

सुनीता — यह मेरी मौसी हैं। शायद आपने इन्हें नहीं देखा हो।

सतीश — (पन्ना उलटकर) यह शायद तुम्हारी तब की तस्वीर है जब मैंने तुम्हें पहली बार देखा था। तब तुम चौदह साल की रही होगी। (सुनीता सकारात्मक सिर हिलाकर स्निग्ध दृष्टि से उसकी ओर देखती है।)

सतीश — (उसके मुख पर दृष्टि गड़ाकर) तब तुम नेवी ब्ल्यू रंग के सज का फ्राक पहने थीं, शायद यह वही फ्राक है। (हँसती हुई उसकी गोद में सिर झुकाकर चित्र को देखती है।)

सुनीता — (दर्प भरी दृष्टि से) अच्छा, आपको अभी तक याद है? (हँसती है) बेचारे!

सतीश — क्यों नहीं? (उसकी नकल उतारता हुआ) बेचारे! तुम्हारे रेशमी रिबन से बँधे घुँघराले बाल तब बहुत अच्छे लगते थे।

सुनीता — और? (हँसती है)

सतीश — और (परदे पर एक युवती की छाया युवक की बाँहों में दिखायी देती है। पिछली स्मृति से द्रवीभूत होकर सुनीता अपनी स्नेहस्निग्ध दृष्टि सतीश की आँखों में डालती है।)

सतीश — (गम्भीर होकर) सब कुछ जैसे आज ही की घटना हो अभी की जैसे मैं आज ही तुमसे पहली बार मिला हूँ।

[दोनों निष्पन्द दृष्टि से देखकर एक दूसरे के मन का भाव जानना चाहते हैं। परदे पर युवती की छाया छोटा बड़ा आकार धारण कर निकट और दूर आती जाती है। सुनीता धीरे धीरे प्रकृतिस्थ हो जाती है।]

सतीश — (विरक्ति को दबाकर) ठीक तो है जैसे मैं आज पहली ही बार तुमसे मिला हूँ। (शून्य में हाथ हिलाता हुआ) इसे चाहे चिर परिचय कहो या अपरिचय! पिछली पहचान कहो या जैसे हम एक-दूसरे को आज नहीं पहचानते? (सुनीता का शरीर तन जाता है, वह एक ओर मुँह फिरा

लेती है) आज इस एलबम के चित्रों से पिछला जीवन जैसे
अज्ञात, असफल अतीत की तरह हमारी ओर ताक रहा
है। तुम असफल के बदले उसे निबल भी कह सकती हो।
(वह अनमने भाव से पन्ने उलटता हुआ एकाएक
रुककर कहता है) अहा, यह तुम्हारी और प्रमोद की शादी
का चित्र है। (सुनीता का चेहरा कुछ कठोर पड़ जाता
है। वह जल्दी से मुह फिरा लेती है।)
(उसी तरह चित्र को देखता हुआ) यह मेरे पास भी है।
तीश (विरक्ति से) होगा।
नीता इस शादी के घूंघट ने तुम्हे बिलकुल ही छिपा लिया है।
तीश (सुनीता बिजली की तरह घूमकर उसे देखती है। सतीश
उसकी तीक्ष्ण दृष्टि से चकित होकर कहता है) तुम्हे याद
है प्रमोद स मैंने ही तुम्हे पहले मिलाया था। उसे टेनिस
खेलने का बडा शौक था गेंद की तरह वह जीवन स भी
खेला है। (एकाएक) और तुम्हे भी तो उसने खेल ही
खेल म जीत लिया।

[सुनीता का क्रोध विषाद म बदलकर धीरे धीरे गायब
हो जाता है। उसका शरीर कोमल पडने लगता है, जसे उसका
हृदय द्रवीभूत हो रहा हो। वह जैसे अपने आप वह उठती
है—]

सुनीता अब आप जो कुछ भी समझें।

[वह कुर्सी से सटकर उसके पास बठ जाती है, जसे वह
उसे किसी प्रकार अप्रसन्न नही करना चाहती हो। दोनो
कुछ देर तक चुपचाप बैठे रहते हैं। सतीश एलबम के पन्ने
उलट-पुलट रहा है। परदे पर स्त्री की छाया शोकमुद्रा म
बैठी धुधली पड जाती है।]

सुनीता (चित्र देखकर) यह मेरा लडका है।
सतीश लडके के रूप मे तुम्हारा ही बचपन साकार हो उठा है!
(सुनीता मुस्कराने का प्रयत्न करती है। बार-बार खुले
हुए शब्दों मे अपनी प्रशसा सुनकर उसका उत्साह मन्द पड़
जाता है।) तुमने शायद इसे कॉनवेंट भेज दिया है।
सुनीता और क्या करती, घर म खराब हो रहा था।
सतीश अच्छा तो है, कुछ साल वहीं रहने दो हमारे यहाँ बाल
शिक्षा के अच्छे केन्द्र हैं भी तो नही।—कॉनवेंट म अधिक
रहन स लडको पर अलबत्ता विदेशी संस्कृति का भूत सवार
हो जाता है।
सुनीता यही तो और अपने यहाँ की बातो से वे घिन करने लगते
हैं। खासकर लडकियाँ तो, भइया बिलकुल ही बिगड़ जाती
हैं। हमारे कछुए की चाल स आगे बढ़ते हुए समाज तथा
मध्यवर्ग के गृहस्थो के लिए किसी काम की नही रह
जाती।

सतीश (पन्ना उलटकर) विनय अच्छा चित्र आया है ! (समाज से विरक्ति प्रकट करते हुए) हाँ लेकिन गृहस्थ तथा समाज ही क्या, हमारी सभी संस्थाओं का यही हाल है ! आज तो सभी—समाज, संस्कृतियों और मानव सभ्यता—को नये रूप में ढलना है ! तब तक चलने दो ! (पन्ना उलटकर) यह शायद तुम्हारे छोटे भाई अजय का छुटपन का चित्र है ! अब बिलकुल ही बदल गया है !

सुनीता (चित्र पर झुककर हँसती हुई) कैसा चुपचाप बैठा है, गोबर गनेश सा ! विनय से किसी बात में झगड़ा हो गया था, इसी से मुह फुलाये हुए है !

सतीश (पन्ना उलटकर) यह तुम्हारा कुत्ता 'राजा' ! तब तुम्हारे साथ देखा था मर गया शायद !

सुनीता (सिर तिरछा कर 'हाँ' कहती हुई) बेचारा

सतीश एक बेचारा तुम्हारा कुत्ता और दूसरा मैं ! (दोनों हँसते हैं। सतीश दूसरे पन्ने को गौर से देखता हुआ) और यह किसका चित्र है ?

सुनीता (चित्र को देखकर जल्दी से उसके ऊपर हाथ रखकर जोर से हँसती हुई) उसे मत देखिए—उसे मत देखिए ! (सतीश कुछ तो उत्सुकतावश और कुछ उसे छेड़ने के इरादे से चित्र को देखने का प्रयत्न करता है। सुनीता दोनों हाथों से उसे छिपा लेती है और कहती है) नहीं, नहीं !

सतीश आखिर इस चित्र में ऐसी क्या खास बात है ?

सुनीता सतीश भइया, आपके हाथ जोड़ती हूँ, आप उसे मत देखिए, उसे मत देखिए !

सतीश (सुनीता के हाथ हटाकर एक झलक देखकर परिहासपूर्वक) ओह, जैसे किसी महाशोक की छाया हो ! प्रेत के समान एकदम अपरूप—अमानुषी !

[सुनीता चित्र के ऊपर अपना मुह रखकर उसे एकदम छिपा लेती है और जैसे हिस्टीरिया में हँसने लगती है।]

सुनीता (सतीश के हाथों पर एलबम के ऊपर सिर रखे) ओह ! न जाने उस समय मैं किस मूड में थी ! विनय ने न जाने कब तस्वीर उतार ली ! वह भी बिलकुल ही 'आउट आफ फोकस।' और उसे एलबम में भी लगा लिया मैं

सतीश (एलबम को मजबूती से पकड़े हुए) अच्छा, तो यह तुम्हारा चित्र है ? तब तो मैं इसे जरूर देखूँगा।

सुनीता (उसी तरह) नहीं—नहीं—(जोर से हँसती है) यह मेरी शादी के रोज का चित्र है सतीश भइया मैं इसे चुपचाप एलबम से निकालकर फाड़कर फेंक देना चाहती थी लेकिन भूल गयी !

सतीश आखिर खराब चित्र आया है तो क्या हुआ ?—क्या चाँद पर

बादलो के धब्बे नही छा जाते ?

सुनीता (अनसुनी कर) आप बहुत बुरे है ! (उसी तरह आवेश से) नही, कभी नहीं— आप उसे नही देखेंगे !

[वह उसी तरह जैसे हिस्टीरिया मे हँसती है। सुनीता की परेशानी देखकर सतीश की उत्सुकता और भी बढ जाती है। सुनीता मानो क्षण-भर के लिए अपने को भूलकर अपना सिर सतीश की गोद मे एलबम के ऊपर चिपकाये अनिमेष दृष्टि से उसकी ओर देखती है। उसके ओठ काँप रहे हैं। सतीश सुनीता के आवेश से घबडाकर कुर्सी पर से उठना चाहता है, किन्तु सुनीता उसे दबाये हुए है]

सतीश अच्छी बात है लो, नही देखूँगा बस !

[परदे पर अस्तव्यस्त कुन्तला, एक युवती की छाया दिखायी देती है। वह दोनो हाथो से अपने बाल खीच रही है। उसका बदन ऐंठ रहा है। वह छिन्न लता की तरह गिर-कर जमीन पर लेट जाती है। विनय अपने कमरे से बाहर निकलता है। वह सतीश और सुनीता की ओर देखकर नजर नीची कर लेता है और कुर्सी पर बैठकर हिचकिचाता हुआ पूछता है—]

विनय क्या बात है ?

[सुनीता उठकर खडी होती है। सतीश भी कुर्सी के पीछे खडा हो जाता है और ऊँचे उठे हुए हाथ मे एलबम को लेकर चित्र को देखता हुआ सुनीता को चिढ़ाने के अभिप्राय से परिहासपूर्वक कहता है—]

सतीश (विनय से) यह सुनीता का शादी के रोज का चित्र है ! बिलकुल आउट ऑफ़ फोकस ! मूड का पता नही ! बाल बिखरे हुए ! —साडी म जगह-जगह सलवटें पडी हैं ! सिर का पल्ला पछाड खाकर जमीन पर लोट रहा है ! आँखें जैसे लगातार रोने से सूजी हुई हैं ! (सुनीता उसके हाथ से एलबम छीनना चाहती है। वह एडियो के बल उठकर हाथ और भी ऊँचा किये कुर्सी के चारों ओर घूमता हुआ कहता जाता है) ओठ, नाक और गाल, सब फूलकर जैसे एक दूसरे से मिल गये हो ! (विनय सतीश की व्याख्या के ढग पर हँसता है) जैसे जीवन का कोई भयानक आवेश करुणा और व्यथा की निमम दारुण छाया मन के गहरे अन्धकार के बाहर निकलकर साकार हो उठी हो !

[विनय ठहाका मारकर हँसता है। सुनीता दोना हाथो से अपना मुह छिपा लेती है। प्रकाश मन्द पड जाता है। परदे पर पडी हुई छाया बार-बार उठने का प्रयत्न कर जस वह अपने स लड रही हो, आँधी म लता की तरह

थर थर काँपकर जमीन पर ढेर हो जाती है। प्रकाश यथावत् । परदे की एक धुधली छाया रह जाती है। सुनीता मुह पर से हाथ हटा लेती है। उसके मुह का रग स्याह पड गया है। ओठ फडक रहे हैं। वह अपन मनोवेग को दबाने की कोशिश कर रही है। उसके मुँह स एकाएक एक दूरस्थ, पराजित घृणा, क्षोभ तथा विरक्ति से भरी हुई चीख निकल पडती है।]

सुनीता (स्वप्नग्रस्त की तरह) ओह, छि छि छि (एलबम की ओर उगली उठाकर) वह भयानक छाया मैं ही हूँ। सतीश, जीवन की वह भयानक छाया मैं ही हूँ, जो जीवन के रूप म न जाने कब से दारुण मृत्यु तथा आत्म हनन का भार ढो रही है।

[वह अपना आँचल पकडकर खीचती है, जो करीब करीब फटने लगता है। उसकी भर्राई हुई आवाज और चीख को सुनकर सतीश के हाथ से एलबम छूटकर कुर्सी के ऊपर गिर पडता है। वह सुनीता की दशा देखकर क्षण भर के लिए स्तब्ध रह जाता है और दोना हाथो से कुर्सी की पीठ पकडकर सिर झुका लेता है। तुरत ही वह अपने को सँभालकर सिर उठाता है और शान्त निर्विकार दृष्टि से सुनीता की ओर देखकर दढ गम्भीर शासन के स्वर मे कहता है—]

सतीश कभी नही !

[सुनीता आँचल को छोडकर बाहु लटकाकर पत्थर की मूर्ति की तरह खडी रहती है। सतीश दोनो हाथ ठुड्डी के नीचे मोडकर चुपचाप देखता रह जाता है।]

सतीश (स्वप्नाविष्ट की तरह शान्त स्थिर स्वर म शून्य को अपनी दृष्टि से भेदता हुआ कहता है और विनय उसकी ओर आँखें फाडकर देखता है) तुमने यह बात पहले मुझसे कभी नही कही, सुनीता। लेकिन मैं जानता हूँ तुम्हारा मुह बन्द था सदियो से बन्द। तुम हमारे समाज मे नारी के मूक दयनीय जीवन की एक करुण उदाहरण भर हो। जिसके हृदय की प्रत्येक धडकन मे युग-युग से नारी की नि शब्द व्यथा छटपटाती रही है। कुछ साल पहले मैं शायद तुमसे विद्रोह करन को कहता किन्तु अब मैं उसे ठीक नही समझता। नारी समाज को दूसरा रास्ता खोजने की आवश्यकता नही है केवल हमारी स्त्रियाँ और विशेपकर नवयुवतियो को घर स बाहर, इस बडे सामाजिक जीवन म भी अपना स्थान बना लेना है। उनके बिना हमारा समाज एकदम अधूरा है। उन्हे पुरुषो के साथ नवीन लोक जीवन तथा मानव का निर्माण करने मे हाथ बँटाना है। केवल इसी प्रकार हमारा गृहस्थ-जीवन परिपूर्ण तथा आनन्द

मगलमय बन सकता है। हम दाम्पत्य प्रेम तथा घरा मे विभक्त पारिवारिक जीवन को जरूरत से ज्यादा महत्त्व देते है। और अपने असली बडे परिवार को और उस सामाजिक जीवन को भूल गये हैं जिसकी पसलिया के भीतर हमारे गहस्थ जीवन का हृदय धडकता है, जहाँ से उसकी नाडियो म रक्तप्राण का सचार होता है। मैं तुम्हे प्यार करता हूँ सुनीता, और चाहता हूँ कि तुम लोक निर्माण के इस महान काय का अपना सको। - हमारे देश म शिक्षित अशिक्षित स्त्रियो की दो पीढियो के बीच एक बहुत बडी खाई है। तुम्हारी पीढी का यही काम है कि तुम लोग नयी पीढी के लिए रास्ता बनाओ। अपने बाल बच्चो के लिए सुदर, स्वस्थ सामाजिक जीवन का निर्माण करो।

(सुनीता चित्रस्थ सी होकर अपने समस्त अस्तित्व से सतीश की घनगम्भीर वाणी सुनती है। सतीश हाथ की घडी देखकर कहता है)"अच्छा, अभी मुझे एक जगह और जाना है, नमस्कार।"

[सतीश दोनो हाथ जोडकर दढ कदम रखते हुए दरवाजे की ओर बढता है। विनय अभ्यथना के भाव स खिचकर उसके पीछे जाता है। सामने के दरवाजे स सुनीता के पिता आते हुए दिखायी देते है।]

सुनीतिकुमार (मुस्कराते हुए) जा रहे हो? अच्छा। (हाथ के पुलिदे को दिखाकर) सुनीता के लिए ऊन खरीद लाया हूँ। (सतीश हाथ उठाकर नमस्कार करता हुआ प्रस्थान करता है। सुनीता के पिता कमरे मे घुसकर क्षण भर इधर-उधर दृष्टि दौडा कर असतुष्ट स्वर मे कहते हैं) मैं सतीश का अपने घर म आना पसन्द नही करता।

[विनय अवाक होकर अपने पिता की ओर देखता है। उनके चेहरे पर घणा मिश्रित विरक्ति के भाव हैं। सुनीता एकदम गदन उठाकर अपन पिता की ओर मुडती है। परदे पर ह्रास युग के दप बलिष्ठ मनुष्य की कठोर छाया पडती है, जो अपने सीने के ऊपर दोनो बाँहे मोडकर उद्धत भाव स खडा है। सुनीतिकुमार ऊन के पुलिन्दे को कुर्सी पर फेक कर अन्दर चले जाते है। परदे पर लोकनिर्माण म निरत नर-नारियो की, भव्य चित्र शाली म सुसज्जित छाया झूलती है। सुनीता आशा विस्फारित नेत्रा स मानो भविष्य का आवरण उठाकर निर्निमेष दष्टि स देखती हुई स्वप्नाविष्ट की तरह दुहराती है 'मैं तुम्हे प्यार करता हूँ सुनीता, और चाहता हूँ कि तुम लोक निर्माण के इस महान् काय को अपना सको।"]

(यवनिका पतन)

अतिमा

[प्रथम प्रकाशन वर्ष १९५५]

दिवगत भाई देवीदत्त की
स्नेह स्मृति को

विज्ञापन

'अतिमा' का प्रयोग मैंने अतिक्रान्ति अथवा महिमा के अर्थ में किया है, जिसे अंग्रेजी में ट्रासेंडेंस कहते हैं वह मन स्थिति, जो आज के भौतिक मानसिक सास्कृतिक परिवेश को अतिक्रम कर चेतना की नवीन क्षमता से अनुप्राणित हो।

प्रस्तुत सग्रह मे प्रकृति सम्बन्धी कविताओ के अतिरिक्त, अधिकतर, ऐसी ही रचनाएँ सगृहीत हैं, जिनकी प्रेरणा युग जीवन के अनेक स्तरो को स्पर्श करती हुई सृजन चेतना के नवीन रूपको तथा प्रतीको मे मूर्त हुई है।

'अतिमा' मे अप्रैल '५४ से लेकर फरवरी '५५ तक की मेरी ५५ रचनाएँ सचित हैं।

२१ फरवरी '५५ सुमित्रानदन पत

कौन छेडता मुरली स्वर, धर स्वप्न चरण लघु भार,
मंदिर के प्रांगन मे किसकी गूज रही पद चाप ?
या, यह गोपन हृदय प्रान्त या मधुर स्वर्ग का द्वार ?
देवदूत - सा प्रेम, प्रतीक्षा मे कब से चुपचाप।

नव अरुणोदय

तुम कहते, उत्तर बेला यह,
मैं सन्ध्या का दीप जलाऊँ।
तुम कहते, दिन ढलने को अब,
मैं प्राणों का अर्घ्य चढ़ाऊँ।
मेरा पन्थ नहीं, मैं कातर
ज्योति क्षितिज निज खोजू बाहर,
रहा देखता भीतर, अब क्या
तथ्यो का कटु तम लिपटाऊँ।
मैंने कब जाना निशि का मुख?
पृथक् न सुख से ही माना दुख।
अन्धकार की खाल ओढ़ अब
कज्जल मे सन, प्राण तपाऊँ।
कभी न निज हित सोचा क्षण भर
क्यों अभाव, क्यो दैन्य, घृणा ज्वर,
अब क्या तारो के खंडहर मे
नग्न व्यथा की गाथा गाऊँ।
देख दिवाकर को अस्तोमुख
पकज उर होता अन्तमुख,
युग सन्ध्या, तम सिन्धु, ह्रास तट,
स्वग तरी किस तीर लगाऊँ।
मैं प्रभात का रहा दूत नित,
नव प्रकाश सन्देशवाह स्मित,
नव विकास पथ मे मुड मैं अब
क्यो न भोर बन फिर मुसकाऊँ।
जग जीवन मे रे अस्तोदय,
मैं मानस धर्मा, अक्षय वय,
आओ, तम के कूल पार कर
नव अरुणोदय तुम्हे दिखाऊँ।

गीतो का दर्पण

यदि मरणोन्मुख वतमान से ऊब गया हो कटु मन,
उठते हो न निराश लोह पग, रुद्ध श्वास हो जीवन।

रिक्त वालुका यन्त्र,—खिसक हो चुके सुनहले सब क्षण,
तर्कों वादों में बन्दी हो सिसक रहा उर स्पन्दन!

तो मेरे गीतों में देखो नव भविष्य की झाँकी,
निःस्वर शिखरों पर उड़ता गाता सोने का पाँखी!

चीर कुहासों के क्षितिजों को भर उड़ान दिग्भास्वर,
वह प्रभात नभ में फैलाता स्वर्णिम लपटों के पर!

दुविधा के ये क्षितिज,—मौन वे श्रद्धा शुभ्र दिगन्तर,
सत्यों के स्मित शिखर, अमित उल्लास भरे वे अम्बर!

नीलम के रे अन्तरिक्ष विद्रुम प्रसार दिग दीपित,
स्वप्नों के स्वर्गिक दूतों की पद चापों से कम्पित!

प्राणों का पावक पंछी यह, मुक्त चेतना की गति,
प्रीति मधुरिमा सुषमा के स्वर, अन्तर की स्वर संगति!

उज्ज्वल गैरिक पंख, चंचु मणि लोहित, गीत तरंगित,
नील पीठ, मुक्ताभ वक्ष, चल पुच्छ हरित दिगलम्बित!

दृढ़ संयम ही पीठ, शान्ति ही वक्ष, पक्ष मन चेतन,
पुच्छ प्रगति क्रम, सुरुचि चंचु, लुण्ठित छाया भू जीवन!

हीरक चितवन, मनसिज शर-से स्वर्ण पंख निर्मम स्वर,
मर्म तमस को बेध, प्रीति व्रण करते उर में निःस्वर!

दिव्य गरुड़ रे यह, उड़ता सत् रज प्रसार कर अतिक्रम,
पैने पंजों में दबोच नत काल सर्प-सा भू तम!

वह श्रद्धा का रे भविष्य—जो देश काल युग से पर,
स्वप्नों की सतरँग शोभा से रँग लो है निज अन्तर!

मन से प्राणों में, प्राणों से जीवन में कर मूर्तित,
शोभा आकृति में जन भू का स्वर्ग करो नव निर्मित!

उस भविष्य ही की छाया इस वर्तमान के मुख पर,
सदा रेंगता रहा रहस छवि इंगित पर जो खिंचकर!

यह भावी का वर्तमान रे युग प्रभात-सा प्रहसित
कढ़ अतीत के धूमों से जो नव क्षितिजों में विकसित!

यदि भू के प्राणों का जीवन करना हो संयोजित,
तो अन्तरतम में प्रवेश कर करो बाह्य पट विस्तृत!

वर्तमान से छिन्न तुम्हें जो लगता रिक्त भविष्यत—
वह नव मानव का मुख, अंकित काल पटी पर अक्षत!

नहीं भविष्यत रे वह, मानवता की आत्मा विकसित
जड़ भू जीवन में जन मन में करना जिसे प्रतिष्ठित!

यदि यथार्थ की चकाचौंध से मूढ़ दृष्टि अब निष्फल,—
डूबो गीतों में, जिसका चेतना द्रवित अन्तस्तल!

लहराता आनन्द अमृत रे इनमें शाश्वत उज्ज्वल,
ये रेती की चमक न, प्यासा रखता जिसका मृगजल!
यदि ह्रासोन्मुख वर्तमान से ऊब गया हो अब मन,
गीतों के दर्पण में देखो, अपना श्री-नव आनन!

नव जागरण

सुन पड़ता फिर स्वर्ण गुंजरण!
इन्द्रिय कमल पुटों में निद्रित,
मुग्ध, विषय मधु रज में मज्जित,
जाग उठा, लो, नव प्रभात में
मन मधुकर, स्वप्नों से उन्मन!

खुले दिशाओं के ज्योतिर्दल,
भू विकास का अरुणोज्वल पल,
मानव आत्मा से उठता है,
विगत निशाओं का अवगुण्ठन!

रजत प्रसारों में उड़ नूतन
प्राण मुक्त करते आरोहण,
शुभ्र नील में बज उठता अब
अगणित पंखों का कल कूजन!

उतर रही ऊषाएँ निःस्वर
मधु पावक रस की-सी निर्झर,
गाता हृदय शिराओं में बह
स्वर्ग रुधिर भर नव सुख स्पन्दन!

यह अपलक भू शोभा का क्षण
उर में प्रीति मधुरिमा के व्रण,
जीवन के जर्जर पंजर में
दौड़ रहा अमरों का यौवन!

नव मरन्द रस गन्ध उच्छ्वसित
प्राणों के ज्वाला दल प्रहसित,
देवों का मधु संचय करने
उड़ता, ऊपर, मन नव चेतन!

जिज्ञासा

कौन स्रोत ये!
ये किन आकाशों में खोये
किन अवाक शिखरों से झरते?

किस प्रशान्त समतल प्रदेश मे
रजत फेन मुक्ता रव भरते !

ये किन स्वच्छ अतलताओ की
मौन नीलिमाओ मे बहते ?
किस सुख के स्पर्शों से, स्वर्णिम
हिलकोरो मे कँपते रहते !

कौन स्रोत ये !

किरणो के वृन्तो पर खिलते
भावो के सतरँग स्वप्नोत्पल,
मनोलहरियो पर बिम्बित कर
रक्त पीत सित नील ज्योति दल !

नामहीन सौरभ मे मज्जित
हो उठता उच्छवसित दिगचल,
रहस गुजरण मे लय होता
शब्दहीन तन्मय अन्तस्तल !

कौन स्रोत ये !

श्रद्धा औ' विश्वास—रुपहले
राज मरालो के-से जोड़े
तिरते सात्विक उर सरसी मे
शुभ्र सुनहली ग्रीवा मोडे !

शोभा की स्वर्गिक उडान से
भर जाता सहसा अपलक मन,
बजते नव छन्दो के नूपुर
अलिखित गीतो के प्रिय पद बन !

बह जाते सीमाओ के तट
हर्षों के ज्वारो मे अविगत,
लहरा उठता अतल नील से
नाम रूप के ऊपर शाश्वत !

कौन स्रोत ये !

जन्म दिवस
(२० मई १९००)

मा, चौवन निदाघ अब बीते,
जीवन के कलशो-से रीते ?—
चौवन मधु निदाघ अब बीते !

गत युग के ऐश्वय चिह्न से, मधु के अन्तिम
ताम्र हरित कुछ पल्लव, कुछ कलि कोरक स्वर्णिम
जाडे से ठिठुरे, डालो पर बिलमाये थे,
रजत कुहासे पट मे लिपटे अलसाये थे,

धरती पर जब शिशु ने पहिले आँखें खोली।
(आँगन के तरु पर तब क्या गिरि कोयल बोली?)

विजन पहाड़ी प्रांत, हिमालय का था अचल,
स्नेह क्रोड शैशव का, गिरि परियों का प्रिय स्थल
धूपछाँह का स्वप्न नीड,—श्यामल, स्मित कोमल,
वन फूलो का गंध दोल, ऋतु मारुत चचल।

नव प्रभात वेला थी, नव जीवन अरुणोदय।
विगत शती थी भुक्तप्राय, युग संधि का समय।
ओस हरी ही थी, तृण तरु की पलको पर जल,
मात चेतना शिशु को दे प्राणो का सम्बल
अंतर्हित जब हुई,—भाग्य छल कहिए विधि बल।।
जन्म-मरण आये ये सँग सँग बन हमजोली,
मृत्यु अक मे जीवन ने जब आँखें खोली।

आ, समदृष्टि प्रकृति। विपण्ण आँगन मे स्वर्गिक स्मिति भर
फूल उठे ये झाड़, ललछौंहे मुकुलो मे सुदर।
सेबो की कलियाँ प्रसूत, रक्तिम छीटो से शोभित,
खिली मँझोले रजत फलो मे करती थी मन मोहित।
पइयो[1] की प्रमुदित पखुड़ियाँ उड़ती थी पिछवारे,
महक रहे थे नीबू, कुसुमो मे रजगंध सँवारे।
नारगी, अखरोट, नाक के फूल, मजरी, कलियाँ
बढा रही थी ऋतु शोभा केले की फूली फलियाँ।
काफल[2] ये रँग रहे, फूल मे थी फल लिये खुबानी,
लाल बुरूंसो[3] के मधु छत्तो से थी भरी वनानी।

हँसती थी घाटियाँ, हिसालू[4] खिले सुनहले क्षण मे,
बेडू[5] थे बगनी, लसलसे, पके अधपके वन मे।
लदे अमोय गुच्छो मे ये जँगली मूँगी दाने,
टूट रहे थे तोते खटमिट्ठे वन मेवे खाने।

देवदारु कुकुम का स्वर्णिम टँगा सहन मे था नभ,
साँसे पीती थी चीड़ो की ममर, नीरुज सौरभ।
मूक नवागत का करती थी शैल प्रकृति अभिनदन —
वर्षों बाद किशोर हुआ इन दृश्यो के प्रति चेतन।

सोता था क्या मूक रात-भर झबरा कालू पाजी?
मस्त भोटिया दोर, बाघ से ली थी जिसने बाजी।
सी सी सीटी बजा, आ रहा होगा भाजी देने
मगल बावर्ची का नटखट लडका पस लन।
उमड चीटियो-स, किलबिल कर, माली घर निज डलियाँ
चुनते होगे हरी चाय की बटी सुनहरी कलियाँ।

१ जगली बेरी, २ छोटे लाल फल, ३ रोडोडड्रम, ४ छोटे पीले फल, ५ पहाड़ी अजीर

हाथ जोडकर, बकता होगा खडा मसखरा बिस्ना,
'अब हुजूर, पेंसन मिल जाय, और नहीं कुछ तिस्ना।
धौली के सीधा से कँपते हाथ पर कर लकलक,
पानी के बहँगे लाने मे साँस फूल जाती थक।
जाडे से हड्डी बजती,—सरकार, हुआ बूढा तन,
मौना[1] के छत्त करते फूटे कानो मे भनभन।
अब मोती पर जीन कसेगी? —देखें आप किसी छिन
कान खडे कर, टाप उठाये, करता दिन-भर हिनहिन।
आगे के सब दाँत निगल अब चुका साथ चारे के,
पीठ झुक गयी, पेंसन के दिन हैं उस बेचारे के।"
ही ही हँस, जुट गया काम में होगा तुरत लगन से,
भत्य पुरातन, शुभ दिन की कर मौन कामना मन से।

निश्चय ही, कटती होगी तब जौ गेहूँ की बाली,
कटि मे खोस दराती, सिर पर धर सोन की डाली
जाती होगी खेतो मे प्रात मखमल की चोली
मार छींट लहँग मे फेंटा,—बहू गाँव की भोली।

ढोरो के सँग निकल छोकरे खुले हरे गोचर मे
रोल मचाते होगे खेल कबड्डी हो हो स्वर मे।
उचक चौंक खरहे झाडी मे छिपते होगे डर से,
हिरन चौकडी मार, भागते होगे चकित उधर से।

कन्धे से टाँगी उतारकर, हाथ कनपटी पर धर
गाता होगा गँवई छैला खडा किसी चोटी पर।
घास छीलती होगी हरी तलटी मे नथवाली
देख सुवा[2] को छायी होगी आखो मे हरियाली।
छेडी होगी मस्त तान स्वर मिला मुखर ममर से
मधुर प्रतिध्वनि आयी होगी घाटी के भीतर से।

'बिजली बसती घन मे,
आग लगा दी खिल बुरूस न वन मे, तून तन मे।

'मेहदी पिसती सिल मे,
तू न देख पाये, तेरी ही रंगत टूटे दिल मे।

"मन उडता पाँखो मे,
सुवा घूमता वन वन, तू घूमा करती आँखो मे।

'साँझ हुई आगन मे,
तुझे देख कसे बतलाऊँ क्या हो जाता मन मे।

'बदली छायी दिन मे,
नयी उमर की-बाढ नवेली उतर जायगी छिन मे।"
मीठे स्वर मे देती होगी प्यार भरी धनि गाली—
"क्या खाकर भुखमरे, करेगा तू मेरी रखवाली।

१ मधुमक्खी, २ तोता, प्रेमिका

सास सिंहिनी-सी है मेरी, ससुर एक में सौ से,
जेठ बैल-से है मतवाले, देवर मेरे गौ-से !
सया मेरे कामधेनु से, मैं जाऊँ बलिहारी,
वे चन्दन मैं गन्ध - छाह, वे चन्दा मैं उजियारी !
वे हिरना मैं हिरनी, पीते मिल झरने का पानी,
तू प्यासा तो खोज कहीं जलधार, मूढ, वकच्यानी !
ननदी मेरी काली नागिन, जी हो उसे खिझा तू,
वीर मरद जो, बीन बजाकर पहिले उसे रिझा तू !
और नहीं तो, क्या चुल्लू-भर पानी तुझे नहीं है ?"
"बहती गंगा छोड कहाँ जाऊँ धनि, क्या न सही है ?"
गूँज रही होगी, गिरि वन अम्बर में दुहरी तानें,
और पास खिंच आये होंगे दो जन इसी बहाने !

हाँ, तब ऊषा स्वर्ग क्षितिज पर स्वर्णिम मंगल घट भर
उतरी थी, युग उदय शिखर पर माणिक सूर्य मुकुट धर !
पहिले से जगकर खग, ऊँचे गिरि वासों के कारण,
गाते थे नव स्वर लय गति में नवल जागरण चारण !
नील, प्रतीक्षा था नीरव,—अनुराग द्रवित थे लोचन,
गन्ध तुहिन से ग्रथित रेशमी पट-सा मसृण समीरण !
रँग-रँग के वन फूलों से गुम्फित मखमल के शाद्वल
तल्प सँजोये थे स्मित, शैशव के हित, क्रीडा कोमल !

देख रहा था खडा निकट ही हिमवत् नव जन्मोत्सव,
गौरव से उन्नत कर मस्तक, बरसा आशीर्वैभव !
अमरों का अधिवास, पुण्य शिखरों से अक्षय कल्पित,
सात्विक आत्मोल्लास, चेतना में एकान्त समाधित !
स्वर्गिक गरिमा में उठकर, नैसर्गिक सुषमा में स्थित
स्फटिक शृंग निर्वाक् नीलिमा में थे स्वर्ण निमज्जित !
उतर रहा था हेम गौर चूडों पर मौन अतन्द्रित
ज्योति काय चैतन्य लोक-सा नव प्रभात दिक् प्रहसित !
फहराते थे आरोहों पर नीहारों के केतन,
शुभ्रारुण छायातप कम्पित, रश्मि ज्वलित, नव चेतन !
अतल गहनताओं से जग उत्कर्षों में नभ चुम्बित
आध्यात्मिक परिवेश शान्त, लगता था विस्मय स्तम्भित !

तभी अगोचर अन्तरिक्ष में, अन्तर्जग के भीतर
नये शिखर थे निखर रहे शत सूक्ष्म विभव के भास्वर !
जिन पर नूतन युग प्रभात था उदय हो रहा गोपन,
रजत नील स्वर्णारुण शृंगों पर भर स्वर्गिक प्लावन !
नयी शती थी जन्म ले रही काल दंष्ट्र में जीवित,
स्नेह मूर्ति-सी विगत शती थी कृच्छ्र वेदना मूर्छित !
नव चेतन था अभिनव, मानस शव-सा पुण्य पुरातन,
नाल मुकुल !—पर इनका स्मृति पावन सम्बन्ध सनातन !

था निमित्त शिशु, नव युग था अवतरित हो रहा निश्चय,
वहिरंतर का धूम चीर हँसता था नव स्वर्णोदय।
इसीलिए, सम्भव, हिमाद्रि का स्वर्गोन्मुख आरोहण
युग सनाभि शिशु के मन के हित रहा महत आकर्षण।
इन्द्रचाप के ज्योति सेतु पर नव स्वप्नों के पग धर
विचरा वह मोहित शृंगों पर शोभा तन्मय अंतर।
महिमान्वित कर मन क्षितिज को, दृष्टिसरणि को विस्तृत,
दीपित करते थे शशव पथ सौम्य शिखर दिक शोभित।
मुग्ध प्रकृति छवि नव किशोर मानस में तिरती थी नित
स्वर्ग अप्सरी-सी तुषार सरसी सुषमा में बिम्बित।
काँव-काँव कर आँगन में कौये गाते थे स्वागत,
गुह्य शक्तियाँ तब अलक्ष्य में निश्चय होंगी जाग्रत।
अवचेतन निश्चेतन को होना था युग के मंथित,
मानस को उन्नीत, देह के जड़ अणुओं को ज्योतित।
चिर विभक्त को युक्त, रुद्ध को मुक्त, खण्ड को पूरित,
धरा विरोधों को होना था विश्व ऐक्य संयोजित।
कुत्सित को सुंदर, सुंदर को बनना था सुंदरतर,
शिव को शिवतर लोक सत्य को मानव सत्य महत्तर।
दूर कहीं घिरते थे सम्भव धीरे, क्रान्ति बलाहक,
रक्तिम लपटों के पर्वत, भू के नव जीवन वाहक।
घुमड़ रही थी क्रुद्ध धरा उर में हुंकार भयानक,
ज्वालामुखी उगलने को था रुद्ध उदर का पावक।
झंझा का था जन्म दोल वह ऋतु कुसुमों से गुंजित
प्रलय सृजन थे साथ खेलते,—प्रभु की दया अपरिमित!
नहीं जानता, कब कृतार्थ होगा भू पर नव चेतन,
तम पर अमर प्रकाश, मृत्यु पर विजयी शाश्वत जीवन!
हिमवत का विश्वास अटल ले नव प्रभात की आशा,
नील मौन में खोये शृंगों की अनंत जिज्ञासा,—
प्रलय क्रोड में खींच प्रौढ़ शिशु अमृत प्राणप्रद श्वासा,
घृणा द्वेष में लिये हृदय में महत प्रेम अभिलाषा।
खोज रहा वह युग विनाश में नव जीवन परिभाषा,
विश्व ह्रास में—नवल चेतना, सृजन प्रेरणा, भाषा।

हाँ, यौवन निदाघ अब बीते,
रिक्त अमृत विष के मटका-से मीठे तीते,—
यौवन मधु निदाघ अब बीते।

(मई १९५४)

रश्मि चरण धर आओ।
प्राणों के धन, अंधकार,
तप स्वर्ण शुभ्र मुसकाओ।

सास सिंहिनी सी है मेरी, ससुर एक म सौ स,
जेठ बैल-स है मतवाले, देवर मेरे गौ-स।
सया मेरे कामधेनु से, मैं जाऊँ बलिहारी,
वे च दन मैं ग ध - छाँह, वे च दा मैं उजियारी।
वे हिरना मैं हिरनी, पीते मिल झरने का पानी,
तू प्यासा तो खोज कही जलधार, मूढ, वकध्यानी।
ननदी मेरी काली नागिन, जी हो उस खिझा तू,
वीर मरद जो, बीन बजाकर पहिले उसे रिझा तू।
श्रौर नही तो, क्या चुल्लू भर पानी तुझे नही है?"
"बहती गगा छोड कहाँ जाऊँ धनि, क्या न सही है?"
गूज रही हागी, गिरि वन अम्बर मे दुहरी तानें,
श्रौर पास खिच श्राय हागे दो जन इसी बहाने।

हाँ, तब ऊपा स्वग क्षितिज पर स्वणिम मगल घट भर
उतरी थी, युग उदय शिखर पर माणिक सूय मुकुट धर।
पहिले से जगकर खग, ऊँचे गिरि वासो के कारण,
गाते थे नव स्वर लय गति मे नवल जागरण चारण।
नील, प्रतीक्षा या नीरव,—अनुराग द्रवित थे लोचन,
ग ध तुहिन से ग्रथित रेशमी पट-सा मसण समीरण।
रँग-रँग के वन फूलो से गुम्फित मखमल के शाद्वल
तल्प सँजोये थे स्मित, शशव के हित, क्रीडा कोमल।

देख रहा था खडा निकट ही हिमवत् नव ज मोत्सव,
गौरव से उन्नत कर मस्तक, बरसा श्राशीर्वैभव।
अमरो का अधिवास, पुण्य शिखरो से अक्षय कल्पित,
सात्विक आत्मोल्लास, चेतना में एकान्त समाधित।
स्वर्गिक गरिमा मे उठकर, नसर्गिक सुपमा मे स्थित
स्फटिक श्रृग निर्वाक् नीलिमा म थे स्वण निमज्जित।
उतर रहा था हेम गौर चूडो पर मौन अतद्रित
ज्योति काय चैत य लोक-सा नव प्रभात दिक प्रहसित।
फहराते थे श्रारोहो पर नीहारो के केतन,
शुभ्रारुण छायातप कम्पित, रश्मि ज्वलित, नव चेतन।
अतल गहनताश्रो स जग उत्कर्षों मे नभ चुम्बित
श्राध्यात्मिक परिवेश शान्त, लगता था विस्मय स्तम्भित।

तभी अगोचर अ तरिक्ष म, अन्तर्जग के भीतर
नये शिखर थे निखर रहे शत सूक्ष्म विभव के भास्वर।
जिन पर नूतन युग प्रभात था उदय हो रहा गोपन,
रजत नील स्वर्णारुण श्रृगो पर भर स्वर्गिक प्लावन।
नयी शती थी ज म ले रही काल दष्ट्र मे जीवित
स्नेह मूर्ति सी विगत शती थी कृच्छ वेदना मूर्छित।
नव चेतन था अभिनव मानस शव-सा पुण्य पुरातन,
नाल मुकुल[1]—पर इनका स्मति पावन सम्ब ध सनातन।

निःस्वर ताराओं के नूपुर,
रणित पवन वीणाओं के सुर,
अग्नि विहंगम, मन क्षितिज में
ज्योति पंख फैलाओ!
अनाहूत हे, अविज्ञात हे,
लपटों में लिपटे प्रभात हे,
स्वर्ग दूत-से उतर, हृदय की
गोपन व्यथा मिटाओ!
पावक परिमल के वसन्त हे,
मधु ज्वालाओं के दिगन्त हे,
मानस के सूने पतझर को
शोभा में सुलगाओ!
किरणोज्ज्वल कंटक किरीट धर
विचरो तम पंकिल भू मग पर,
प्राणों के निर्मम याचक हे
जीवन रज लिपटाओ!
खोलो अन्तर के तड़िल पट,
स्वर्ग सुरा से भरो रश्मि घट,
नव स्वर लय गति में जीवन को
स्वप्न मुखर कर जाओ!

आवाहन

ओ जन युग की नव ऊषाओ,
आओ नव क्षितिजों पर आओ!
स्वर्गिक शिखरों के प्रकाश में
भू के शिखरों को नहलाओ!
आत्म मुक्त स्वर्णिम उड़ान भर,
शून्य नील के कूल पार कर,
शिखरों से समतल पर उतरो,
आगे के अरुणोदय लाओ!
महत् स्फुरण का यह नीरव क्षण
मौ फटने के पहले का तम,
दीपित कर निशिएँ अतीत की
नव ज्वालाओं में लिपटाओ!
गीत अधजग तरु नीड़ों में,
स्वप्न अधमुंदे उर पलकों में,
मौन प्रतीक्षा का अनन्त यह,
वातायन से मुख दिखलाओ!
ओ नव युग की नव ऊषाओ,
जन मानस क्षितिजों पर आओ!

उच्च नभस्वत पथ की वासिनि,
तुहिन पंक्ति रजतोज्वल हासिनि,
धूलि धूसरित भू के मग में
विचरो, कंचन घट ढलकाओ।
ज्योतिमय नभ शतदल में जग,
शुभ्र पीत पंखुड़ियों में हँस,
अमृत कोष भुवनों की सौरभ
जन की साँसों में भर जाओ।
शाश्वत ऊषाओं के क्रम में
नव चेतन केतन फहरा कर
तृणतरु पर, गिरि सरि सागर पर
रश्मि पंख शोभा बरसाओ।
अंध गुहाओं में प्रवेश कर
कुण्ठित सत्यों के सोये स्तर
प्रीति शिखाओं में प्रोज्वल कर
मनोभूमि पर उन्हें जगाओ।
ओ जन युग की नव ऊषाओ,
नव विकास क्षितिजों पर आओ।
सप्त वर्ण स्मित अश्वों पर चढ़,
मरुतों के पथ पर सवेग बढ़
ज्योति रश्मियाँ निज कर में धर
भू का रथ निर्बाध चलाओ।
वस्तु तमस को दिक प्रहसित कर,
रुद्ध दिशाओं को विस्तृत कर
मानेवाले सूर्योदय के
मुख से तेज पटल हटाओ।
विगत नवागत ऊषाओं में
अन्त स्मित नव स्वर संगति भर,
ओ प्राचीन प्रभातों की श्री
नये प्रभातों में मुसकाओ।
निज असीम आभा प्रसरित कर
भावी ऊषाओं के नभ में,
विगत अनागत के छोरों पर
रश्मि सेतु बन उन्हें मिलाओ।
ओ नवयुग की नव ऊषाओ
नव प्रकाश क्षितिजों पर आओ।
स्वर्गिक शिखरों के प्रवाह में
भू के शिखरों को नहलाओ।
स्वर्ण मरन्दों से अयि विरचित,
सूक्ष्म रजत क्षौमों में भूषित,
नत सुरधनुओं से हो वेष्टित
जन युग का अभिवादन पाओ।

नि स्वर तारामों के नूपुर,
रणित पवन वीणाम्रो के सुर,
अग्नि विहगम, मन क्षितिज मे
ज्योति पख फैलाम्रो!
अनाहूत हे, अविज्ञात हे,
लपटो मे लिपटे प्रभात हे,
स्वग दूत-से उतर, हृदय की
गोपन व्यथा मिटाम्रो!
पावक परिमल के वसन्त हे
मधु ज्वालाम्रो के दिगन्त हे,
मानस के सूने पतझर को
शोभा मे सुलगाम्रो!
किरणोज्वल कटक किरीट धर
विचरो तम पकिल भू मग पर,
प्राणो के निमम याचक हे,
जीवन रज लिपटाम्रो!
खोलो अन्तर के तड़िल पट,
स्वग सुरा से भरो रश्मि घट,
नव स्वर लय गति मे जीवन को
स्वप्न मुखर कर जाम्रो!

आवाहन

ओ जन युग की नव ऊषाम्रो,
आम्रो नव क्षितिजो पर आम्रो!
स्वर्गिक शिखरो के प्रकाश मे
भू के शिखरो को नहलाम्रो!
आत्म मुक्त स्वर्णिम उडान भर,
शून्य नील के कूल पार कर,
शिखरों से समतल पर उतरो,
आगे के अरुणोदय लाम्रो!
महत स्फुरण का यह नीरव क्षण
पौ फटने के पहले का तम,
दीपित कर निशिएँ अतीत की
नव ज्वालाम्रो मे लिपटाम्रो!
गीत अधजगे तरु नीडो मे,
स्वप्न अधमुदे उर पलको मे,
मौन प्रतीक्षा का अनन्त यह,
वातायन से मुख दिखलाम्रो!
ओ नव युग की नव ऊषाम्रो,
जन मानस क्षितिजों पर आम्रो!

उच्च नभस्वत पथ की वासिनि,
तुहिन पक्ति रजतोज्वल हासिनि,
धूलि धूसरित भू के मग मे
विचरो, कचन घट ढलकाम्रो ।
ज्योतिमय नभ शतदल म जग,
शुभ्र पीत पखुडियो मे हँस,
अमृत कोष भुवनो की सौरभ
जन की साँसो म भर जाम्रो ।
शाश्वत ऊषाम्रो के क्रम मे
नव चेतन केतन फहरा कर
तृणतरु पर, गिरि सरि सागर पर
रश्मि पख शोभा बरसाम्रो ।
अ ध गुहाम्रो मे प्रवेश कर
कुण्ठित सत्यो के सोये स्तर
प्रीति शिखाम्रो मे प्रोज्वल कर
मनोभूमि पर उ हे जगाम्रो ।
म्रो जन युग की नव ऊषाम्रो,
नव विकास क्षितिजो पर म्राम्रो ।
सप्त वण स्मित म्रश्वो पर चढ,
मरुतो के पथ पर सवेग बढ,
ज्योति रश्मियाँ निज कर म धर
भू का रथ निर्बाध चलाम्रो ।
वस्तु तमस को दिक प्रहसित कर,
रुद्ध दिशाम्रो को विस्तत कर,
मानेवाले
सूर्योदय के
मुख से तेज पटल हटाम्रो ।
ॐ विगत नवागत ऊषाम्रो मे
म्रन्त स्मित नव स्वर सगति भर,
म्रो प्राचीन प्रभातो की श्री,
नये प्रभातो म मुसकाम्रो ।
निज म्रसीम म्राभा प्रसरित कर
भावी ऊषाम्रो के नभ मे,
विगत म्रनागत के छोरो पर
रश्मि सेतु बन, उ हें मिलाम्रो ।
म्रो नवयुग की नव ऊषाम्रो,
नव प्रकाश क्षितिजो पर म्राम्रो ।
स्वर्गिक शिखरो के प्रवाह म
भू के शिखरो को नहलाम्रो ।
स्वण मरन्दो म म्रयि विरचित
सूक्ष्म रजत क्षौमो म भूषित,
गत सुरधनुम्रो स हो वेष्टित
जन युग का म्रभिवादन पाम्रो ।

ओ नव युग की नव ऊषाओ,
युग प्रभात क्षितिजो पर आओ।

गीत

प्राण, तुम्हारी तन्द्रिल वीणा
फिर मधु पावक से हो झंकृत।
अंधकार के तार अगोचर
गोपन स्पर्शों से कँप थर थर,
भरे गहन के उर मादन स्वर
विधि निषेध वजन हो विस्मृत।
सुलगें लपटो सी झनकारें
मम वेदना भरी पुकारें,
जीवन की असफल मनुहारें
नव स्वर सगति मे हो मुखरित।
गरज उठें मन मे छाये घन,
घुमड उठे नभ का सूनापन,
उमड़ें सागर म नव प्लावन
जीवन सीमाएँ कर मज्जित।
मलयज बने प्रभजन क्षण मे
काँपे छायाएँ कानन मे,
खिलें फूल कुण्ठित पाहन मे
निमम उर हो प्रीति विद्रवित।
जागे आशा नव जीवन की
अग्नि शिखा अभिलाषा मन की,
विजय पराजय क्षण अनुक्षण की
जाग्रत तारो मे हो मूर्छित।
क्षितिज पल्लवित हो शत पतझर
भरें गहन विद्रोही ममर,
स्वप्न पग ध्वनित हो गत खँडहर
नव प्रभात शोभा से मण्डित।
यह तामस प्रिय मानस वीणा
सात्विक पावक से कर क्रीडा
छोड़े आदिम सशय व्रीडा
दिङ् मण्डल हो मम गुजरित।

स्मृति

वन फूलो की तरु डाली म गाती अह निदय गिरि कोयल,
काल कौओ के बीच पली मुहजली, प्राण करती विह्वल।
कोकिल का ज्वाला का गायन, गायन म मम व्यथा मादन,
उस मूक व्यथा म लिपटी स्मृति, स्मृति पट म प्रीति कथा पावन।

वह प्रीति तुम्हारी ही प्रिय निधि निधि चिर शोभा की ! (जो अनन्त
कलि कुसुमो के अगो मे खिल बनती रहती जीवन वसन्त !)
उस शोभा का स्वप्नो का तन, (जिन स्वप्नो से विस्मित लोचन !
जो स्वप्न मूर्त हो सके नहीं, भरते उर मे स्वर्णिम गुंजन !)
उस तन की भाव द्रवित आकृति,—(जो धूपछाँह पट पर अंकित !
आकृति की खोयी-सी रेखा लहरो मे बेला सी मज्जित !)
यौवन बेला वह, स्वप्न लिखी छवि रेखाएँ जिसमे ओझल,
तुम अन्तर्मुख शोभा धारा बहती अब प्राणो मे शीतल !
प्राणो की फूलो की डाली, स्मृति की छाया मधु की कोयल,
यह गीति व्यथा, अन्तर्मुख स्वर, वह प्रीति कथा, धारा निश्छल।

अन्त क्षितिज

प्राणो की छाया म श्यामल—
कचनारी कलियो का कोमल
क्षितिज खिला अरुणोज्वल।
खुल पडते पखडियो के दल
दीपक लौ-से कँप-कँप प्रतिपल
सौरभ से उच्छवसित दिगचल।
लाज लालिमा स्मित किसका मुख,
उदित मौन, यह मन के सम्मुख
स्मृतियो से पुलकित अन्तस्तल।
स्वप्नो की शोभा से कल्पित,
स्वर्ग रश्मि से सद्य दीपित
प्रीति मुकुल सा पावन, निश्छल।
हँसा लालसा जल म सरसिज,
सोने सा तप निखरा मनसिज,
उमगा आकाशो मे परिमल।
सौम्य, चेतना का अरुणोदय।
हृदय मधुरिमा रस म तन्मय,
सूक्ष्म शिराएँ सुख से चचल।
लोचन अपलक सुषमा मे लय
अन्तस में मधु सागर अक्षय
ज्योति तरल लहराता निस्तल।
प्राणो की छाया मे शीतल—
काचनार कलियो का पाटल
क्षितिज खिला किरणोज्वल।

आत्म बोध

झाड़ नीबू की डालो-सी—स्वर्ण शुभ्र कलियो म पुलकित,—
तुम्हे अक भरने को मेरी बाँहे युग-युग से लालायित।

जो नित नयी क्षितिज की शोभे, पत्रहीन मैं पतझर का वन,—
शून्य नील की नीरवता को प्राणो म बांधे हूँ उन्मन।

मुझम भी बहता वन शोणित हरा भरा—मरकत-सा विगलित,—
मूक वनस्पति जीवन मेरा मलय स्पश पा होता मुकुलित।

वन का आदिम प्राणी तरु मैं जिसने केवल वदना जाना,—
यह सयोग कि खिले कुसुम कलि, नीडो ने बरसाया गाना?

माना, इन डालो मे काँटे, गहरे चिन्तन के जिनव व्रण,—
मम गूज के बिना मधुप क्या होता सुखी, चूम मधु के कण।

अकथित थी इच्छा,—सुमनो म हँस, उड गयी भ्रमित सुगध वन
मूल रहे मिट्टी से लिपटे आय बहु हेमन्त, ग्रीष्म, घन।

अब फिर से मधुऋतु आने को,—पर, मैं जान गया हूँ निश्चित
मैं ही स्वग शिखाओ मे जल नये क्षितिज करता हूँ निर्मित।

यह मेरी ही अमत चेतना,—रिक्त पात्र बन जिसका पतझर
नयी प्राप्ति के नव वसन्त मे नव श्री शोभा स जाता भर।

मनसिज ?

तुम मन की आँखो के सम्मुख प्राणो के याचक बन आते,
मधु मुकुलो का ले धनुष बाण स्वर्णिम मनसिज-से मुसकाते।

तुम वेणु चाप म चढा डोर साँसो की, भावो से गुजित,
स्वर साध, सुनहले तीर छोड मर्माहत करते, अपराजित।

साँसो से भर सौरभ मरन्द उर को मधु स्मति म लिपटाते,
सुरधनुओ के रंग फूलो के कोमल अगो मे ढल जाते।

स्वप्नो की पखडियाँ अपलक मुख सरसिज बन जाती खिलकर,
अगजग की शोभा सुदरता सुख केद्रित हो उठती छवि पर।

मानस के निमम हाव भाव स्वर सगति मे बँधते नूतन,
गाते वशी से रोम रध्र पुलको म कँप उठते तन मन।

बज उठती कटि मेखला दिशा तण तरु मे भर नीरव मर्मर
लहरा उठता सरि सागर म रस मे डूबा तन्मय अम्बर।

आनद स्रोत बाहर भीतर झरने लगते शत रश्मि द्रवित
सीमाएँ लय होती, घन के पट खुलते, हँसता नील अमित।

चेतना बिंदु-से स्थिर उज्ज्वल अन्तर शतदल पर समासीन
तन मन प्राणो के जीवन को तुम करते सुख मे आत्मलीन।

बहती प्रकाश की धाराएँ जिनसे रवि शशि तारा दीपित
मानव आत्मा के ज्योति बिन्दु, जग छाया सा लगता प्रसरित।

चन्द्र के प्रति

एहो शीतल पावक वाहक !
रजत करो के कनक पात्र में
अग्नि लिये तुम अन्तर दाहक !
किन प्राणो के तप का पावक,
किस विरहानल का परिचायक ?
किस मनसिज का रहस कला धनु,
किस सम्मोहन के मधु सायक !
किस मानस का स्मृति स्वप्नोत्पल,
खिले चतुर्दिक् ज्योतिप्रीति दल,
किस ममता का मधु मरन्द, किस
सूक्ष्म गन्ध मद का उद्भावक !
किस असीम सुख का अखण्ड क्षण!
किस शाश्वत मुख का प्रिय दर्पण,
किस स्वर्गिक सुषमा से बिम्बित,
कौन अमर वे गुण के ग्राहक ?
प्राणो के स्वर्णिम पावक सर,
कँपता स्मृतियो का जल थर-थर,
सोये राजहस स्वप्नो के
सतजल पुलिनो मे सुख दायक !
सुलगी मधु ज्वाला अन्तर मे
फैली गिरि वन में, सागर मे,
अम्बर की छाया वीथी के
नि स्वर रहस व्यथा के गायक !
अकथनीय नीरव आकर्षण,—
सजन हर्ष से हिल्लोलित मन,
जलधि फेन मे अप्सरियो के
स्वप्न दीप मणि कक्ष विधायक!
कब से प्रीति मुकुर मुख को तक
विरह विभोर, अतन्द्रित, अपलक
चुगते प्राण चकोर अँगारे,
तुम कसे जन के अभिभावक !

बाहर भीतर

यह छोटा - सा घर का आँगन !
जहाँ राम की अदभुत माया
कभी धूप है तो फिर छाया,—
भाव अभावो का जग उन्मन !
अपने ही सुख - दुख से निर्मित
गृह कलहो वादो मे कम्पित,

क्षण आशा नराश्य प्रतिफलित
चित्त वत्तियो का लघु दपण ।
यहाँ उदय होकर दिन ढलता,
जन्म - मरण संग जीवन पलता,
तुतलाता, घुटनो बल चलता
खेल कूद, भर हास कल रुदन ।
सूरज, चाँद, —दूब पर हिमजल,
तितली फूल, गूँज, रँग, परिमल,
चिडियो की उडती परछाई,—
आते जात विधि-पाहुन बन ।
डाली पर उड गाती कोयल,
झर पडते आशा के कोपल,
ज्ञात नही, कब क्या हो जाये,
प्रलय सृजन करते युग नतन ।
जीवन का चचल यथाथ छल,
भरता, रीता होता अचल,
मधु पतझर खिलते कुम्हलाते
भोर साँझ बिलमाते कुछ क्षण ।
इस आँगन के पार राजपथ
चलता सतत जगत जीवन रथ,
दिशि दिशि का कलरव कोलाहल
उपजाता नित नव सवेदन ।
दूर, मजरित खुले क्षितिज पर
नील पख फैलाये अम्बर
उडता उडता उडता जाता
विठा पीठ पर मानव का मन ।
भू को अ धकार का है भय—
शिखरो पर हँसता अरुणोदय,
युग स्वप्नो की चाप सुनहली,
भरती उर मे अस्फुट स्पन्दन ।

ऊषाएँ

किरणो के स्वर्णिम-रव निझर
नीरव उच्छायो से झर - झर
बहते माणिक स्तम्भो से गल ।
मौन अवतरण म रे प्रतिक्षण
कँपते सुर वीणाओ के स्वन
अकथित स्वर सगतियो मे ढल ।
बजती सुर वधुओ की पायल,
उडती जल फुहार स्मति कोमल
स्पर्शों से उर को कर तन्मय ।

सूक्ष्म मधुरिमा इनमे घुलकर
तन मन की तृष्णा लेती हर,
अवचनीय रस - सी जल मे लय !
शुभ्र चेतना ही निर्मलता,
अतल शान्ति ही शुचि शीतलता,
मुक्त आत्म सुख ही इनकी गति !
अमृत सत्य मे मूल स्रोत रे,
अंत शोभा ओत प्रोत रे,
प्रीति सृजन ही मे इनकी रति ।
नील मौन मे लीन अगोचर
नीहारो के स्मित शिखरो पर
स्वर्गंगा - से ये चिर शोभित ।
अन्तर ही के रहस शिखर वह,
अन्तर ही के रस निर्भर यह,
जिनसे नित ऊषाएँ दीपित ।

गीत

स्वप्नो के पथ से आओ ।
मधु भर्गों का स्वर्ण गुंजरण
प्राणो मे भर, गाओ ।
अन्तर का क्षण क्रदन हो लय,
तुममे रुद्ध अहंता तन्मय,
मेघो के घन गुण्ठन से हँस
रश्मि तीर बरसाओ ।
जगे हृदय मे सोया मानव,
जगे पुरातन मे खोया नव,
शत मरुतो का विद्युत दर्शन
तन - मन मे भर जाओ ।
हे अकूल, हे निस्तल, दुस्तर,
हे स्वर्णिम बाडव के सागर,
नव ज्वालाओ की लहरो मे
उर को अतल डुबाओ ।
मधु सौरभ रँग पावक के घन
गध स्पर्श रस से अति चेतन,
शत सुरधनुओ मे लिपटे हे,
वज्र संदेश सुनाओ ।

प्रतिमा

यह प्रतिमा
तन से जा बाहर
जग जीवन की रज लिपटाकर,
उपचेतन के कर्दम मे धँस

घायल खोहों में घुस हँस हँस,
अंधकार को छेड़ जगाती।

यह प्रतिमा,
सघप निरत नित
सुख दुख विरत, शान्त, आत्मस्थित,
नीचे ऊपर, बाहर भीतर
छा सवत्र, ध्येय पर तत्पर,
मौन सृजन इंगित से प्रेरित
जन भू जीवन करती विकसित,
अग जग से पर, प्रिय मद माती।

यह प्रतिमा,
मन से उठ ऊपर
पंख खोल शोभा क्षितिजों पर,
स्वर्ण नील आरोहों को तर
गंध शुभ्र रज साँसों में भर,
गीतों के नि स्वर झरनों में
स्वप्न द्रवित सुरधनु वर्णों में
अन्तर शिखरों को नहलाती!

यह प्रतिमा,
प्राणों के रथ पर
मरकत रजत प्रसार पार कर,
भू विकास का अपनाकर मग
नव गति, स्वर संगति के धर पग,
निज पथ दशक को श्रद्धा नत
सहज समर्पित कर उर अभिमत,
भक्ति प्रीति युत शीश नवाती।
यह प्रतिमा।

प्रार्थना

आओ हे समवेत प्राथना करें धरा जन,
सजन कम से, रचना श्रम से—जो चिर पावन
रत तन की प्राथना बुद्धि से—जो प्रकाशमय
मानस की प्राथना प्रेम से,—जो नि संशय
मौन हृदय प्राथना समपण से,—जो तन्मय
आत्मा की प्राथना शक्ति, इच्छा से दुजय—
जो प्राणों की मुक्त प्राथना। आओ, हे जन
युक्त प्राथना करें, पूण हो मानव जीवन।
मानव को समझो हे, देवों के आराधक
मानव के भीतर ईश्वर ही अविरत साधक।
महत जगत जीवन की इच्छा ही प्रभु का पथ,
स्वण सृजन चक्रों पर नित बढता प्रभु का रथ।

अणु उद्जन की प्रलयकर छाया म प्रतिक्षण,
निर्भय, नव निर्माण करो हे जीवन चेतन!

शान्ति और क्रान्ति

शान्ति चाहिए शान्ति! रजत अवकाश चाहिए
मानव को, मानस वह, महत् प्रकाश चाहिए,
आत्मा वह हाँ, अन्न, वस्त्र, आवास चाहिए,
देही भी वह —आज मुख्यत देही वह, क्षण—
मनोविलासी,—आत्मा बनना है कल उसको!

हाय, अभागा, बुरी तरह से उलझ गया वह
बाहर के अग जग म, बाहर के जीवन म,—
जहाँ भयानक अधकार छाया युगान्त का!
मानव के भीतर का जग, भीतर का जीवन
आज खोखला, सूना, जीवन मृत छाया-सा,—
गत सस्कारो से चालित, प्रेतो से पीडित!!

खाई खन्दक म खोहो मे, बीहड मग मे
भटक गये जन के पग सकट की रेती मे!
दलदल मे फँस गया मत्त भौतिक युग, गज - सा,
अपनी ही गरिमा के दुसह बोझ से दबा!
जीवन तृष्णा, चक्की के पाटो - सी, उसके
घायल पैरो से है लिपट गयी बेडी बन!
धृष्ट, निरकुश, उच्छखल नर, आज शील के
स्वर्णाकुश के प्रति असहिष्णु अहता शासित!

सोच रहा मैं,—नही स्पष्टत देख रहा मैं,
महत युगान्तर आज उपस्थित मनुज द्वार पर!—
बदल रहे मानव के भौतिक, कायिक, प्राणिक,
सूक्ष्म मानसिक स्तर, आध्यात्मिक भुवन अगोचर!
बदल रहा निसशय, मानव ईश्वर भी अब,—
युग-युग से जो परिचालित करता आया नित
मानव जग को, लोक नियति को, जीवन मन को!
जैवी स्थिति से उच्च भागवत स्थिति तक, सम्प्रति,
घूम रहा युग - परिवर्तन का चक्र अलक्षित!

आज घोर जन कोलाहल के भीतर भी मैं
सुनता हूँ स्वर शब्द हीन मर्मान्त प्रतिध्वनित,—
मन के श्रवणो म जो गूँजा करता अविरत!
इस अणु उद्जन के विनाश के गर्जन युग मे
सृजन निरत हैं सूक्ष्म [illegible] अमर शक्तियाँ
मानव के अन्तर्मन म,— जिनका स्वर्णों का
अक्षय वैभव, अतिक्रम कर जग के यथार्थ को,
अकल्पित आना [illegible] मे [illegible] हो रहा

मानस की अपलक आँखो के सम्मुख प्रतिक्षण।
सूक्ष्म सृजन चल रहा नाश के स्थूल चरण पर।

कवि कपोल कल्पना नही,—अनुभूत सत्य यह,—
घोर भ्रान्तियो के युग का निर्भ्रान्ति सत्य यह,—
आरोहण कर रही मनुज चेतना निरन्तर
शिखरो से नव शिखरो पर अब, उठती गिरती,
सघर्षण करती, कराहती,—चिर अपराजित।
इसीलिए, मैं शान्ति क्रान्ति, सहार सृजन को,
विजय पराजय, प्रेम घृणा, उत्थान पतन को,
आशा कुण्ठा को, युग के सुदर कुरूप को
बाँहो म हूँ आज समेटे,—उन्हे परस्पर
पूरक, एक, अभिन्न मानकर,—युग विवर्त के
क्रन्दन किलकारो म ध्यानावस्थित रहकर।

विस्मय क्या, यदि बदल रहा आर्थिक, सामाजिक,
धार्मिक, वैयक्तिक मानव? यदि मनुज चेतना
अब सामूहिक, वर्ग हीन बन रही बाह्यत,
बिखर रहे यदि विगत युगों के मन सगठन,
क्या आश्चय, बदलता यदि आमूल मनुज जग।

स्वय, युगों का मानव ईश्वर बदल रहा अब,
निश्चेतन उपचेतन, अन्तश्चेतन के जग
परिवर्तित हो रहे, नये मूल्यो मे विकसित।
उन पर आश्रित निखिल सांस्कृतिक सम्बन्धो का
रूपान्तर हो रहा आज,—आवत शिखर मे
घूम, पुन जो सयोजित हो रहे धरा पर।—
विगत निषेधो रूढ़ि, वजनाओ को सहसा
छिन्न भिन्न कर अपने प्रलयकर प्रवेग में,—
विस्तृत कर जीवन पथ, नि सत प्राणो का रथ।
नतिक आध्यात्मिक अतीत सक्रमण कर रहा,—
निखर रहे आदश लोक सौन्दय तत्व नव।
आज नया मानव ईश्वर अवतरित हो रहा
स्वण रश्मियो से स्मित ऊषाओ के रथ पर
तडित स्फुरित लतिकाओ मे लिपटे पर्वत-सा
अगणित सुर वीणाओ के झकृत निर्झर-सा,
उन्मद भृगो से गुजित नव कुसुमाकर-सा।

भरते शत सीत्कार आज बाहर गत पतझर
सुलग रहा भीतर नव मधु का स्वर्गिक पावक।
आत्मा के गोपनतम अन्तर मे प्रवेश कर
मानव मन, हो अधिक पूर्ण, खुल रहा बहिर्मुख।
आज नाश के कर गढ रहे नवल मानव को,
नव इद्रिय वह विकसित इद्रिय, अति इद्रिय अब।

बदल रहा अब मानवता ईश्वर—बदल रहा अब
मानव अन्तर मानवता का रूपान्तर कर।

सोनजुही

सोनजुही की बेल नवेली,
एक वनस्पति वय, हय से खेली फूली फली,
सोनजुही की बेल नवेली।
आँगन के बाड़े पर चढ़कर
दारु खम्भ को गलबाँही भर
कुहनी टेक कँगूरे पर
वह मुसकाती अलबेली।
सोनजुही की बेल छबीली।
दुबली पतली देह लतर, लोनी लम्बाई
—प्रेम डोर - सी सहज सुहाई।
फूलो के गुच्छों - से उभरे अगो की गोलाई,
—निखरे रगो की गोराई
शोभा की सारी सुघराई
जाने कब मुजगी ने पाई।
सौरभ के पलने म झूली,—
मौन मधुरिमा मे निज भूली —
यह ममता की मधुर लता,
मन के आँगन मे छायी।
सोनजुही की बेल लजीली,
पहिले अब मुसकायी।
एक टाँग पर उचक खडी हो
मुग्धा वय से अधिक बडी हो—
पैर उठा, कृश पिंडुली पर धर,
घुटना मोड, चित्र बन सुदर,
पल्लव देही स मदु मासल,
खिसका धूपछाँह का आँचल,—
पख सीप के खोल पवन म,
वन की हरी परी आँगन मे
उठ अगूठे के बल ऊपर
उडने को अब छूने अम्बर।
सोनजुही की बेल हठीली
लटकी - सधी अधर पर।
झालरदार गरारा पहने,
स्वर्णिम कलियो के सज गहने
बूटे कढ़ी चूनरी फहरा,—
शोभा की लहरो-सी लहरा,—

तारो की-सी छाँह साँवली,
सीधे पग धरती न बाँवली,—
कोमलता के भार से मरी,
अग भगिमा भरी, छरहरी !
उदभिद जग की-सी निर्झरिणी
हरित नीर, बहती-सी टहनी !
सोनजुही की बेल,
चौकडी भरती चचल हिरनी ।
आकाक्षा-सी उर से लिपटी,
प्राणो के रज तम से चिपटी
भू यौवन की सी अँगडाई,
मधु स्वप्नो की-सी परछाई,—
रीढ़ स्तम्भ का ले अवलम्बन
धरा चेतना करती रोहण,—
आ, विकास पथ पर भू जीवन
सोनजुही की बेल
गध बन उडी, भरा नभ का मन ।
मूल स्थूल धरती के भीतर,
खीच अचेतन का तम बाहर,
वह अपने अन्तर का प्रिय धन
शाति ध्वजा-सा शुभ्र मणि सुमन
कम्पित मृदुल हथेली पर धर
उठा क्षीण भुजवत उच्चतर,—
अर्पित करती, लो, प्रकाश को
निज अधरो के अमत हास को
प्राणो के स्वर्णिम हुलास को ।
सोनजुही की बेल
समर्पित करती अन्तर्मुख विकास को
उर सुवास को ।
मानव मन कर रहा प्रतीक्षा
सोनजुही से ले नव दीक्षा,—
उसके उर के गध राग से
प्राणो की हरिनाभ आग से
फूटे चेतन शुभ्र शिखा —
जो सके दिखा—
मानवता का पथ ।
जीवन का रथ
—बढ़े !
प्रेम हो जग का इति अथ
त्याग जन सारथि अभिमत !

सोनजुही दृष्टान्त,—
मनुज सपर्पों से दलथ
रीढ़ कदम में लथपथ ।।

आ धरती कितना देती है !

मैंने छुटपन में छिपकर पैसे बोये थे,
सोचा था, पैसों के प्यारे पेड़ उगेंगे,
रुपयों की कलदार मधुर फसलें खनकेंगी,
और, फूल फल कर, मैं मोटा सेठ बनूँगा !
पर बंजर धरती में एक न अंकुर फूटा,
बन्ध्या मिट्टी ने न एक भी पैसा उगला !
सपने जाने कहाँ मिटे, सब धूल हो गये !
मैं हताश हो, बाट जोहता रहा दिनों तक
बाल कल्पना के अपलक पाँवड़े बिछाकर !
मैं अबोध था, मैंने गलत बीज बोये थे,
ममता को रोपा था, तृष्णा को सींचा था !
अर्धशती हहराती निकल गयी है तब से !
कितने ही मधु पतझर बीत गये अनजाने,
ग्रीष्म तपे, वर्षा झूली, शरदें मुसकायीं,
सी-सी कर हेमन्त कँपे तरु झरे, खिले वन !
औ' जब फिर से गाढ़ी ऊदी लालसा लिये,
गहरे कजरारे बादल बरसे धरती पर,
मैंने, कौतूहल वश, आँगन के कोने की
गीली तह को यों ही उँगली से सहलाकर
बीज सेम के दबा दिये मिट्टी के नीचे !
भू के अंचल में मणि माणिक बाँध दिये हों !
मैं फिर भूल गया इस छोटी-सी घटना को,
और बात भी क्या थी, याद जिसे रखता मन !
किन्तु, एक दिन, जब मैं सन्ध्या को आँगन में
टहल रहा था,—तब सहसा मैंने जो देखा,
उससे हर्ष विमूढ़ हो उठा मैं विस्मय से !
देखा, आँगन के कोने में कई नवागत
छोटी छोटी छाता ताने खड़े हुए हैं !
छाता कहूँ कि विजय पताकाएँ जीवन की,
या हथेलियाँ खोले थे वे नन्हीं, प्यारी,—
जो भी हो, वे हरे-हरे उल्लास से भरे
पंख मारकर उड़ने को उत्सुक लगते थे,
डिम्ब तोड़कर निकले चिड़ियों के बच्चों से !
निर्निमेष क्षण भर, मैं उनको रहा देखता,—
सहसा मुझे स्मरण हो आया,—कुछ दिन पहिले,

बीज सेम के रोपे थे मैंने आँगन मे
और उन्ही स बौने पौधो की यह पलटन
मेरी आखो के सम्मुख अब खडी गव स,
न हे नाटे पैर पटक, बढती जाती है।

तब स उनको रहा देखता,—धीरे-धीरे
अनगिनती पत्तो से लद, भर गयी झाडियाँ,
हरे भरे टँग गये कई मखमली चँदोवे।
बेलें फल गयी बल खा, आगन मे लहरा,—
और सहारा लेकर बाडे की टट्टी का
हरे हरे सौ झरने फट पडे ऊपर को।
मैं अवाक् रह गया वश कसे बढ़ता है।

छोटे तारो से छितरे, फूलो के छीटे
झागो-से लिपटे लहरी श्यामल लतरों पर
सु दर लगते थे, मावस के हँसमुख नभ-से,
चोटी के मोती से आँचल के बूटो-से।

ओह, समय पर उनमे कितनी फलियाँ टूटी।
कितनी सारी फलियाँ, कितनी प्यारी फलियाँ,
पतली चौडी फलियाँ—उफ, उनकी क्या गिनती!
लम्बी-लम्बी अगुलियो सी, न ही-न ही
तलवारो-सी, प ने के प्यारे हारो - सी
झूठ न समझें च द्र कलाओ सी नित बढती
सच्चे मोती की लडियो सी ढेर-ढेर खिल,
झुण्ड झुण्ड झिलमिल कर कचपचिया तारो सी।

आ, इतनी फलियाँ टूटी, जाडो भर खायी,
सुबह शाम घर घर म पकी, पडोस पास के
जाने अनजाने सब लोगो मे बँटवायी,
ब धु बा धवो, मित्रो, अभ्यागत, मँगतो ने
जी भर-भर दिन-रात मुहल्ले भर ने खायी!
कितनी सारी फलियाँ, कितनी प्यारी फलियाँ।

यह धरती कितना देती है! धरती माता
कितना दती है अपन प्यारे पुत्रो को।
नही समझ पाया था मैं उसके महत्व को।
बचपन म छि, स्वाथ लोभ वश पसे बोकर!

रत्न प्रसविनी है वसुधा, अब समझ सका हूँ।
इसमे सच्ची समता के दाने बोने हैं
इसम जन की क्षमता के दाने बोने हैं,
इसम मानव ममता के दाने बोन हैं,
जिसस उगल सके फिर धूल सुनहली फसलें
मानवता की—जीवन श्रम से हँसें दिशाएँ।
हम जैसा बोयेंगे वैसा ही पायेंगे।

कौए बतखें मेंढक

कहाँ मढा लाये सोने से अपनी चोचे,
सारे कौए, प्यारे कौए,
कहाँ मढा लाये सोने से अपनी चोचें।
कौन संदेशा लाये घर घर,
कौन सगुन स्वर, कौन अतिथि वर,
काले पखो के झुटपुट से
मन के रीते आंगन को भर।
कहाँ मढ़ा लाये सोने स अपनी चोचें,
प्यारे कौए, प्यारे कौए,
कहाँ मढा लाये सोने से अपनी चोचें।
पौ फट गयी। सुनहला युग क्षण,—आओ, सोचें।
कहाँ जडा लायी हीरो से अपनी पाँखें।
गोरी बतखें, भूरी बतखें,
कहाँ जडा लायी हीरो से अपनी पाँखें।
कौन झील, कैसा चेतन जल
जहाँ खिला वह स्वण कमल दल,
पाप पक म रहनेवाली
कहाँ पा गयी पुण्य तेज बल।
कहाँ जडा लायी हीरो से अपनी पाँखें
गोरी भोरी, भूरी बतखें,
कहाँ जडा लयी हीरा से अपनी आँखें।
नयी दृष्टि यह। पाप पुण्य फल ?—खोलो आँखें।
कहाँ गढा लाये कण्ठो मे वीणा के स्वर,
ये पीले मटमैले मेंढक,
कहाँ गढा लाये कण्ठो मे वीणा के स्वर ?
भू का उपचेतन आवाहन
उत्कण्ठित करता रह रह मन,
कौन साध, किन श्रवणो के हित
करती क्या गोपन सम्भाषण?
कहाँ गढा लाये कण्ठो म वीणा के स्वर,
पीले, हरे मटले मेंढक,
कहाँ गढा लाये कण्ठो मे वीणा के स्वर,—
प्रेम तत्व यह। सजनातुर अगजग का मन्तर।

प्रकाश पतिंगे छिपकलियाँ

वह प्रकाश, वे मुग्ध पतिंगे
ये भूखी, लोभी छिपकलियाँ,
प्रीति शिखा उत्सग मौन,
स्वार्थों की अन्धी चलती गलियाँ।

वह आकर्षण, वे मिलनातुर,
ये चुपके छिप घात लगाती,
आत्मोज्वल वह, विरह दग्ध वे,
ये ललचा, धीरे रिरियाती।

ऊर्ध्व प्राण वह, चपल पंख वे,
रेंग पेट के बल ये चलती,—
इनके पर जमते तो क्या ये
आत्म त्याग के लिए मचलती?

छि, फलाँग भर ये, निरीह
लघु शलभों को खाते न अघाती,
नोच सुनहले पंख निगलती,—
दीपक लौ पर क्या बलि जाती?

उच्च उड़ान नहीं भर सकते
तुच्छ बाहरी चमकीले पर,
महत कर्म के लिए चाहिए
महत् प्रेरणा बल भी भीतर।

पर, प्रकाश, प्रेमी पतंग या
छिपकलियाँ केवल प्रतीक भर,
ये प्रवृत्तियाँ भू मानव की,
इन्हें समझ लेना श्रेयस्कर।

ये आत्मा, मन, देह रूप हैं
साथ-साथ जो जग में रहते,
शिखा आत्म स्थित, ज्योति स्पर्श हित
अंध शलभ तपते दुख सहते।

पर, प्रकाश से दूर, विरत,
छिपकली साधती काय स्वार्थ रत,
ऊपर लटक सरकती औंधी,
कठिन साधना उसकी अविरत।

उदर देह को भरना, जिससे
मन पंखों पर उड़, उठ पाये,
आत्मलीन रहकर प्रकाश को
आग सुझाना, मन खिंच आये।

तुच्छ सरट से उच्च ज्योति तक
एक सृष्टि सोपान निरन्तर,
जटिल जगत्, गति गूढ़, मुक्त चिति,
तीनों सत्य,—व्याप्त जगदीश्वर।

आत्म दया

तुम मनुष्य की सीमाएँ क्या नहीं मानते?
क्षमा नहीं कर सकते रज की दुर्बलताएँ?

राग द्वेष मे जलता नर नित, नही जानते ?
मन ही मन खँटता रहता, निज असफलताएँ
किसे बताये ? कितने हैं ऐसे सहृदय जन,
जो मनुष्य को प्यार करें, उसका हित चाहे ?
दुलभ है जग मे सच्चे मन का संवेदन,
जो पर दुःख समेटें, कहाँ सुलभ वे बाँहें !
तुम तटस्थ रहते जग जीवन के सुख दुख से
औ' असग ईश्वर का मन मे करते पूजन,—
तुम समदृष्टि ! कहूँ भी क्या तुमसे, किस मुख से,
मैं सामाजिक जीव, ज्ञात मुझको मानव मन,
दुर्बलताओं से जो लडता रहता प्रतिक्षण !
क्षमा नही, मैं उसे प्यार करता इस कारण !

केंचुल

केंचुल हैं ये, कोरे केंचुल, फिर भी मन इनसे भय खाता !
दुःस्वप्नो की छाया स्मृतियाँ,—शेष न अब साँसो से नाता।
कभी खडहरो मे, डगरो मे मिल जाते ये धूल धूसरित,
चिक्कन, चितकबरे, चमकीले, टूट फूटे, कुण्ठित लुण्ठित !
मन के खँडहर, युग की डगरें,—ये हिलडुल जग को भरमाते,
प्राण वायु के झोके खाकर, मर-मरकर क्षण भर जी जाते !
अब न क्रुद्ध फुफकार, जिह्वा गति गरल दष्ट्र, उद्धत फन नर्तन
रहीं न दुहरी जीभें,—सम्भव था क्या जीते जी परिवर्तन !
रस्सी राख हुई कब की जल, गयी न मन की रीती ऐंठन,
रूढि रीति मर्यादाओ के मिटते सहज न भावुक बन्धन !
काल सर्प कब देह झाडकर सरक गया, बढ चुपके आगे,
चरण हीन स्मृति चिह्न छोड निज, ये नू क्षत-से पडे अभागे !
वह सहस्र फन खोल छत्रवत् करता नव अम्बर पथ निर्मित,
स्वप्ननिद्र प्रभविष्णु विष्णु को अक लिये, नव सृजन पथ स्मित !
वह अशेष जो शेष—पूर्ण से मात्र पूर्ण ही होना सर्जित,
वह समग्र अविभक्त नित्य, जो भूत भविष्यत् वर्तमान नित !
आ, वह मन के गलियार को लाँघ, ले चुका मुक्त राज पथ,
जीव नियति, कर्मों के बन्धन रोक न पाये काल चक्र रथ !
वह अतिक्रम कर चुका युगो की मानस केंचुल को,—अनन्त गति,
तप क्षीण, साधना मुक्त यह मुक्त वासनाओ की परिणति !
ये मृत सिद्धान्तो के केंचुल, तर्कों वादो मे लिपटाये,
ममता तृष्णाओ के वेष्टन, मौन कोन मे बिलमाये !
ये छूँछे केंचुल, जड केंचुल, दृष्टि भयावह, पर जीवन-मृत,—
कौन सत्य वह ? रीढ हीन जो बाह्य तथ्य को रखता जीवित !

अन्तर्मानस

चीर बुद्धि के फेन,
विचारो के बुद्बुद,—
जाने कब कूद पडा आकुल मन
नील झील के जल मे।
लहरो पर लहरें रही उमड
स्वर्णिम आवर्तों मे घिर घिर,
मन डूब रहा अविदित अकूल
शुभ्रारुण अतस्तल मे।
जाने कब कूद पडा प्यासा मन
निस्तल नीले जल मे।

आ, यहाँ हो रहा अरुणोदय
अन्तर के नि स्वर शिखरो पर,
मन खोल ज्योति चेतना पख
खो गया, रह गया केवल मैं।
क्या देख रहा मैं इस प्रकाश मे?
शब्दो भावो से अतीत
कर रहा पूर्ण को व्यक्त पूर्ण
नव स्वर सगति के शतदल मे।
खिल रही विभक्त पखुडियाँ मिल,—
सुदर शिव सत्य समग्र रूप
करते समग्र की सृष्टि,
सँजो
भव नाम रूप दिशि पल मे।
जाने कब कूद पडा तथात मन
सिंधु हरित जल तल मे।

स्वर्ण मृग

सोने का था हिरन सलोना, तडित लिखित सी थी चल चितवन,
पन्ने मूगे की कृश टाँगें रत्नो के खुर, भू के भूपण।
चमक चौकडी भरता था वह हीरे मोती बिखरा भू पर,
चाँदी के धब्बो का था तन मणि कनियो के सीग मनोहर।
चर जाता था वह दूर्वा मानस छीज छीज जाता था जीवन,
ग्रीवा मगी के भँवरो मे भटक तरी से जाते लोचन।
पास फटक वह, दूर छिटक वह प्राणो को करता था मोहित,
धूप छाँह का भावो का वन उस माया मृग से था शोभित।
सोने का था वहाँ अहेरी, सोने के थे चाप, तूण, शर,
मार गिराया उसने मृग को अधकार जग के वन का हर।
उछल गगन मे गिरा भूमि पर वह सोने का पशु मर्माहत,
युग कदम का ठूँठ ढह गया, ढेर हुआ पापो का पर्वत।

पचवटी लुट गयी हृदय की, पचवटी जो तब से सूनी,
रावण हो मर गया भले ही पचवटी पर श्री हत दूनी।

तृप्त हुई मन की न कामना नयन लुभाता सोने का मृग,
शेष ग्रभी जीवन मरीचिका, तृषित रूप रस के माते दग।

हुग्रा ग्रगोचर सोने का मृग, वह छलाँग भरता ग्रन्तर मे,
क्षण-भर मन धरती पर रहता क्षण भर म उडता ग्रम्बर मे।

सोने का ग्रा रहा ग्रहेरी, बाल सूय-सा जो नव सुन्दर
रश्मि जाल ले कर मे स्वर्णिम, ग्रधरो पर मुरली धर नि स्वर।

लक्ष्य न ग्रब मानव पशु का वध, उसका सरक्षण ही ग्रभिमत,
नये कल्प का त्रेता युग यह, नव जीवन निर्माण सृजन रत।

सम्मोहित करता वन पशु को युग का स्वर्गिक वधिक ग्रहिसक,
भूल गया चौकडी चकित शिशु, वशी स्वर पर मुग्ध, एकटक।

लो, किरणो के स्वण जाल मे जाने कब फँस गया व यचर,
ग्र धकार के गुह्य शैल से लिपट गयी हो ऊषा भास्वर।

जाने कब बाहर कुदान भर ज्योति बन गयी थी ग्रँधियाली,
कण तृण से इद्रिय मानस बन पूव चेतना उसने पाली।

पशु के चरणो मे जीवन गति, वशी उसे सुझाती नव पथ,
मार प्रेरणा की छलाँग नव हाँक रही मोहक ध्वनि भू रथ।

मग की ग्रगमगि की शोभा शत भावो की श्री मे वितरित,
चितवन की चचल जिज्ञासा बहिरन्तर जग करती दीपित!

ग्रब सस्कृत होगा जीवन पशु ग्रन्तर की स्वर लय मे पोषित,
पचवटी की ग्रमत चेतना धरा स्वग मे होगी विकसित।

क्योकि वही है सोने का मृग, वही ग्रहेरी भी ग्रपराजित,
वही सुनहला वशी का स्वर, द्रष्टा, वही विषय पर मोहित।

प्राणो की सरसी

यह प्राणो की चचल सरसी।
रवि शशि ताराग्रो से गुम्फित,
स्वगगा सी स्वप्न प्रज्वलित,
बहती भीतर ही भीतर नित
स्वर्णिम पावक के निझर सी।
मज्जन करते इसमे सुर गण
पूण काम होते ऋषि मुनि जन,
ग्रप्सरियाँ पाती नव यौवन,
सजीवनी सुधा सीकर सी।
तीरो मे स्मति पावन तीरथ,
निस्तल जल मे मग्न मनोरथ,

इसका यही नही रे इति ग्रथ,
त्रिभुवन की ज्वाला परिकर सी।
स्वप्नो के तट सतरँग कुसुमित,
कुसुमो पर मधु भृग गुजरित,
स्वण गुजरण सुन उर मोहित,
शत सुर वीणाओ के स्वर सी।
लहरों म नव लोक उछलते,
बुल्लो मे लय कल्प बिछलते,
अन्तर मे भू स्वग मचलते,
ज्वलित रत्नछाया आकर सी।
आओ, तैरो, ले शत आशा,
डूबो है पूरो अभिलाषा,
पीओ जीवन मादन श्वासा,
यह अमरो के अक्षय वर सी।

गीत

एहो, रस के सागर।
भर देते तुम मोह रिक्त कर
प्राणो की मधु गागर।
बढती पीकर मम पिपासा
जी उठती जीवन की आशा,
अवगाहन करते तुममे नित
नव यौवन हित निजर।
तिक्त मधुर, अभिशप्त वरद बन,
तप्त जलधि हिम शीत जलद बन
बरस बरस पडता रोओ से
रस फुहार बन नि स्वर।
विस्मत वस्तु विभेद आत्म पर,
भाव मुग्ध, त मय सचराचर,
बज उठती स्वर्णिम नूपुर ध्वनि
लहरो म नतन भर।
शत वसन्त खिलते स्मति मादन
कोटि भ ग भरते मधु गुजन,
रूप रग सौरभ कलरव मे
रस मज्जित कर अ तर।
किस निरभ्र नभ का यह आँगन
पख खोल उडता पागल मन
झरते निभत उषाओ के शत
स्वप्न गुजरित निझर।

हृदय डुबाम्रो भले ग्रतल मे,
प्राण उडाम्रो या परिमल मे,
यह सागर का ज्वार रहेगा
नही तीर से बँधकर !

दिव्य करुणा

तुम प्रथम उषा बनकर आयी स्वप्नो की द्राभा मे वेष्टित,
ग्रधखुले स्वग वातायन से चेतना क्षितिज को कर रजित !

ग्रस्पश्य, ग्रदृश्य, विभा व्यापक,—ग्रानन ग्रवगुण्ठन मे हँसकर
तुम दीप्त कर गयी ग्रगम मौन ग्रारोहो के निरवधि ग्रन्तर !

निष्क्रिय उपचेतन के तम मे जाग्रत कर ग्रविदित हृत स्पन्दन
तुम मुक्त कर गयी शाश्वत पथ, ग्रालोक प्रतीक्षा की सी क्षण !

भू के घूमावत शिखरो पर हो स्वण चेतना रश्मि द्रवित
तुम उच्च वायुग्रो के प्रागण कर गयी गन्ध मधु से गुजित !

दिन बाट जोहता रहा ग्रथक, क्षर वस्तु उभर ग्रायी ऊपर,
इच्छाग्रो के कोलाहल मे कब डूब गया ग्रन्तर का स्वर !

ग्रज्ञान बन गया वस्तु बोध, इन्द्रियाँ चेतना की वाहक,
जीवन ममता की लगी पैठ ग्राये बहु प्राणो के ग्राहक !

जाने कब सन्ध्या की विरक्त छाया घिर ग्रायी ग्रम्बर मे,
मेघो के कचन कलश सौध सब म्लान पड गये क्षण-भर मे !

मैंने सोचा, जीवन लहरो ग्रन्त शिखरो से उदासीन
ग्रन्तिम ग्राशा की स्वण रेख हो गयी सदा को ग्रब विलीन !

पर, चन्द्र कला बन तुम ग्रमन्द निखरी प्राणो मे नव मूर्तित,
घन ग्रन्धकार मे जगती के भू जीवन का पथ कर ज्योतित !

मानस की ग्रन्ध गुहाग्रो को स्वर्णिम स्पर्शो से कर विगलित
जीवन के फेनिल ज्वारो पर तुम तिरती ज्योति तरी सी स्मित !

ग्रब ग्रश्रु धौत इच्छाग्रो के मेघो की वेणी मे गुथकर
स्वर्गिक ग्राभा के सूक्ष्म विभव सतरँग सुरधनु मन लेते हर !

नव जीवन के ग्ररुणोदय मे ग्रन्तर्नभ में हो सहज उदित
तुम महारात्रि के सकट मे ग्रक्षय प्रकाश करती वितरित !

ध्यान भूमि

ग्राग्रो हे, सब ध्यान मौन, एकाग्र प्राण मन,
जीवन का ग्रन्तरतम सत्य करें उद्घाटन !

पलक मूद, ग्रन्त स्थित, खोलें मन के लोचन,
घट वासी को करें पूण हम ग्रात्म समर्पण !

लो, सुन पडता सूक्ष्म स्वण मृगो का गुजन,
मन, धीरे, श्रद्धा पथ से करता आरोहण।
देखो, छँटता घने कुहासे का छाया घन
पलता जिसमे हास अश्रु स्मित जग का जीवन,—
जिसकी चपल भृकुटि पर इद्रधनुष सा प्रतिक्षण
हँसता मानव आशाऽकाक्षा का सम्मोहन।

ओझल होता अब वह बादल रश्मि विद्रवित
गजन सघषण मय, तृष्णा तडित प्रकम्पित।
नये रुपहले क्षितिज निखरते मन के भीतर
आभा के रस स्रोत फूटते पुलकित अन्तर।
जग के तम के साथ हुआ मैं का भ्रम भी लय,
लो, अवाक आरोहो पर उडता मन निभय।
जहाँ शुभ्र सच्चिदानन्द के शिखर अतद्रित
निज असीम शाश्वत शोभा मे नि स्वर मज्जित।
मानव मन की अन्तिम गति आत्मा की परिणति,
दिव्य स्पश पा निमल हो उठती पकिल मति।

आ, वह ऊपर छाया स्वर्णिम ज्वाला का घन
दीप्त प्रेरणा तडितो मे लिपटा अति चेतन।
बरस रहे शत सजन प्रलय, शत देश काल क्षण
श्री शोभा आनन्द मधुरिमा का भर प्लावन।
अमृत विन्दुओ से झरते स्मित ज्योति प्रीति कण
अमरो के सुख वभव मे उर करता मज्जन।
भार हीन अक्षय प्रकाश से पीडित अन्तर
रहस भावना के स्वर्गों मे उठता ऊपर।

अन्तमन का शान्त व्योम रे यह नि सशय
ऊध्व प्रसारो मे खो जाये चित्त न तन्मय।
आओ इस स्वर्गिक बाडव मे अवगाहन कर
लौट चलें पावक पराग मधु का नव तन धर।
नव प्रकाश के बीज करें जन भू पर रोपण
शोभा महिमा से कृताथ हो मानव जीवन।

गीत

शिखरो से उतरो।
युग प्रभात के मधु प्रागण मे
स्वग किरण विचरो।
मुक्त पख विहगो के गायन
नभ पथ मे करते अभिवादन,
अम्बर से गिरि तरु शिखरो से
तृण कण पर बिखरो।

स्वर्णिम गुंठन धर स्मित मुख पर
कनक चरण लहरों पर निःस्वर,
धरा रेणु के पहन वसन
शत रंजित हो निखरो !
कब से इंद्रिय कमल निमीलित,
भाव भृंग मँडराते कुण्ठित !
पैठ अचेतन प्राण गुहा में
तंद्रिल तमस हरो !
ज्योति तिमिर का मधुर मिलन क्षण
स्वप्नों का छाया सम्मोहन,
लज्जारुण आनन से उर में
नव अनुराग भरो !
नव आशाऽकाक्षा का शोणित
हृदय शिराओं में कर स्पंदित,
नव प्रभात की भरवि, नूपुर
झंकृत चरण धरो !
प्राणों के पावक की प्रतिमे,
जीवन संवेगों की प्रतिमे,
नव शोभा लपटों में मन को
कंचन द्रवित करो !

नव चैतन्य

नव मानवता के प्रकाश,
नव भू जीवन के ईश्वर,
सूक्ष्म दिगंतों के प्रभात,
मनसिज - से स्वर्णिम सुंदर !

अंतर्मुख आकर्षण, स्वर्गिक
प्रीति मधुरिमा के वर,
नव चेतन मानस, रस इंद्रिय,
नव रहस्य सुख निर्झर !

प्राणों के कुसुमायुध में धर
रहस चेतना के शर
रुद्ध भावना ग्रंथि बेधते
तुम अवचेतन तम हर !

स्वर्ग रुधिर के पावक से कर
हृदय शिराएँ झंकृत
श्री सुषमा आनंद ज्योति में
अन्तर करते मज्जित !

खुलते शोभा अन्तरिक्ष
मन के भुवनों के प्रतिक्षण,

स्वर्ण प्रसारो मे दिङ् मुकुलित
हो उठता भू जीवन।
हँसती मुक्त दिशाएँ, किरणें
खोल धरा तम गुण्ठन,
विचरण करती मनोभूमि के
आरोहो पर चेतन।

तुम स्वर्णिम ज्वाला उडेलते
घट - घट से स्मृति मादन,
रोम कूप पी - पी थक जाते,
भरते नव रस प्लावन।
अतिक्रम कर मानस के तट
मज्जित कर जीवन वजन,
लहरा उठता अतस्तल से,
मुक्त भागवत यौवन।
स्वप्नो का धर धनुष बाण
उर मे भर गहन सृजन व्रण,
सुख मूर्छित कर लिपटाते तुम
प्रीति ज्वाल मे तन मन।
विषय कम रत इद्रिय,
समरस भाव न बनते बधन,
देह प्राण मन म बसते तुम
देवो से प्रति चेतन।

ओ मधु पतझर सृजन प्रलय के
पथ के पाथ विमोहन,
शाति क्राति के स्वग दूत,
विहँसो क्षितिजो मे नूतन।
झझा म भर पग अग्निमुख
शृगो पर कर रोहण,
विद्युत इद्रधनुष म वेष्टित,
बरसो नव जीवन घन।

प्राणो की द्वाभा

घिरा रुपहला अधकार।
यह विमूढ तम नही, गूढतम
प्राणो की गुजार।
सध्या क झुरपुट स निस्वर
मधु स्मृतियो क मुखर चरण धर
जग उठता मानस म सोया
स्वप्ना का ससार।

कितने सुर वीणाओं के स्वर
कँप उठते गोपन में थर-थर,
अतल नील जल, तिरता शशि मुख,
उठते प्राण पुकार!

इस तम के पट में अंतर्हित
कितने अंतस के युग विस्मृत,
सुलग रहे तारा पथ में शत
भस्मावृत अंगार!

निखर रहे स्मृति शिखर तिरोहित
ज्वलित रश्मि रेखाओं से स्मित,
रजत हरित तम के सागर में
जगते स्वर्णिम ज्वार!

मैं एकाकी दीप जलाकर
खड़ा मौन अभिवादन पथ पर,
तुम आते जाते हो, अपलक
खुले प्रतीक्षा द्वार!

बजते पावक के मधु नूपुर
स्वप्निल लपटों में लिपटा उर,—
प्राणों की नीरव आभा में
करते तुम अभिसार!

सृजन वह्नि

एक आग है, हाँ निःसंशय एक आग है!
राग विराग रहित फिर भी वह एक राग है!

दग्ध नहीं करती यह मन को, भस्म न तन को,
उज्वल, निर्मल, पावन करती यह तन मन को!
रूप हीन यह, गंध वर्ण ध्वनि स्पर्श हीन यह
जल जल नित शीतल करती रह आत्मलीन यह!

भौतिक आग नहीं यह कायिक आग नहीं यह,
प्राणिक आग नहीं, न मानसिक आग सही यह!
आत्मिक आग?—नहीं पर फिर भी एक आग यह
विकसित जीवन शतदल की अक्षय पराग यह!

पालन करती अगजग का पोषण जीवन का
सृजनशील यह सृजन करती शाश्वत क्षण का!
तन में मन में बहती यह स्वर्गिक निर्झरिणी,
लपटों के सागर में तिरती स्वर्णिम तरणी!

जाग्रत करती मन को दीपित करती तम को,
मृत्यु शून्य में सक्रिय रखती जीवन क्रम को!
निकट आग के यह दिग् दाहक आग नहीं यह
निकट राग के यह, श्रुति ग्राहक राग नहीं यह!

स्वर्णिम पावक

जीवन के स्वर्णिम पावक कण।
आज रुपहली ज्वालाओं में
मधु पल्लवित दिशा क्षण।
शत गन्धों में, शत वर्णों में,
नव कलि कुसुमों में, पर्णों में
बरस रहा शत सुरधनुओं का
रश्मि हास सम्मोहन।

दीपक लौ - से कँप - कँप प्रतिपल
मर्मर भरते नव प्रवाल दल,
मुखर पंख फूलों के गायक
मग गूंजते उन्मन।
लपटों में लिपटे पलाश वन,
मंजरियों में गुंथे स्वर्ण कण,
हिम पावक, विष सुधा घोल पिक
करते आकुल कूजन।
देह प्राण मन की चिनगारी
सुलग बनी सतरँग फुलवारी
अपराजित, पतझारों में नित
करते तुम मधु वर्षण।
राग द्वेष आतप में तपकर
निखर धुंध घन से उज्ज्वलतर,
लांछन हिम, जनरव झंझा में
करते कुसुमित सर्जन।
ओ प्राणों के पावक के कण,
भू जीवन मन से अतिचेतन
तुम अभाव की छाया में हँस
लाते लोक प्रवर्तन।
घिरें भले ही प्रलय बलाहक,
गरजे धूमिल क्षितिज भयानक,
अप्रतिहत रह, तुम मधु मुकुलित
करते नव मानवपन।

जीवन प्रवाह

(अ)

यह सरिता का बहता अंचल,
इसमें केवल फेन ग्रथित जल?
सीपी सा प्रसार मुक्ता स्मित,—
तट असीम में मौन निमज्जित,

नीलोज्वल नि:शब्द शान्ति - सा
उर में सूक्ष्माकाश प्रतिफलित!
शत छाया - आभासों के जग
वर्णों की मैत्री में वितरित,
इच्छा की लहरें,—तटस्थ उर
शाश्वत गति का साक्षी निश्चित!

यह सरिता का गाता अचल,
इसमें केवल वाष्प अश्रु जल?

आदि न मिलता, अन्त न मिलता,
मध्य स्वप्न - सा लगता मोहित,
शशि की रजत तरी अप्सरियाँ
खेती अन्तर पथ में दीपित!

यह सरिता का कम्पित अचल,
साँस ले रहा जीवन प्रतिपल!

(आ)

यह मानवता का जग मांसल,
केवल छायाऽकृतियों का छल?

रुचि स्वभाव वैचित्र्य भरा मन
अगणित संस्कारों से निर्मित,
उपचेतन की गूढ़ शिराएँ
युग - युग के शोणित से झंकृत!

कोटि सभ्यताएँ, संस्कृतियाँ
क्षुब्ध हृदय सागर में मंथित,
क्रम विकास में होतीं रहतीं
जो परिवर्तित, पुनरुज्जीवित!

यह मानवता का जग मांसल,
जन्म मृत्यु ही का क्रीडास्थल?

अतिक्रम कर इतिहासों के तट,
आत्मा करती रहती प्लावित,
गुह्य अन्धतम प्राण गुहाएँ
हो उठतीं स्वर्गिक प्रकाश स्मित!

यह मानवता का जग मांसल,
चिर विकास पथ में भू मंगल!

विज्ञापन

छन्द बन्ध खुल गये, गद्य क्या बनी स्वरों की पाँतें?
सोना पिघल कभी क्या पानी बनता? कैसी बातें!
गीत गल गया सही, मधुर झंकार नहीं पर खोयी,
सूक्ष्म भाव के पंख खोल अब मन में गन्ध समोयी!

तुक ? शुक मुक्त हुग्रा स्वर की रट के पिंजर से सहसा,
मन की डाल - डाल पर गाता वह किंशुक - सा मुह बाऽ !

बस रचना ग्रब शेष,—सृजन उन्मेष काव्य बन जाता,
सातो रँग घुल गये, किरण का शुभ्र हास मन भाता !

इन्द्रधनुष ? क्या इन्द्रधनुष स्थायी रहता ग्रम्बर मे ?
वह छाया केतन फहराता मेघो के खँडहर मे !

तब क्या मोहक वाग विलास यह, या विकास कविता का ?
शशि का विम्बित हास न समझो, यह प्रकाश सविता का !

मुरली के प्रति

मीठे स्वर मे बोल,
मुरलिके, मन की गाठें खोल !

शुष्क शून्य दशन का ग्रम्बर
भाव सजल नव मेघो से भर
वरसाये तूने रस निर्झर,
पख स्वरो के खोल !

जड चेतन मोहे तून नित
किये कूदते वन मृग स्तम्भित,
ग्रव सापो से खेल न मोहिनि,
निज क्षमता मत तोल !

छिद्रा मे ग्रहि पलते छिपकर,
गूढ पाद, जिह्मग गति, नि स्वर,
रोम रोम से सुनता निश्चित
चक्षुश्रवो का गोल !

श वेल धरती पर छाई
काटे का विष मिले - न भाई,
ये मणि फणिधर विषधर, ग्रजगर
काले कबरे खोल !

ग्रास्ती मे घुस बिना बहान
किस सूघ, लें कब ग्रनजाने,
साप छुछूदर की न दशा हो
इनक सँग मत डोल !

विना रीढ ये रेंग धरा पर
लुक छिपकर नित फिरत डर डर
भूल न इनक मुह म पडना,
ये सुहावन ढोल !

उठती विष की लहर - लहर पर
चलता एक न जन्तर मन्तर,

। देश के लिए भला क्या
झाड़ फूंक का मोल !

ऐसे जीव बहुत सुरपुर में
सांप लोटते जिनके उर में,
यः धामिन, कोडिया, गेहुंअन,
इनको लगा न कोल !

ये द्विजिह्व, भुज जीवी, दुमुहे,
इनके विष को नकुल ही दुहे,
नाग खिलाने की इच्छा तज,
मधु में विष मत घोल !

विद्रोह के फूल

कहां खास लायी कबरी में
फुंद वाले लाल फूल
आंगन में खड़ी जपा की झाड़ी ? —

हरी भरी झबरी कबरी में
मणि की माले रही झूल,
सलवटें पड़ी मखमल की साड़ी,
पहने खड़ी जपा की झाड़ी !

फूल ?
नहीं,—ये लपटों के दल
पावक वाहक तूल,
तप्त अंगार, रक्त स्मित शूल !

जब भी ये जिस घर में जाते
कलह विरोध विवाद बढ़ाते,
लोग तभी श्रद्धा भय से
देवी को इन्हें चढ़ाते,—
पूज प्रकृति को शांति मनाते !

यह जो भी हो,
फटे कलेजे के-से टुकड़े
इनके मुखड़े—
भूले दुखड़े—
मन के भीतर आग लगाते !

हरियाली उगला करती थी जिसकी डालें
सुलग रही अब उसके उर में भीषण ज्वालें,
लटकी हों मुण्डों की मालें !

जाने, कहां अचेतन की किस गहराई में
बन्द किये थी यह निज-मुट्ठी में चिनगारी,
जो अब बाहर फूट क्रान्ति की पुरवाई में

भरती लपटो की किलकारी !
बुझी नही वह हरित जलधि मे डूब,
ज्वाल बन निखरी, दाँव न हारी !
(दारुण शोभा की चण्डी बन हँसती नारी !)

यह जो भी हो,
टहनी के प्रत्येक जोड पर
जीवन की पगडण्डी के प्रत्येक मोड पर
आज चटक उठती चिनगारी,—
प्रकृति मूक विद्रोह से भरी,
मृत्यु मारती कटु किलकारी!
कहाँ गूथ लायी कबरी म
रक्त जिह्व रतनार फूल
आँगन मे खडी जपा की झाडी ?—

चिकनी केंचुल सी कबरी म
मणि की ज्वाले रही झूल,
अगारे जडी मखमली साडी
पहने खडी जपा की झाडी !

गिरि प्रान्तर

उन नीलम ढालो पर लिपटे रेशम के सुरधनु फहराते,
मरकत की घाटी मे सुलगे वन फूलो के झरने गाते !

आरोहो पर मधु ममर पी नि स्वर रजत समीर विचरती,
दूध धुली ऊनी भापो की किरणो की भेडें हिम चरती !

उन क्षितिजो की ज्योत्स्नाओ मे परियाँ अभिसारो को आती,
धूपछाँह बीथी मे लुक छिप हेम गौर शशि कला लुहाती !

घन नीहार ढली पीठो पर, साँझो, की पग चाप बिछलती,
दिन म, धरती की सलवट सी मसण घनो की छाया चलती !

भुजगो सी कन्धो पर लटकी रज की रश्मि रज्जु बल खाती,
मन्त्र मुग्ध पटबीजन झमका, जादू की कन्दरा लुभाती !

चीलो-से मँडरा वन अन्धड गूगी खोहो म खो जाते,
शिशुओ-स हिम ग्रीष्म मचल शात निजन पलनो मे सो जाते !

पौ फटते, सीपिया नील से गलित मोतिया कान्ति निखरती,
उन शृगो पर जगे मौन म सृजन कल्पना देही धरती !

झाँक झरोखे से स्वप्ना के सलज उषा नखशिख रँग जाती,
द्वाभाएँ हँम गिरि प्रान्तर म दिक् प्रभूत वभव बरसाती !

पतझर

अनलकृत सौन्दय ! प्रकृति के रेखा चित्र अकल्पित !
नग्न टहनियो के ठूँठे, नीलिमा जडे, छबि पजर,

धूपछाँह सगति से, पल्लव मासल परिणति से भर
तुम मधु के मजरित स्वप्न अतर मे करते जागृत ।

अल्प, अकृत्रिम कला शिल्पिता के ध्वनिगूढ निदर्शन,
रगो की रुचि के स्तर करत दृष्टि सरणि को विस्मित,
रूप चयन, अवयव सयोजन, शक्ति, व्यजना, इगित,
सूक्ष्म मितव्ययिता करते अद्भुत प्रभाव सवर्धन ।

सूचि मसृण, शत अरुण पीत सित हरित रेशमी किसलय
गहरी हलकी रत्नच्छायाओ मे कँप कँप प्रतिपल,
दिग दिगन्त मे खोयी अपलक दृश्यपटी पर निश्चल,
शाश्वत गति मे जीवन स्थिति का सम्भ्रम भरत निश्चय ।

मुदी रग स्मिति मदु अधरा मे, मौन अभी मधु ममर,
सुनता जिसको मैं मन के उत्सुक श्रवणो मे प्रतिक्षण,
रजत कुहासे म गुण्ठित कलियो के अविकच आनन
रँग देती कल्पना तूलि शत वर्णों मे दृग-सुखकर ।

विधुरा फाल्गुन की स ध्या वन वीथी मे इठलाती
मदिर वनैली ग ध, मधुर भीनी महको से गुम्फित,
नासा र ध्रो मे घुसकर, प्राणो को कर सुख मूर्छित,
शत शत अस्फुट सुमनो की मधुस्मति उर मे भर लाती ।

आम्र अशोक, शिरीष मधूक, कनेर लोध्र, हिम कुण्ठित,
पत्र शू य शाखाओ के कृश स्नायु जाल तरु वन मे
माया बल से मुकुलित हो, सहसा जग उठते मन म,—
धष्ट शिशिर की मदिर साँस पी वन श्री कटक पुलकित ।

देख रहा मैं, शुष्क हरित त्वक कुरवक, चम्पक, चलदल,
निम्ब, पण, कचनार, फालसा, अम्ल, कुसुम द्रुम हर्षित
मुखर चचुलम्बी नीडो को डालो मे कर दोलित,
मत्त समीरण स्पर्शों से कँप, खोल रहे तद्रिल दल ।

धूसर साँझो मे, कुहरो के मुदे प्रात कुम्हलाते,
म्लान कमल के दिवस, सुहाता चल मदूष्ण मेघातप,
पके धान लहराते स्वर्णिम धूपछाँह मे कँप कँप,
बूट चवा, गन्ने का रस पी, थके किसान सिराते ।

निमल सरि सर झिलमिल करती हिलकोरें नीलोज्वल
अबाबील फिरती, तिरती चितकबरी छाया जल पर,
सरपत पर लौकी लटकी, वे नीड बया के सु दर,
चढी लहरियाँ तरु पर, य गिलहरियाँ रोमिल, पुच्छल ।

झर-झर पडत पीले पत्ते पाशुल कर दिङ् मण्डल,
चरमर कर परा के नीचे, भँवरो मे उड फर्-फर्,
रजस्वती पाण्डुर वदना भू अगराग मल तन पर,
नहा महावट की फुहार म निखर रही तृण श्यामल ।

रेणु भ्रान्तदिक् रेणु, वेणु वन-सी गुजरित वनानी,
विटप बाहु सा छूट सिहरती मुग्धा लतिका थर थर,

मुडती उडती खग गति, जब से झँपते मँडराते पर,
उचक उछलते मृग, कपि मलत दृग, शकित वन प्राणी !

ह्हराती आती समीर, खर झझा पखो पर चढ,
प्राण बीज बो रिक्त धरा पर, कम्पित कर वन प्रान्तर,
गहराती जाती रज, लटका ताम्र पात्र-सा अम्बर,
मलय वनगी पुत्र प्रभजन, धूल घु घ घन से कढ !

हे अपरूप, दिगम्बर, दारुण सुदर, चिर ताण्डव रत,
मुझे ज्ञात, नित प्रलय सृजन, पतझर मधु साथ विचरते,
विद्रोही तुम, जीर्ण विरस भू भार जगत का हरते,
भग्न रिक्त को पूर्ण, पुरातन को कर नूतन अविरत !

हे दुदम, सीत्कार भरो हिम कवलित भव कानन मे,
गूज उठे जीवन जजर ककालो का सूनापन,
रुधिर गा उठे हृदय शिराओ मे भर यौवन स्पन्दन,
नवल प्रवालो की शोभा सुलगे विपण्ण दिशि क्षण मे !

यह कैसी सौवण चेतना ज्वाला जग म छायी,
धरती की रज से करती जो नभ के मुख को रजित,
गुह्य मधि बेला स्वप्नो से मन का गहन प्ररोहित,
अगणित सम्भावना सुनहली लपटें लेकर आयी !

हाँ, प्रसस्य ! दिङ् मुकुलित होने को अभिनव मानवपन,
नग्न भग्न देयो का जग मधु की आशा से गुजित,
भरते जाते विषम छिद्र जीवन हरीतिमा से स्मित,
दूर नही अब बहिरतर मानव रूपान्तर का क्षण !

क्रान्ति दौडती, क्रान्ति चतुर्दिक्, दिक् पजर पतझर म,
लपक दौडती आवेशो की लपटें उठ लपटो पर,
गरज रहे शत अघड, डिगते गिरि, उफनाते सागर,
उपचेतन के मूक भुवन चिल्लाते अतरतर म !

कब सशक, मथर, श्लथ गति से तुम्हे रेंगना भाता ?
मृग गत शत लाँघ सिंह-से, भर दहाड से गह्वर,
क्षिप्र रभस तुम चढते निभय गजित कल्लोलो पर,
वात्या चक्रो पर दुधर रथ घघर बढता जाता !

शत अभिवादन ! क्रान्ति दृष्टि, भू ऋतुओ के अधिनायक,
झझारूढ युगान्तर की आत्मा अबाध, अप्रतिहत,
सधि काल सक्रमणशील तुम, मुक्त करो मानव पथ
जीर्ण शीर्ण हो ज्वाल पल्लवित, नवल वसत विधायक !

दीपक

दीपक जलता !
युग-युग मे मन तपता, गलता,—
दीपक जलता !

राज महल थे कभी सँजोये इसने
ग्राज खँड़हरो का तम इसको हरना,
रग सभा का था चिराग जो रोशन,
हाट बाट अब देना उसको धरना ।
एक अनेक हुआ घट घट मे,—
युग स ध्या यह, दिन अब ढलता ।
दीपक जलता ।

कज्जल की लौ विजय ध्वजा फहराती,
नील धुएँ का स्वप्नाकाश बनाती,
चचल इच्छा के शलभो से घिरकर
निज छवि मण्डल का ससार बसाती ।
सिर धुनती वह, धधक, मचलती,
तम का दत्य न टलता ।
दीपक जलता ।

दीपक क्या रे, तेल, ज्योति या बाती,
या अजुलि भर वह मिट्टी की थाती ?
या इन सबका मेल अकिचन,
बात न कुछ बन पाती ।

दीप तले छाया अँधियाला,—
यह मन, की असफलता ।
दीपक जलता ।

भूल निशा का रे प्रहरी वह,
धरा तिमिर कब हरने आया ?
कहा अपार समुद्र कहा यह
क्षुद्र तरी - सी कम्पित काया ।
अ धकार इसकी छाभा मे
उमड, आख को खलता ।
दीपक जलता ।

वह प्रभात की स्वर्णिम मौन प्रतीक्षा,
जग की झझा लेती कठिन परीक्षा,—
महत ज्योति म लय होना ही
उसके क्षण जीवन की दीक्षा ।

यह प्रभात ही, का प्रकाश रे,
दीपक उर मे पलता ।
दीपक जलता ।

दीप शिखा इगित बन उतरी
अ ध गुहा मे महिमा,
आत्मा मन मदिर म निखरी
स्वप्नो की बन प्रतिमा ।

मिट्टी हो ज्वाला का पलना,—
मात्र स्नेह वत्सलता !
दीपक जलता !

दीपक रचना

ये कवि की दीपो की पाँतें !
शलभ प्रीति शोभा पखा से
चचल मन पर करती घातें !
भू मानस की गुहा अँधेरी
तृष्णा ममता देती फेरी,
मँडराती भावो की आँधी
सिर पर, दुख की काली रातें !
प्राण वर्ति जल-जल स्नेहोज्वल
मिट्टी से उठ निज लौ के बल,
दिग् दीपित कर भव रजनी को
करती हँस तारो से बातें !
ये कज्जल की विजय ध्वजाएँ
लेती भू की निशा बलाएँ,
अधकार से घुलमिल जग के
अधकार को देतीं मातें !
उतर स्वग की ज्योति अवनि पर,
मत्य तिमिर को बाँहो मे भर,
मानवीय वन निखर रही अब
अजर अमर देवो की जातें !
नये साम्य का स्वग धरा पर
एक ज्योति अब बाहर भीतर,
नयी पौध युग के पलने म
तम को देख चलाती लातें !
ये छबि की आलोक शिखाएँ
मानव को नव दिशा दिखाएँ,
मौन प्रतीक्षा म जल, लाएँ
नये क्षितिज पर नयी प्रभातें !

गीत

ए हो, पावक के पल्लव वन !
दहक रहे कब से प्राणो की
ज्वाला म तुम प्रतिक्षण !
इस पावक वन मे ही सीता
लिपट अग्नि स, बनी पुनीता,
इस ज्वाला की पायल पहने
नाचे राधा मोहन !

यहाँ अग्नि दृग में कर धारण
सुर असुरों के वन्दित त्रिनयन,
इस ज्वाला की तरल ज्योति ले
उतरी सुरधुनि पावन !

जब पावक तारों से क्रीडा
करती वाणी तज भय व्रीडा,
विद्रोही प्राणों में बजता
प्रलय सृजन का गायन !

ये ही लपटें इन चरणों में,
लिपटी रूप गन्ध वर्णों में,
इस ज्वाला ही की इच्छा में,
जल-जल उठते तन मन !

सदा रहा यह स्वर्गिक पावक
नव जग जीवन का अभिभावक,
इस पावक का यज्ञ कुण्ड ही
सुख दुख का भू प्रांगण !

...ाणु कुंज

अग्नि पुंज
यह वेणु कुंज !
फूट फूट पड़ते आकुल स्वर
तीव्र मधुर श्रुतियों में झर-झर,
इसने बिंधा बिंधा निज अन्तर
पाया दाहक गीतों का वर !

क्या तुम इसका गान सुनोगे ?
उसका गोपन मर्म गुनोगे ?
क्या तुम अपना हृदय रक्त दे
प्राणों का बलिदान चुनोगे ?

अग्नि पुंज
यह वेणु कुंज !

किसने छेड़ी यह स्वर लहरी
मर्म वेदना कँपती गहरी,
जलते तारापथ से यह धुन
अम्बर के अन्तर में छहरी !

सुलग रहे रवि शशि तारागण,
नाच रहे तन्मय हो त्रिभुवन,
सिहर सिहर उठता सागर उर,
झूम रहे मोहित जड़ चेतन !

अग्नि पुंज
यह वेणु कुंज!

करताली देते तृण पुलकित,
मुग्ध चराचर सुख से मूर्छित,
रहस गान पर, सरस तान पर
आत्म मूढ़ सुर नर मुनि विस्मत!

गोपी मोही सुन मादन स्वन,
राधा रोई अर्पण कर मन,
यह प्राणों की पावक वंशी
बजती रहती रे क्षण अनुक्षण!

अग्नि पुंज
यह वेणु कुंज!

स्फटिक वन

यह स्मृतियों का दग्ध स्फटिक वन!

शीत स्फटिक की शाखाओं पर
हिम जल धुले सीप के तरुदल
मन ही मन मधु मर्मर भरते—
मन्त्रों का जिनमें अमोघ बल!

गलित मोतियों की फुहार-सी
फूलों की पखडियाँ झर झर
शून्य मग्न-करती अंतर को
गंध हीन सौरभ-उसाँस भर!

खग पंजर बैठे पिंजर में
भरते अम्बर में उडान स्मित,
नि स्वर कल कूजन स्तवनों से
माया कानन को रख मुखरित!

श्वेत अस्थि के हिरन, चौकड़ी
भरते, नभ में टँग कर निश्चल,
हरित नील हिलकोरों में हिल
बहता पुष्करिणी का स्थिर जल!

अश्रु धूम का रजत कुहासा
ओढे रहता शापित प्रांतर
छाया सी ऊषा संध्याएँ
फिरती उन्मन चरण चाप धर!

यहाँ मौन स्वप्नों के पथ से
आता जाता विरह स्तब्ध मन,
जहाँ प्रेयसी की निर्मम स्मृति
रहती ध्यानावस्थित, पावन,—

साँसों के सूने मंदिर में,
प्रतिपल उर स्पंदन पर स्थापित
प्रीत शिखा करती नीराजन,
प्राण अर्घ्य निज करते अर्पित !

द्रवित चाँदनी सी अपलक छवि
छिटकी रहती वन में अविदित,
घटती - बढ़ती चन्द्र कला, पर
प्रीति नित्य रहती निश्छल स्थित !

विस्मृत स्मृति के दूह ज्वार पर
बसा हुआ यह स्फटिक हृदय वन,
फेनिल भाव पुलिन प्लावित कर
खुलता स्वप्न कक्ष वातायन !

युग मन के प्रति

ओ तिक्त मधुर, कुण्ठा निष्ठुर, पावक मरन्द रज के युग मन,
ओ तड़ित् प्रज्वलित जीवन घन, वन युग के दारुण प्रलय सृजन !
ओ मुक्त रुद्ध, ओ क्रुद्ध बुद्ध, ओ शांति क्रांति के नव दर्शन,
ओ बहिरन्तर के अंतिम रण, ओ सूक्ष्म स्थूल के संघर्षण !
भू जीवन का कंकाल खड़ा हँस रहा, युगों से क्षुधित घोर,
यह भोर निशा, तम का दानव पकड़े प्रकाश के मृग छोर !
ऊपर छायाप्रभ रश्मि बंध चलते जिस पर अमरों के रथ,
नीचे धरती की खोहों में फैले तम के फण अगणित पथ !
यह काँटों से बोया आँगन, तुम धरो फूल से कोमल पग,
मत कुम्हलाओ भू ज्वाला में, विचरो, विहँसो [illegible] जग !
श्रद्धा सूई की नोक, उसी पर तुम्हें खड़े होकर प्रतिपल
संकट के पर्वत झेल, ठेल, वितरित करना जीवन मंगल !
लो, अब अपने को प्रतिक्रम पर पीओ जग मन का घृणा गरल
यह प्रीति सुधा, जो भू घट में [illegible], रति मंथन !
शत भू कम्पों में दौड़ रही मानव प्राणों की दग्ध [illegible],
ज्वालामुखियों के वमनों में बह, उबल रही तृष्णा [illegible] !
ओ ज्योति तमस के अमृत पुरुष, यह जग [illegible] का आवाहन,
तुम कूदो अतल धरा तम में, पार्थिव गुण [illegible] !
ओ भीषण सुंदर, अब [illegible] युग के विद्रोह भरे [illegible],
गरजो, बरसो हे मानस घन, हो जीवन उर्वर, नव चेतन !

नेहरू युग

अभिवादन,
हे नेहरू युग के नव [illegible],
शत अभिवादन !

गांधी युग ! सूक्ष्म सुहागा सा बढ़,
प्रौढ़ यन्त्र युग के मारुत गति यन्त्रा पर चढ़,
उतर रहा लो, भूत रूप धर
जन समाजवादी धरती पर
नेहरू युग निर्धूम अग्नि-सा उज्ज्वल,
पावन, शीतल !
गांधी ही का सत्य बना नव युग का सारथि,—
अन्य न थी गति !
धन्य हुई युग कवि की भारति !
विजित हो रहा यान्त्रिक दानव,
निखर रहा जन तान्त्रिक मानव !
बदल रहा, लो, गोल छेद भी द्वन्द्व तर्कमय
बाह्य परिस्थितियों का दुर्जय !
बदल रही खूंटी चौकोर,—विराट् समन्वय !
बदल रहा युग रुद्ध भू हृदय !
शुभ अहिंसा अदय सौम्य कर रहा दिग् विजय,
नेहरू का मन ही नव युग का मन निःसंशय !
भौतिकता आध्यात्मिकता का
मानवता सामूहिकता का
यह महान परिणय,
प्रज्ञा विज्ञान का उभय !
महत ध्येय, साधन मंगलमय,
नव सर्वोदय, नव अरुणोदय !
जय मध्यम पथ !
जय तृतीय बल !
शान्ति क्षेत्र होता दिग् विस्तृत,
सम्भव भू पर सहस्थिति निश्चित,
देखो, बढ़ता मानवता का रथ
धीरोद्धत,—
पंचशील का ले ध्रुव सम्बल !
रक्तहीन नव लोक क्रान्ति हो,
दूर भ्रान्ति हो,
विश्व शान्ति हो !
युद्ध ध्वंस हो हिंस्र समापन,
भरें धरा व्रण,—
अणु हो रचना श्रम का वाहन !
भू निर्माण सृजन के शुभ क्षण
करें अवतरण,—
निर्भय हो जन !
नेहरू युग के नये चरण,
शत युग अभिवादन !

सन्देश

मैं खोया खोया-सा, उचाट मन, जाने कब
सो गया, तखत पर लुढ़क, अलस दोपहरी मे,
दुःस्वप्नो की छाया से पीडित, देर तलक
उपचेतन की गहरी निद्रा मे रहा मग्न।

जब सहसा आँख खुली तो मेरी छाती पर
था असतोष का भारी रीता बोझ जमा!
मन को कचोटती थी उधेडबुन जाने क्या,
अज्ञात हृदय मथन-सा चलता था भीतर,—

अवसाद घुमडता था उर मे कडुवा, फीका।
सब अस्तव्यस्त विशृखल लगता था जीवन,—
मेरा कमरा ही परिचित कमरा नही रहा,
जी ऊब ऊब उठता था, मन बैठा जाता।

मैं सोच रहा था, जाने क्या हो गया मुझे,
मन किन अनजानी डगरो मे है भटक गया,
कितने अँधियारे कोने हैं मानव मन के।
कुछ किये नही बनता, दिन यों ही बीत रहे,
पानी-सी बहती आयु कभी क्या लौटेगी?
इस निरुद्देश्य जीवन से किसको लाभ भला?
भू भार बने रहने से तो मरना अच्छा।

इतने मे मेरी दृष्टि फर्श पर जा अटकी,
जिस पर जाडे की चिट्टी, ढलती, नरम धूप
खिडकी की चौखट को कुछ लम्बी तिरछी कर
थी चमक रही टूटे दर्पण के टुकडे-सी,—
पिघली चाँदी के थक्के सी छलकी चौडी!
जाजिम पर थी बन गयी तलैया मोती की,
जिसमे स्वप्नो की ज्वालाएँ लहराती थी।
दूधिया भावना मे उफान उठ आया हो।

मैं क्षण भर मे मन के विषाद को भूल गया,
वह धूप स्निग्ध चेतना स्पर्श सी लगी मुझे—
ज्यो राजहस उतरा हो खिडकी के पथ से।
मेरा मन दुविधा मुक्त हो गया, दुःख भूल,
घन के घेरे से निकल चाँद हँस उठता ज्यो।

वह मौन नीलिमा निलयो मे बसनेवाली,
रूपहली घनो की अलकें सहलानेवाली,
वह सूर्यमुखी किरणो की परियो से वाहित
सुकुमार सरोरुह-से स्तनवाली सलज धूप।—
वह रजत प्रसारो मे स्वर्णिम अँगडाई भर
ऊषा की स्वप्निल पलको पर जगनेवाली,
वह हेम हस पखो पर नित उडनेवाली

गोरी ग्रीवा बाँहोंवाली चम्पई धूप !—
वह तुहिन वाष्प के धूपछाँह वल्कल पहनी
सौरभ मरन्द तनवाली, मलयज मनी धूप,
वह फूलों के मृदु मुखड़ों पर हँसनेवाली
नीले डालों पर सोनेवाली सुघर धूप !—
वह हरी दूब के पाँवड़ पर चलनेवाली
रेशमी लहरियों बीच बिछल जानेवाली
वह मुक्ता स्मित सीपी के सतरंग पंख खोल
शत इन्द्रधनुष फहरानेवाली सजल धूप,—
वह चाँदी की शफरी-सी उछल अतल जल से
चमकीला पट दिखा अकूल के पावक का
मेरे कमरे में तुच्छ पटल पर, धूल भरे
मखमली गलीचे पर, चुपके सहमी बैठी,
मेरे कठोर उर को कृतज्ञता-कोमल कर
सुख द्रवित कर गयी, प्रीति मौन संवेदन दे !

मैं उसे देख, श्रद्धा सम्भ्रम से उठ बैठा,
वह मुझे देख स्नेहार्द्र दृष्टि, मुसकुरा उठी !
वह विश्व प्रकृति की दूती बनकर आयी थी,—
मैं स्मृति विभोर, स्वप्नस्थ हो उठा कुछ क्षण को,
वह मेरे ही भीतर से मुझसे यों बोली—

"क्या हुआ तुम्हें, ओ जीवन शोभा के गायक,
तुम ज्योति प्रीति आशा के स्वर बरसाते थे! —
उल्लास मधुरिमा, श्री सुषमा के छन्द गूँथ
तुम भ्रमरों को कर स्वप्न मूर्त, घर लाते थे !
क्यों आज तुम्हारी वीणा वह निस्पन्द पड़ी,
क्यों अब पावक के तार न मधु वर्षण करते ?
कल्पना भोर के पंछी-सी उठ लपटा में
क्यों नहीं स्वप्न पंखों उड़ान भरती नभ में ?

"क्या सोच रहे हो ? उठो, क्षुब्ध मन शान्त करो,
तुम भी क्या जग की चिन्ता के कर्दम में सन
सन्देह दग्ध, उद्भ्रान्त चित्त हो खोज रहे—
क्या है जीवन का ध्येय, प्रयोजन संसृति का,
सुख दुख क्या है, मानव क्यों है या तुम क्यों हो ?

"तुम भी वादों के वेष्टन में मन को लपेट
मानव जीवन के अमित सत्य का विकृत रूप
गढ़ने को आतुर हो ?—सस्ता संस्करण एक
निर्मित कर उसका थोथे तर्कों के बल पर ?—
जन सृजन चेतना को, विकास क्रम को अनन्त
अंजलि पुट में बन्दी करने का साहस कर !!

"या भौतिक मूल्यों की वेदी पर बलि देकर
मानव मूल्यों की, तुम धरती पर नया स्वर्ग

रचने को व्याकुल हो, यन्त्रो के चक्रो मे
मानव का हृदय कुचल, लोहे की टापो से ?
अथवा तुम हिंसक स्वार्थों के पजे फैला
नोचना चाहते जीवन के सुन्दर मुख को ! ।

"तुम भूल गये क्या मातृ प्रकृति को ? तुम जिसके
आँगन मे खेले - कूदे, जिसके आचल मे
सोये जागे, रोये गाये, हँस, बडे हुए ।
जो बाल सहचरी रही तुम्हारी, स्वप्न प्रिया,
जो कला मुकुर बन गयी तुम्हारे हाथो मे,—
तुम स्वप्न धनी हो जिसके बने अमर शिल्पी ।

"जिसन कोयल बन सिखलाया तुमको गाना,
मृदु गुजन भर बतलाया मधु सचय करना,—
फूलो की कोमल बाँहो के आलिगन भर !
जिसके रगो की भावुक तूली से तुमने
शोभा के पदतल रँगे, मनुज का मुख आँका,
जिससे लेकर मधु स्पश शब्द रस ग ध दृष्टि
तुमने स्वर निर्झर बरसाय सुख से मुखरित ।

"अब जन नगरो की अ धी गलियो मे खोये,
ऊँचे भवनो की काराओ मे ब दी हो,
तुम अपनी ही चिन्ता मे घुलते जाते हो ।
क्या लोक मान मर्यादा की पा स्थूल दष्टि
निज सूक्ष्म स्वप्नदर्शी दृग तुमने मूद लिय ?

"लो, मैं असीम का लायी हूँ स देश तुम्हे ।
आओ, फिर खुली प्रकृति की गोदी मे बैठा,
फिर दिक प्रस न जीवन के आँगन मे खेलो —
उद्देश्य हीन भी रहना जहा मधुर लगता ।
फिर स्वप्न चरण धर विचरो शाश्वत के पथ मे,
कल्पना सेतु बाँधो भावो के क्षितिजो म ।

"मन को विराट की आत्मा से क र मवयुक्त
तुम प्यार करो सु दरता से रहना सीखो —
जो अपने ही मे पूण स्वय है लक्ष्य स्वय ।
कवि, यही महत्तर ध्येय मनुज के जीवन का ।"

मैं मन की कुण्ठित कूप वृत्ति से बाहर हो,
चिन्ताओ के दुर्बोध भँवर से निकल शीघ्र
पाहुन प्रकाश के निरवधि क्षण मे डूब गया,—
सुनहली धूप के करतल के शाश्वत म नय ।
मन से ऊपर उठ, तन की सीमाओ स कढ,
फिर स्वस्थ समग्र, प्रफुल्ल पूर्ण बन, मोह मुक्त,
मैं विश्व प्रकृति की महदात्मा मे समा गया ।

मुझको प्रसन्न मन देख, धूप सकुचा कुम्हला
बोली, "अब विदा ! मुझे जाना है !—वह देखो,
किरणें अस्ताचल पर कंचन पालकी लिये
मुझको ठहरी हैं क्षितिज रेख का सेतु बाँध ।

"युग संध्या यह, अस्तमित एक इतिहास वृत्त,
ढलने को ब्रह्म अहन, बुझने को कल्प सूर्य,
मुदन को मानस पद्म,—उदित ज्योतिमय कवि,—
घूमता विवर्तन चक्र, आज संक्रान्ति काल !—

"यदि अन्धकार का घोर प्रहर टूटे तुम पर
तो मुझे स्मरण रखना, यह ज्योति धरोहर लो,—
जब होगी मानस ग्लानि, घिरेगी मोह निशा,
मैं नव प्रकाश संदेशवाह बन आऊँगी,
संध्या पलनों में झुला सुनहले युग प्रभात !"

यह कह वह अन्तर्धान हो गयी पल भर में,
सिमटा अपने आभा के अंगों को उर में ।

अस्तित्ववाद

आः, ये केवल ओसों के कण !
इनको हास कहो कि अश्रुजल,
धरती के भूषण, गीले व्रण,—
वास्तव में, ये ओसों के कण !

इन्हें विगत दायित्व कहो या
वर्तमान अस्तित्व कहो या
भावी के जगमग चेतन क्षण,—
ये यथार्थ में ओसों के कण !

अविज्ञेय वस्तुएँ विश्व में
सूक्ष्म भावना-जग से आवृत,
क्या आदर्श यथार्थ शून्य है
अथवा जड़ चेतना से रहित ?
अपनी-अपनी दृष्टि और मन,—
वैसे तो ये ओसों के कण !

पृथक नहीं रोदन से गायन,
सुख दुख दुख ही सुख जाता बन,
व्याप्त मात्र आनन्द तत्व घन,
साक्षी फूलों का मुख दर्पण !
स्वप्न कहो या सत्य चिरन्तन—
कहने को ये ओसों के कण !

आत्म निवेदन

कसे भेद बुझाऊँ गोपन !
हे मानव घटवासी, तुमसे
कहाँ छिपाऊँ भी अपनापन !

तुम चुपके आय जीवन मे
बाँध गये शाश्वत को क्षण मे,
स्वय रहस्य रहा मैं निज हित,—
रहा जगत के हित कर-दपण !

पीकर तिक्त मधुर मधु ज्वाला
रिक्त किया जीवन का प्याला,
मैं सयत, चत य रहा नित,
हुआ न मोह प्रमत्त एक क्षण !

प्रतिपल दे कटु अग्नि परीक्षा,
पग-पग पर ले असि पथ दीक्षा,
हुआ तप्त, मर्माहत भी मैं,
दु ख दग्ध, कुण्ठित न किया मन !

पिया स्वाति का अमृत अनश्वर,
पाया भगवत करुणा का वर,
मौन, विनम्र रहा,—श्रद्धा रत,
भाया मुझे न आत्म प्रदशन !

मैं तर्कों वादो मे विरमा,
बौद्धिक सोपानो पर बिलमा,
भटका कभी न रिक्त शू य मे
जन धरणी पर करता विचरण !

उड स्वर्णिम स्मित आकाशो पर
पार रजत समतल प्रसार कर,
मैं ऊबड पथ पर अब चलता
बीहड वन का अथक पा थ बन !

निजन मग को कर पग मुखरित,
मृग तष्णा से मुक्त, अपरिचित,
जीवन मरु म करता आया
हँसमुख हरित स्थलो का सजन !
कैसे भेद बुझाऊँ गोपन !

अभिवादन

स्वागत हे, जन मन के वासी !
राजहस भारत मानस के
, जनगण प्रीति तरग विलासी !

जन स्वतंत्रता के तुम प्रतिनिधि,
लोक प्रीति जीवन की प्रिय निधि,
तुम जन मानव भावों के विधि
विश्व शान्ति के प्रथक प्रयासी!

विविध देश, पर एक जन धरा,
रची नियति जन हित स्वयंवरा,
जीवन मरु फिर हो न क्या हरा
तुम भू दुख दारिद्र्य विनाशी

डूब रही जर्जर भव तरणी,—
यह गौतम गांधी की धरणी
बने विश्व संकट तम हरणी,
धर्म चक्रमय ध्वजा प्रकाशी

अभिवादन करता जन चारण
युग प्रभाव है करो निवारण,
पर हित किये स्वत व्रत धारण,
तुम जनगण मंगल अभिलाषी!

गरज रहा चेतना जलधि नव,
नव प्रकाश का यह युग विप्लव,
बरस रहा देवों का वैभव
जन भू पर, सद्भाव विकासी!

बढ़ें चरण, लांघें जड़ बंधन,
देंगे पथ झुक गिरि सागर बन,
कहां रुका कब लोक जागरण
सिद्धि साधनों की चिर दासी!

शत अभिनन्दन, जन मन वासी!
स्वर्ण हुआ भारत मानस के
जनगण हृद तरंगोच्छवासी!

लोक गीत

जन भू का स्वर्ग द्वार,
दय हार लोकायन,
हृ वग द्वार लोकायन,
स हृदय हार लोकायन!

ढ़ि मुक्त चार द्वार,
स्पन्दित नित नव विचार,
न भिनव भावाभिसार,—
म सृष्टि सार लोकायन!

दर्शन विज्ञान संग
ललित कला के पतंग
लोक गीत, नृत्य रंग
का प्रचार लोकायन!

सृजन कम जन साधन,
सृजन कम तप पूजन,
जीवन का सृजन पव
हो अपार लोकायन !
सस्कृति का नव सँदेश
युक्त करे निखिल देश,
जन मन का मिलन तीर्थ
हो उदार लोकायन !
शोभा के अमर चरण
भू मगल करें वरण,
मानवता की बलिष्ठ
हो पुकार लोकायन !
इष्ट बृहत् विश्व साम्य,
लोक श्रेय सतत काम्य,
शोषण अ याय हेतु
हो प्रहार लोकायन !
विस्तृत कर जन मन पथ,
वाहित कर जीवन रथ,
बन प्रकाशवाह, हरे
अ धकार लोकायन !
मनुष्यत्व महत् ध्येय,
आशा उर मे अजेय,
घृणा द्वेष मध्य प्रेम
का प्रसार लोकायन !
दीपित मुख कर दिशि क्षण,
कुसुमित जन भू प्रागण,
ज्योति प्रीति श्री सुख का
हो विहार लोकायन !

कूर्माचल के प्रति

ज मभूमि, प्रिय मातभूमि की शीषरत्न, शत स्वागत !
हिम सौ दय किरीटित जिसका शारद मस्तक उ नत
उषा रश्मि स्मित, स्फटिक शुभ्र स्वणिम शिखरो म उठकर
पुण्य धरा के स्वर्गो मुख सोपान प थ सा विस्तत
निज प्रवाक गरिमा से करता नर अमरो को मोहित,
निखिल विश्व को दिग विराट भौगोलिक विस्मय स भर !
बाल प्रवासी शिशु घर लौटा वह भी क्या अभ्यागत ?
स्नेह उच्छ्वसित, हेमज पुलकित अचल का शरणागत।
तेरी नैसर्गिक सुषमा में जननि, सदा से लालित,—
हँसमुख छायातप स गुम्फित श्याम गौर जिसका तन
श्री शोभा स्वप्नो स निर्मित गीत म ग गुजित मन,
रजत अनिल सौरभ पलने मे दोलित शशव मुकुलित !

क्या न खगों ने मृदु कलरव भर प्रथम लोरियाँ गायी ?
परों से बरसाकर सतरँग किरणों की परछायी !
स्मरण नहीं क्या तुझको ? तू रहती थी सतत उपस्थित,
चित्र लिखी-सी उड़ती तितली के सँग-सँग उड़ मन में
कैसे बड़ा हुआ मैं, घुटनों के बल चल आँगन में,—
माँ से बढ़कर रही धात्रि तू बचपन में मेरे हित !
धात्रि कथा रूपक भर तूने किया जनक बन पोषण,
मातृहीन बालक के सिर पर वरद-हस्त धर गोपन !
मातृ भूमि में माँ का मुख शिशु ने पीछे पहचाना !
कूर्माचल, प्रिय तात, पुत्र मैं रहा कूर्मवत् दृढ़ व्रत,
खींच अंध इंद्रिय मुख भीतर, ऊर्ध्व पीठ पर अविरत
युग मन भार वहन करना जिसने स्वधर्म नित माना !
छुटपन से विचरा हूँ मैं इन धूपछाँह शिखरों पर,
दूर, क्षितिज पर हिल्लोलित-सी दृश्य पटी पर नि:स्वर
हलकी गहरी छायाओं के रेखांकित - से पर्वत,
नील, बैंगनी, कपिश, पीत, हरिताभ वर्ण श्री छहरा,
मोहित अन्तर में भर देते आदिम विस्मय गहरा,
अन्तरिक्ष विस्फारित नयनों को अपलक रख तद्वत् !
ऊपर सीपी के रँग का नभ, नव मुक्तातप से भर,
रजत नीलिमा गलित, सहज हँसता-सा लगता सुन्दर !
ऊँचे उड़नेवाले, निजल, कौन मसृण, रोमिल घन !
चूर्ण रुपहली अलकों में उलझा रवि किरणें उज्ज्वल
मौन इन्द्रधनुषी छाया का स्वप्न नीड रच, चंचल
उड़ती चितवन के खग को बंदी कर लेते कुछ क्षण !
विजन घाटियों पर चढ़कर शिशु-मेघों-से दुग्धोज्ज्वल
चित्रग्रीव हिम के घन पल में होते नभ में ओझल !
पावस में जब मिहिका में लिपटा रहता गिरि प्रान्तर !
शैल गुहाओं में दहाड़ते सिंहों से जग क्षण में
दुहरी तिहरी तडित शृंखला तड़काते घन तन में,
बरसाकर आग्नेय सानुओं से स्फुलिंग के निर्झर !
षड्ऋतुएँ सुरबालाओं-सी करतीं सजधज नर्तन,
वासन्ती किसलय कितने ही रँग करते परिवर्तन,—
रजत ताम्र पाटल इंगुरी, हरित पीत, मृदु कम्पित !
सलज मौन मुकुलों में बरसा अर्ध निमीलित चितवन
फूलों के अंगों की अप्सरि भी रंग प्रिय यौवन
उड़ती पर्वत घाटी सौरभ पंखों से रोमांचित !
उच्च प्रसारों में लेटा छाया मर्मर परिवीजित
श्रान्त पान्थ-सा ग्रीष्म ऊँघता भरी दुपहरी में नित !
पागुर करते दृढ़ निद्वंद्व ककुद्वत शल वृषभवत,
कानें पड़ते तिग्म धूप से कुरँग तलैटी में रँग,
कूटों पर लिपटा रहता नीलातप मेघों के सँग,
चारवायु हिम जलद पंख का चँवर डुलाती अविरत !

मसण तुहिन सूत्रो मे गुम्फित रजत वाष्प रज के कण
मोती के रँग के धूमो से स्फटिक शिला के घन बन,
प्रावृट मे कर शख नाद, घिरते नीलाजन श्यामल
सुरधनुओ के दुहरे तिहरे फहरा छाया केतन,—
गिरि शृगो पर तडित् स्खलित, झरते प्रचण्ड गुरु गजन,
नील पीत सित लोहित विद्युल्लतिका कम्पित प्रतिपल!
मरकतहरित प्रसारों म हँस, दिक् प्रसन्न, तण पुलकित,
फेनों के हीरक झरनो, मुक्ता स्रोतों मे मुखरित,
जब वर्षा के बाद निखरता हेम खण्ड स्निग्धोत्तर
इन्द्रलोक-सा रजतारुण स्वर्णिम छायाओ मे स्मित,
सद्य धुले नव नीहारों का अध-नील कर विरचित,—
तब मन कहता, क्या न स्वग सुख से निसग मुख सुदर?
गहरे सूर्यास्तो को रँग सित वाष्पो की पीठो पर
नत्य मुग्ध, उडता मयूर पखी मेघो में अम्बर!
ज्योत्स्ना मे लगते दिगन्त जब स्वप्न ज्वार हिल्लोलित,
निखिल प्रदेश मनाता शोभा निर्निमेष शरदोत्सव,
जिस अकथित सम्मोहन का करता अवाक मन अनुभव,
मुक्त नील तारा स्मित लगता मौन रहस्य निनादित!
राजहस-सा तिरता शशि मुक्ताभ नीलिमा जल मे,
सीपी के पखों की छहरा रत्न छटा जल थल मे!
धुली वाष्प पखडियो में रँग भरते कला सुघर कर,
सुरधनु खण्डो मे किरणो की द्रवित कान्ति कर वितरित,
रग गध के लता गुल्म से गिरि द्रोणी अतिरजित
देवदारु रज पीत सुहाती ग्राम वधू सी सुदर!
हिम प्रदेश के यमजों-से हेमन्त शिशिर कम्पित तन
रजत हिमानी से जड देते गिरि कानन, गह प्रागण —
हिम परियों की नि स्वर पद चापो से कर दिशि मुखरित,
निशि के श्यामल मुख पर उज्ज्वल तुहिन दशन रेखा भर!
मथित करती शीन वात शाखाओं के वन पजर
मुरझाता रवि आतप, दिशि मुख दिखते धूसर, कुण्ठित!
स्वगहास हिम पात!—शुभ्रता मे अनिमेष दिगन्तर,
उडता राजमराल धौर हर्षातिरेक मे नि स्वर!
दिव्य रूप धरती निसग श्री दुग्ध धौत भूतल मे!
स्वप्न मौन ज्योत्स्ना सी निमल स्फटिक शान्ति मे मूर्तित!
उडते रगो के नप, लोमश हिम खग, रवि कर चित्रित
स्वर्गिक पावनता करती अभिसार मुग्ध दिशि पल म!
कौन तुम्हारी शोभा शब्दो मे कर सकता कल्पित?
तुम निसग सम्राट, रूप गरिमा प्रतिपल परिवर्तित!
निमत कक्ष मे रग प्रकृति नित सज शृगार मनोहर!
सुरधनु पट स्मित, तडित् चकित, करती शिखरो पर नतन!
तलहटियो मे रँग - रँग के वन - फूलों से मुकुलित तन,
नव पल्लव अचल मे लिपटी वन श्री मन लेती हर!

मखमल के तल्पो-से श्यामल तरल खेत लहराये
रोमाचित से गिरि वन चीडो की सूची से छाये,
देवदारु वन - देवो के हर्म्यों के स्तम्भो - से स्थित।
घनी बाँझ की वनी मोहती हरित शुभ्र ममर भर,
श्रृगो के दढ आयामो की पृष्ठभूमि मे अम्बर
लगता शाश्वत नील शान्ति - सा नीरव, ध्यानावस्थित।
विहगो के स्वर उर मे अलिखित गीतो के पद बनते,
तरु वन के अस्फुट ममर म भाव अचेतन छनते,
क्षिप्र मुखर स्रोतो मे रहते अगणित छ द तरगित।
मूत प्रेरणा सी लहराती नभ मे शतधा विद्युत,
साँझ प्रात के काचन तोरण किसे न लगते अदभुत,
रजत मुकुर सरसी मे हँसता मुख अनन्त का विम्बित।
तैल चित्र-सी उभरी गहरी शल श्रेणि छायाकित
उडते मेघो के घन तद्रिल धूपछाँह स गुम्फित,
स्वर्गिक कोणो वर्तुल शोभा क्षितिजो म छहराई—
रश्मि वाष्प की सष्टि सहस्रो रगो से भर जाती,—
ताम्र हरित नीलारुण स्वर्णिम शिखरो पर मँडराती
धुली साँझ की भाव लीन हलकी कोमल परछाइ।
शिखरो पर उ मुक्त सास ले, स्निग्ध रेशमी मारुत
सहज लिपट जाता तन मन से, ग ध मधुर, म थर द्रुत,
वाष्प मसण, नीहार नील, हिम शीतल, किसलय कम्पित।
रजत तुपार सरो मे थर थर कँपता निमल अम्बर,
आदि सष्टि सगीत सतत बहता श्रृगो से झर-झर
स्वच्छ चेतना के स्रोतो म, गिरि गहनो मे मुखरित।
तृण कोमल पुलिनो पर क्षण भर लेट उच्च ममतल मे
नाम हीन ग धो से तद्रिल तरु छाया अचल मे
गा उठता मन मुक्त स्वरो के पख खोल निजन मे।
कुदक निकट ही शशक कुतरते नव गुल्मो के कोपल,
शाखा श्रृगोवाले वन मग पीते झरनो का जल
मँडराती, निश्चल आतप प्रिय चील सुदूर गगन मे।
मदु कलरव भर रँग रँग के खग वन-परियो के कुसुमित
क्रीडा कुजो को रखते सुर वीणाओ से झकृत —
गीत वष्टि कर तरु के नभ से मोहित वन अटनो पर।
सद्य स्वर्णिम नवल प्रवालो का रँग हिम से पोपित,
प्रथम उपा के अगराग सा लगता शाश्वत लोहित —
मधु ममर म कँपते वन के अगणित वर्णों के स्वर।
उदयाचल पर कनक चक्र-सा रश्मि स्फुरित रवि उठकर
दिग भास्वर ऊपाओ से आरोहों को देता भर,
स ध्या के नत मस्तक पर रक्तोज्वल मणि-सा विजडित।
दिव्य छत्र-सा रजत व्योम किरणो से विरचित ऊपर
रत्न पीठ सा सानु सुहाता नीचे श्यामल सु दर —
इ द्रनील गोलाध जडित मरकत म दिर-सा शोभित।

ग्रादि महत्ता पशु जग की ग्रब भी वन करते घोषित,
सिह ऋक्ष वृक गिरि खोहो को रखते भीम निनादित,—
चकित, चौकडी भीत मृगो पर झपट टूटते नाहर।
श्वेत नील काले उपलो स कण्ठ वपो के भूषित,
भेडो की घण्टी से रहती गिरि डगरें कल गुजित,
उच्च शाद्वलो से छनते चरवाहो के मुरली स्वर।
सुघर कृपक वधुएँ नित खेतो मे सोना उपजाती,
कण्ठ मिला जन के संग कृपि के गीत हुडुक पर गाती,—
त्योहारो म नाच गान रगो के रच बहु उत्सव।
नीलारुण किरणो मे पलते स्वस्थ सौम्य नारी-नर
गौरव कपोलो म ऊपा की लाली लिय मनोहर,
लज्जारुण लगती जिससे ग्रज्ञात यौवनाएँ नव।
उग्र कराल शिलाएँ भरती मन म विस्मय सम्भ्रम,
घोर ग्रँधरी गहरी दरिया मे बसता ग्रादिम तम,
स्फीत नाद भर बहते ढहत जल - स्तम्भो स निर्झर।
निविड गहन मे सहसा जगमग जल उठत पट बीजन
हिंस्र व्याघ्र के विस्फारित हरिताभ भयावह लोचन,—
सँकरी घाटी मे सर्पों - स स्रोत सरकते सर् मर्।
झीने कम्पित नील कुहासो से परिवृत हो सत्वर
बृहत् गरुड-सा धँसता नभ में पख मार गिरि प्रान्तर,
ग्रर्ध दृश्य ग धव लोक-सा, छाया पथ मे शोभित।
भ्रू विलास करती चरलाए, म द हास कर प्रतिक्षण,
मुग्ध बलाको के संग नभ म उडता इच्छाकुल मन,—
चीर वाष्प पट कढता शशि-सा रवि किरणो स विरहित।
हिम के कचन प्रात, साँझ पावस पखो पर चित्रित,
स्वच्छ शरद चद्रिका, दिवस मधु के—क्षितिजो पर मुकुलित
ममर ग्रीष्म समीर लुभाती सौरभ म थर, शीतल।
ग्रप्सरियो की पद चापो से कँपते झिलमिल सरि-सर,
नत्य चपल वनश्री के हित नित बिछते कलि किसलय झर,
रग ग ध मधु रज से रहता भू लुण्ठित छायाचल।
भ्रमरो के मणि मुकुट श्रेणि-से लगते हेम शिखर स्मित
रजत नील नभ-नीहारो से रहते जो चिर वेष्टित,—
इ द्रधनुप छायाशुक का प्रिय उत्तरीय छहराकर।
कल किंकिणि-सी विद्युल्लेखा दिपती कटि पर कम्पित,
म द्र स्तनित भर मुरज बजाते घन ग धर्वों स नित
स्वत दीप्त ग्रोपधियो से नीराजन करते किन्नर।
यह भौतिक ऐश्वय शुभ्र गरिमा से मन को छूकर
नीरव ग्राध्यात्मिक विस्मय से ग्रन्तर को देता भर,—
एक महत् गुण ग्र य गुणो को करता नित ग्राकर्पित।
जग जीवन का क्र दन शोपण हो जाता तुममे लय,
जगता प्राणो मे ग्रन त भावो का वभव ग्रक्षय,
ऊर्ध्वारोही मौन शान्ति में भू मन को कर मज्जित।

अब मैं समझ सका महत्व इन शिखरों का स्वर्गोन्नत
नील मुक्ति में समाधिस्थ जो अन्तर्नभ में जाग्रत्,—
पृथ्वी के शाश्वत प्रहरी से अन्तरिक्ष में शोभित।
जहाँ शुभ्र सोपानों पर चैतन्य विचरता पावन,
स्वर्णिम आकाशों में उड़ता अपलक शोभा में सन,
उच्च नभस्वत में रहता संगीत अनश्वर गुंजित।
मुखरित तलहटियों को, नि स्वर क्षितिजों को अतिक्रम कर
सात्विक शिखरों में जग, मानस में श्रद्धा सम्भ्रम भर,
स्वर्ग धरा के मध्य शुभ्र दिग् विशद समन्वय-से स्थित,—
भू से रूप विधान, व्योम से सार भाव ले निर्मल,
श्यामल, प्राणोज्वल रखते तुम जग का उर्वर अंचल,
आरोहों के वैभव से अवरोहों को कर कुसुमित।
अप्रकेत तम सागर से उठ, भेद अचेतन के स्तर,
जल थल की अगणित उपचेतन जीव योनियों को तर,
जीवन हरित प्रसार पार कर रजत देश बहु समतल,
ऊर्ध्वग उच्छ्रायों के निर्मल नीहारों में नीरव
सत रज के सतरंग आभासों का कर मन में अनुभव,
शाश्वत शिखरों में निखरे तुम सयते शान्त समुज्वल।
रुके मूक भू मानस गह्वर, रुके स्तब्ध गिरि कन्दर,
(शतियों के पुंजित तमिस्र से पीड़ित जिनका अन्तर!)
बिछे प्रतीक्षा में प्रसार होने को तुमसे दीपित।
धूमिल क्षितिज, गरजता अम्बर, उद्वेलित जन सागर,
जड़ चेतन की दृष्टि निर्निमिष लगी ज्योति शिखरों पर,—
मानवता का दिक् प्रशस्त उन्नयन तुम्हीं पर आश्रित।
निश्चय, भूमा की आकृति में यह मृण्मय भू निर्मित,
अन्न प्राण मन जीवन के अक्षय वैभव से झंकृत,—
हरित प्रसारो, नीलोच्छ्रायो, स्वर्ण गहनतामोमय!
यशश्चूड़ तुम इस वसुधा के शाश्वत रश्मि मुकुट भृत,
दिक् शय्या पर चिदानन्द से कालोपरि सत पर स्थित,
ध्यानावस्थित ऊर्ध्व भाल पर नव लेखा शशि स्मित, जय!

श्री सुमित्रानदन पत

कौसानी, जि० अल्मोडा म ज म २० मई, १६०० । ज म के छ घण्टे बाद मा की मृत्यु । गोसाइदत्त नामकरण। १६०५ मे विद्यारम्भ । १६०७ मे स्कूल मे काव्यपाठ के लिए पुरस्कार । १६१० म अपना नाम वदलकर सुमित्रानदन रखा । १६११ में अल्मोडा क गवनमट हाईस्कूल म प्रवेश । १६१२ मे नेपोलियन के चित्र से प्रभावित हाकर केशवधन । १६१५ से स्थायी रूप स साहित्य सजन । पहने हस्तलिखित पत्रिका सुधाकर म कविताआ का प्रकाशन, और फिर १६१७ २१ के वीच अलमाडा अखवार' तथा 'मर्यादा' आदि पत्रो मे । जुलाई १६१६ म म्योर सेन्ट्रल कालिज प्रयाग, मे दाखिल हुए लकिन १६२१ म असहयोग आ दोल्न स प्रभावित होकर कालिज छाड दिया । १६३० मे द्विवेदी पदक । १६३१ स '३४ और '३६ से '४० तक की अवधि कालाकाकर मे । १६३८ म 'रूपाभ' का सम्पादन, रवी द्र नाय, काल माक्स और महात्मा गाधी के विचारो का अवगाहन । १६४० मे उदयशकर सस्कृति के द्र मे ड्रामा क्लासेज लिये । १६४३ म उदयशकर सस्कृति के द्र के वैतनिक सदस्य बने और 'कल्पना' फिल्म के सिनरिया की रूपरेखा तैयार की, कुछ गीत भी लिखे । १६४४ म पाण्डिचेरी की यात्रा, अरवि द की विचार साधना से विशेष प्रभावित । १६४७ म सास्कृतिक जागरण के लिए समर्पित सस्था 'लाकायन' की स्थापना । १६४८ मे देव पुरस्कार, १६४६ म डालमिया पुरस्कार । १६५० ५७ म आकाशवाणी के परामशदाता । १६६० मे **कला और बूढा** चाद पर साहित्य अकादमी पुरस्कार । १६६१ म पद्मभूषण की उपाधि । १६६१ म रूस तथा यूरोप की यात्रा । १६६४ म उत्तर प्रदेश शासन की आर से १०,०००रु० का विशेष पुरस्कार। १६६५ मे ही सोवियतलण्ड नेहरू पुरस्कार **लोकायतन** पर। १६६७ म विक्रम, १६७१ म गोरखपुर और १६७६ म कानपुर तथा कलकत्ता वि वि द्वारा डी लिट की मानद उपाधियाँ। दिसम्बर १६६७ मे भाषा विधेयक के विराध म पद्मभूषण की उपाधि का परित्याग । १६६६ म साहित्य अकादमी की महत्तर सदस्यता' । १६६६ म ही **चिदम्बरा** पर भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला । २८ दिसम्बर १६७७ को देहावसान ।